भारतीयस्त्रियाँ

निवेदन

श्रीमती महारानी, बड़ौदा, और श्रीयुत एस्० एम्० मित्र लिखित 'The Position of Women in Indian Life'-नामक पुस्तक का यह छायानुवाद हिंदी-पाठकों और पाठिकाओं की सेवा में उपस्थित किया जाता है। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, उसी समय अपने मित्र श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी की प्रेरणा से मैंने इस पुस्तक का सारांश, हिंदी-भाषियों के लिये, प्रस्तुत करने का विचार किया था। पर कुछ ही दिनों बाद मैंने सुना कि इसका पूरा अनुवाद मध्य-भारत के किसी सज्जन ने कर डाला है, इसलिये मैंने वह विचार छोड़ दिया। पर मैं नहीं कह सकता कि वह अनुवाद प्रकाशित हुआ या नहीं; क्योंकि वह आज तक कहीं मेरे देखने में नहीं आया। अब यह पुस्तक श्रीयुत दुलारेलालजी भार्गव की प्रेरणा और कृपा से प्रकाशित हो रही है। आशा है, हमारे देश के पुरुष और स्त्रियाँ इससे कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य उठावेंगी।

पर एक बात मैं अवश्य कह देना चाहता हूँ। वह यह कि इस पुस्तक में जो-जो विचार प्रकट किए गए हैं और जो-जो काम बतलाए गए हैं, वे इतने उन्नत और अग्रसर हैं कि अभी हम भारतवासी उन तक जल्दी पहुँच भी नहीं सकते। यह बात स्वयं श्रीमती महारानी, बड़ौदा, ने भी अपनी भूमिका में स्वीकार की है। बल्कि मेरी तो यह धारणा है कि इसकी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनसे हमारे देश की स्त्रियों की अपेक्षा स्वयं पुरुषों को ही विशेष लाभ उठाना चाहिए। स्त्रियों के लिये भी इस पुस्तक

में बहुत-से ऐसे नए कार्य-क्षेत्र मिलेंगे, जिनमें प्रवेश करके वे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगी। हमारे देश की स्त्रियों में शिक्षा का अभी बहुत ही थोड़ा प्रचार है। जो स्त्रियाँ थोड़ा बहुत पढ़-लिख सकती हैं, वे यदि यह पुस्तक पढ़ें भी, तो इसकी कुछ बातें या तो जल्दी उनकी समझ में ही न आवेंगी, अथवा उन्हें ग्रहण करना वे अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझेंगी। पर, फिर भी, यदि वे चाहेंगी, तो अपने लिये कुछ-न-कुछ नया काम अवश्य निकाल सकेंगी, और उससे अपने परिवार, समाज और देश का भी कुछ-न-कुछ कल्याण कर सकेंगी। इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को एक और बात का भी पता चल जायगा। वह यह कि पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ भी उन्नति के क्षेत्र में इतना अधिक आगे बढ़ी हुई हैं कि हमारे देश के पुरुष भी अभी तक उतना आगे नहीं बढ़ सके हैं। अतः मेरा तो यह विश्वास है कि इस पुस्तक से हमारे देश की केवल स्त्रियाँ ही नहीं, बल्कि पुरुष भी बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यदि इससे हमारे देशवासियों का कुछ भी लाभ होगा, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

अंत में मैं यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह पुस्तक अँगरेज़ी-मूल पुस्तक का निरा और पूरा अनुवाद ही नहीं है। इसमें आवश्यकतानुसार बहुत-सी बातें घटाई और जहाँ-तहाँ कुछ बढ़ाई भी गई हैं।

धर्मकूप, काशी
शरद् पूर्णिमा १९८२ } रामचंद्र वर्मा

मूल पुस्तक की भूमिका

इधर जब कई वार हमें योरप और अमेरिका जाने का अवसर मिला, तब स्वभावतः हमारा ध्यान उस अंतर की ओर गया, जो अँगरेज़ी तथा भारतीय सार्वजनिक जीवन में, स्त्रियों की परिस्थिति में, है। हमने देखा कि पाश्चात्य देशों की सार्वजनिक संस्थाओं में तो स्त्रियाँ बहुत कुछ काम करती हैं, पर हमारे देश की स्त्रियाँ ऐसे कामों से एक प्रकार से बिलकुल अलग रहती हैं। पाश्चात्य देशों के सार्वजनिक कार्यों में स्त्रियों और पुरुषों में जो सहयोग देखने में आता है, उसका भारत में कोई नाम भी नहीं जानता। भारतवर्ष में जितने सार्वजनिक कार्य होते हैं, वे सब पुरुषों के ही द्वारा। पर इसका कारण जानने के लिये हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं ; क्योंकि पाश्चात्य देशों में, मानव-कल्याण के लिये, जितने प्रकार की उपयोगी संस्थाएँ होती हैं, उतने प्रकार की और वैसी संस्थाएँ हमारे यहाँ प्रायः हैं ही नहीं। और, यदि कहीं कुछ संस्थाएँ नाम-मात्र के लिये हैं भी, तो उनका कोई विशेष प्रभाव देखने में नहीं आता। आख़िर इतने बड़े अंतर का कारण क्या है ? क्या भारतीय स्त्रियों को सदा सब सार्वजनिक कार्यों से अलग ही रहना चाहिए ? इसका उपाय क्या है, और वह उपाय किया किस प्रकार जाना चाहिए ?

जब-जब हमें पाश्चात्य देशों में जाना पड़ता था, तब-तब ये प्रश्न हमारे मन में ज़्यादा ज़ोरों से उठते थे; और यह विचार उत्पन्न होता था कि क्या हमारे द्वारा कोई ऐसा काम हो सकता है, जिससे हमारी भारतीय बहनें युगों से चला आता हुआ आलस्य त्यागकर उठें, और भारतवर्ष के सार्वजनिक कार्यों में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त करें। इसलिये हमने पाश्चात्य—अँगरेज़ी, योरपियन और अमेरिकन—प्रणालियों का, जो हमारे देखने में आती थीं, ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग आरंभ किया। हमारे मन में यह भाव दृढ़ होने लगा कि अपनी यात्राओं में स्त्रियों की परिस्थिति से संबंध रखनेवाली जो-जो बातें हमें मालूम हों, उन्हें अपनी भारतीय बहनों को भी उनके उपकार के लिये बतलावें। इस प्रकार हमें जो कुछ अनुभव प्राप्त होते थे, उन्हें अपने देश की स्त्रियों के सामने रखने की हमें इसलिये उत्कंठा होती थी, जिससे भारतवर्ष के सभी भागों से हमें इस संबंध में सम्मतियाँ आदि प्राप्त हों, और इस संबंध में लोगों के भावों आदि का पता लगे। साथ ही हमें यह भी आशा थी कि इन पाश्चात्य संस्थाओं में कुछ तो अवश्य ऐसी हैं, जैसी अपने देश की परिस्थितियों को देखते हुए थोड़े बहुत सुधार और परिवर्तन के साथ यहाँ भी स्थापित की जा सकती हैं। पर यहाँ हमें एक बहुत बड़ी कठिनाई हुई, जो पहलेपहल किसी प्रकार दूर होती हुई दिखलाई ही नहीं देती थी। पाश्चात्य सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की दशा और उनकी उपयोगी

संस्थाओं से अवगत होना और बात थी, और तत्संबंधी अपने भावों को ऐसे लोगों पर, जो कभी अपने देश से बाहर न गए हों, प्रकट करना और बात। इसके लिये सब बातों का केवल ठीक-ठीक और पूरा ज्ञान होने की ही आवश्यकता नहीं थी, बल्कि भारतीय आवश्यकताओं का ध्यान और हिंदू-वर्ण-व्यवस्था पर दृष्टि रखते हुए, देखी और समझी हुई सब बातों को ध्यानपूर्वक और उत्तम शैली से संपादित करना भी आवश्यक था। इसलिये हमने देखा कि हमें किसी ऐसे सुयोग्य और विद्वान् साहित्यिक व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता है, जिसने वहीं रहकर इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त किया हो, और जो इस विषय पर अच्छी तरह लिख सकता हो। इसके उपरांत हमारे मन में यह प्रश्न उठा कि यह काम किसी अँगरेज़ को सौंपा जाना चाहिए, अथवा अपने ही देश के किसी आदमी को? हमारी यह धारणा है कि अँगरेज चाहे कितना ही चतुर क्यों न हो, पर वह हिंदू-वर्ण-व्यवस्था की उन सूक्ष्मताओं को, जो भारत की प्रत्येक संस्था का बहुत महत्वपूर्ण अंग हैं, संभवतः अच्छी तरह नहीं समझ सकता। इन्हीं सब कारणों से अपनी अंतिम इँगलैंड यात्रा के समय हमने यह निश्चय किया कि हम अपने विचारों को क्रमबद्ध करके प्रकट करने का काम सुप्रसिद्ध हिंदू लेखक श्रीयुत एस्० एम्० मित्र को सौंपें, जो सात वर्ष तक मुसलमानों की बड़ी रियासत, हैदराबाद, में रहकर मुसलमानी तौर-तरीक़ों का भी अच्छा

ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। वह तुरंत हमारी सूचना के अनुसार काम करने के लिये उद्यत हो गए; और लौटकर इँगलैंड आने पर हमने देखा कि उन्होंने हमारे विचारों के संपादन का कार्य समाप्त कर दिया है, तथा सात वर्ष तक इँगलैंड में रहकर और पाश्चात्य समाज-विज्ञान का अध्ययन करके, उन्होंने स्वयं जो मूल्यवान ज्ञान प्राप्त किया था, उसे भी उसमें बढ़ा दिया है। इस प्रकार इस पुस्तक की रचना हुई है, और अब यह इस आशा से प्रकाशित की जा रही है कि भारतवर्ष के सब भागों से इस संबंध में सम्मतियाँ आदि एकत्र हों, और उन सब सम्मितियों का विचार-पूर्वक संपादन हो, जिससे यह निश्चय किया जा सके कि स्त्रियों के संगठन का विचार किस प्रकार कार्य-रूप में परिवर्तित किया जाय। इस वर्ष राज्याभिषेक हो रहा है, और भारतवर्ष से प्रधान-प्रधान पुरुष और स्त्रियाँ इँगलैंड आई हुई हैं। अतः हमें यह आशा करनी चाहिए कि इन लोगों ने ब्रिटिश सामाजिक व्यवस्था के सब अंगों का भली भाँति अध्ययन कर लिया होगा, और उन्होंने यह जानने का उद्योग भी किया होगा कि वे कौन-से स्तंभ हैं, जिन पर ब्रिटिश संस्थाओं की इतनी बड़ी इमारत खड़ी हुई है—विशेषतः यह जानने का प्रयत्न किया होगा कि जिस जाति का साम्राज्य इतिहास में सबसे अधिक विशाल और विस्तृत है, उस जाति की सामाजिक और नैतिक व्यवस्था के संचालन या निर्वाह में स्त्रियाँ क्या-क्या करती हैं।

इन पृष्ठों में जो विचार प्रकट किए गए हैं, वे स्वभावतः केवल ढाँचे और अपूर्ण सूचनाओं के रूप में हैं; क्योंकि इनमें से जिन विषयों पर केवल थोड़ी-सी पंक्तियाँ ही लिखी गई हैं, उनमें प्रत्येक पर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। इसमें जिन कार्यों का वर्णन है, उनमें से कुछ तो परीक्षा-रूप में, बड़ौदे में, किए भी गए हैं; पर वे न तो केवल स्त्रियों के ही लाभ के लिये किए गए हैं, और न केवल स्त्रियों के ही सहयोग से हुए हैं। उदाहरणार्थ, जैसा कि सन् १६०८-६ की बड़ौदा की शासन-संबंधी रिपोर्ट (Baroda Administration Report) में विवेचन किया गया है, पुरुषों ने कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियों (Co-operative Credit Societies) की अच्छे विस्तार से स्थापना की है। उक्त रिपोर्ट से यह सूचित होता है कि उस वर्ष के अंत में वहाँ कुल मिलाकर ऐसी बत्तीस सोसाइटियाँ थीं। कृषकों के बंक (Agricultural Banks) भी काम कर रहे हैं। पर साथ ही यह बात भी स्वीकार करनी पड़ती है कि इन सब कामों में जो उन्नति हो रही है, वह मंद गति से हो रही है। दिसंबर, १६०८ में एक आदर्श कृषिशाला भी स्थापित की गई थी, जिसके प्रधान अध्यापक एक डिप्लोमा-प्राप्त सज्जन हैं, जो विद्यार्थियों को पूर्वी और पश्चिमी प्रणालियों की तुलना करते हुए शिक्षा दे सकते हैं। नवयुवक अपराधियों के लिये एप्रिल, १६०८ में 'बोस्ट्रल प्रणाली' की व्यवस्था की गई थी, और 'थाना-प्रणाली' भी चलाई गई थी, जिसके

अनुसार कुछ चुने हुए क़ैदी बिलकुल स्वतंत्र आदमियों की भाँति काम करने के लिये आदर्श कृषिशाला में भेजे जाते हैं। यह प्रणाली दिसंबर, १६०८ में प्रचलित हुई थी। पर ये सब काम ऐसे हैं, जो समस्त भारत में नहीं हो रहे हैं, और इनमें से एक भी काम ऐसा नहीं, जो केवल स्त्रियों और बालिकाओं के लाभ के विचार से किया जाता हो। इसीलिये यह आवश्यक समझा गया कि अन्यान्य देशों में जो बड़े-बड़े काम हो रहे हैं, उनके सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण दे दिया जाय, और यह बतला दिया जाय कि उनमें और लोगों ने कहाँ तक उन्नति की है।

बड़ौदा में परीक्षा के लिये यह भी व्यवस्था की जा चुकी है कि अच्छे शिक्षक नियुक्त करके, और उन्हें गाँव-गाँव में भेजकर लोगों को दही और मक्खन आदि तैयार करने की और कृषि-संबंधी उपयोगी बातें सिखलाई गई हैं। पर इस व्यवस्था का बहुत अधिक अच्छा परिणाम नहीं हुआ। इसीलिये बड़ौदे के शासन-विभाग की सन् १६०८-६ की रिपोर्ट में यह सूचना दी गई है कि ये पद तोड़ दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में और भी कई व्यवस्थाएँ प्रचलित की गई; पर उनके प्रवर्तकों को उतनी अधिक सफलता नहीं हुई, जितनी होनी चाहिए थी। क्या इसका यह कारण नहीं हो सकता कि अभी तक स्त्रियाँ व्यवस्थित रूप से सहयोग नहीं कर रही हैं? इन्हीं सब बातों का ध्यान रखते हुए यहाँ भारतीय स्त्रियों के लिये कुछ ऐसे काम

बतलाए गए हैं, जिन्हें भारतवर्ष के पुरुष बहुत ज़्यादा पसंद नहीं करते। ये बातें इस आशा से बतलाई गई है कि अभी तक जिन कामों में अकेले रहने के कारण पिता, भाई और पति को सफलता नहीं प्राप्त हो सकी, उन कामों में स्त्रियाँ भी आकर योग दें—यह बात दिखला दें कि सफलता-पूर्वक संगठन का काम करने के लिये पुरुषों और स्त्रियों, दोनों को मिलकर काम करने की आवश्यकता है।

गत दिसंबर-महीने में हम अपने पतिदेव के साथ प्रयाग की प्रदर्शिनी में गई थीं, और वहाँ हमारे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि भारतवर्ष की प्रत्येक देशी रियासत को अपने यहाँ से दो ऐसी स्त्रियों को योरप भेजना चाहिए, जो वहाँ जाकर उन विषयों की अच्छी शिक्षा प्राप्त करें, जिनका उल्लेख इस ग्रंथ में किया गया है। वे विशेषतः उन विषयों का ज्ञान प्राप्त करें, जिनका वर्णन इसके आरंभ के सात-आठ प्रकरणों में हुआ है। हमारा राज्य इस काम के लिये एक हिंदू और एक मुसलमान, इस प्रकार दो स्त्रियों को छात्रवृत्तियाँ देकर और उन्हें ऐसे कामों के लिये प्रोत्साहित करके, मार्ग-प्रदर्शन करने के लिये प्रस्तुत है।

प्रयाग की प्रदर्शिनी में हमें यह बात खटकी थी कि यहाँ ऐसी स्त्रियों का अभाव है, जो आनेवाली स्त्रियों को सब बातें समझा और बतला सकें। यदि व्याख्यान देनेवाली ऐसी स्त्रियाँ हों, जो परदे में रहनेवाली स्त्रियों को ऐसी प्रदर्शिनियों के लाभ

और उनके स्थापन को विधियाँ आदि बतला सकें, तो सारे भारत में ऐसी दर्जनों प्रदर्शिनियाँ खुल सकती हैं, और उनसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। यह बात स्पष्ट है कि हमारे देश की स्त्रियाँ इस प्रकार की प्रदर्शिनियों में बहुत कुछ दिलचस्पी लेने लगी हैं; क्योंकि प्रयाग में हमने देखा था कि परदे में रहनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ नियुक्त अवसरों पर उपस्थित हुआ करती थीं, और कला-शिल्प-संबंधी जो चीज़ें वहाँ दिखलाई गई थीं, उनसे उन्होंने बहुत कुछ लाभ उठाया था। इस प्रकार जाकर चीज़ें देखने और समझने से बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातों का ज्ञान होता है। और, यदि तरह-तरह की चीज़ों के संबंध में सब बातें समझाने और उनके तैयार करने के ढंग बतलाने की शिक्षा की भी व्यवस्था हो जाय, तो इसका परिणाम और भी स्थायी हो सकता है। चीनी बनाने, रूसा-घास से तरह-तरह के इत्र तैयार करने, रेशम के कीड़े पालने, छपाई का काम करने, शीशे की चीज़ें बनाने, सोने और चाँदी पर मीनाकारी करने और उन पर लुक चढ़ाने, पेंसिल, निब, दियासलाई, मोज़े, गंजियाँ, कालीन तथा इसी प्रकार की और-और चीज़ें बनाने की व्यवस्था उस प्रदर्शिनी में की गई थी। गत एप्रिल में बड़ौदा-नरेश ने, नवसारी में, कुछ ऐसी ही व्यवस्था की थी। पर यदि उस प्रदर्शिनी में कोई ऐसी स्त्री भी होती, जो आनेवाली स्त्रियों को इन सब विषयों की बातें समझाती, तो अवश्य ही आनेवाली स्त्रियाँ उसमें और भी ज़्यादा दिलचस्पी लेतीं। ब्रिटिश-म्यूज़ियम में अब यह व्यवस्था

की गई है कि यदि देखनेवाले चाहते हैं, तो उनके साथ ऐसे व्याख्याता कर दिए जाते हैं, जो चारों ओर घूम-घूमकर वहाँ की प्रदर्शित वस्तुओं के संबंध में उन्हें सब बातें समझा देते हैं। यदि हमारे देश की कृषि-संबंधी तथा अन्यान्य प्रदर्शिनियों में भी ऐसी ही व्यवस्था कर दी जाय, तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। इस व्यवस्था से बहुत-सी अच्छी और काम की ऐसी बातें जानी जा सकती हैं, जो पढ़ाई की पुस्तकों में नहीं मिल सकतीं। साथ ही शिक्षित स्त्रियों के लिये व्याख्यान देने का एक बहुत अच्छा काम भी मिल जाता है।

इँगलैंड तथा अन्यान्य देशों में हमें स्त्रियों के काम की जितनी अच्छी और उपयोगी बातें दिखलाई दीं, उन सबका वर्णन इस पुस्तक में कर दिया गया है। यह काम हम अपने देश की स्त्रियों पर छोड़ देती हैं कि वे ही यह निश्चय करें कि इनमें से कौन-से काम ऐसे हैं, जो स्थानिक परिस्थितियों को देखते हुए थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ, परीक्षा-रूप में, आरंभ किए जा सकते हैं। इनमें कुछ तो अवश्य ऐसे हैं, जो उन्हें अच्छे और आरंभ करने के योग्य जान पड़ेंगे। पर साथ ही उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पाश्चात्य विचारों और कार्यों का अनुकरण करने के समय वे, बिलकुल दासों की भाँति, उनके पीछे न लग जायँ, बल्कि अपने स्वतंत्र विचारों से भी कुछ काम लें। प्रत्येक देश यदि बुद्धिमत्ता-पूर्वक निरीक्षण करे, तो वह दूसरे देशों से कुछ-न-कुछ अवश्य सीख सकता है। पर साथ ही प्रत्येक

देश का अपनी जातीय विशेषताओं की रक्षा करने का भी उसी प्रकार प्रयत्न करना चाहिए, जिस प्रकार स्त्रियों और पुरुषों को, एक दूसरे की नक़ल न करके, अपने विशिष्ट गुणों से ही सबसे अधिक काम लेना चाहिए। जो बातें हमारी आदत के बिलकुल ख़िलाफ़ हों, और जो ढंग हमारे लिये बिलकुल विदेशी हों, उन्हें जल्दी से न ग्रहण कर लेना चाहिए। प्रसिद्ध अँगरेज़ दार्शनिक बेकन ने कहा है—"बहुत अच्छा हो, यदि लोग पुरानी बातों को छोड़कर नई बातें ग्रहण करने के समय स्वयं समय का ही अनुकरण करें। समय में अवश्य ही बहुत बड़ा परिवर्तन होता रहता है, पर वह परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि किसी को दिखलाई ही नहीं देता।..........................और, जब तक कोई बहुत बड़ी आवश्यकता न आ पड़े, या उपयोगिता भली भाँति सिद्ध न हो जाय, तब तक, केवल परीक्षा के लिये, कोई प्रयोग राज्य या राष्ट्र की ओर से न किया जाना भी अच्छा है।" कई बातों में अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि पूर्वी देशों में पाश्चात्य विचारों का जो बीजारोपण किया गया है वह भली भाँति सफल नहीं हुआ है; और कुछ बातें ऐसी हैं, जिनके संबंध में इँगलैंड और भारतवर्ष में बहुत अधिक अंतर है, और ऐसी बातों में एक मुख्य बात श्रमजीवियों के संबंध का प्रश्न है। पर यह भी संभव है कि लोग बहुत अधिक अनुदार या संकुचित विचारों के हो जायँ। ऐसी अवस्था के संबंध में भी उसी दार्शनिक ने कहा है—"दुराग्रह-पूर्वक पुरानी लकीर पीटते

चलना भी उतना ही बुरा है, जितना बहुत जल्दी कोई नई बात ग्रहण कर लेना; और जो लोग बहुत पुरानी बातों को ही अधिक आदरणीय और ग्राह्य समझते हैं, वे नयों की दृष्टि में घृणित हो जाते हैं।"

सब बातों का अच्छी तरह विचार करते हुए हमें आशा है कि भारतीय सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की अवस्था सुधारने और उन्नत करने में अवश्य कुछ-कुछ काम किया जा सकता है। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक की सब बातों से यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है कि स्त्रियों और पुरुषों में किसी प्रकार का विरोध होने की नहीं, बल्कि सहयोग की आवश्यकता है; और यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि स्त्रियाँ जितने अच्छे-अच्छे काम कर सकती हैं, उन सबके लिये उन्हें पुरुषों के पथ-प्रदर्शन की उसी प्रकार आवश्यकता होती है, जिस प्रकार पुरुषों को अपनी जीवन-यात्रा में स्त्रियों की सहायता और सहानुभूति की। स्त्रियों का व्यक्तित्व पुरुषों के व्यक्तित्व से अवश्य ही बहुत अधिक भिन्न है। दोनों के अलग-अलग विशिष्ट गुणों की जड़ बहुत गहरी है, और उन गुणों को दबाने का यदि प्रयत्न किया जायगा, तो उससे संभवतः विकास तो नहीं होगा, पर क्रांति अवश्य हो जायगी। पुरुषों और स्त्रियों के शारीरिक संगठन में जो अंतर हैं, वे दोनों में अलग-अलग विशिष्टताएँ उत्पन्न करते रहेंगे। ऐसी विशिष्टताओं और अंतरों

को नहीं रोकना चाहिए, बल्कि अच्छी तरह उनका विकास और वृद्धि होने देने चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि बहुत दिनों से दोनों में जो विभेद और अंतर चले आ रहे हैं, उनका ध्यान रखते हुए, प्राकृतिक रीतियों से, अच्छी तरह विकास हो सकेगा।

इस पुस्तक में ब्रिटिश-संस्थाओं का जो वर्णन दिया गया है, उसके अतिरिक्त कुछ ऐसी संस्थाओं का भी थोड़ा विवरण दे दिया गया है, जो अन्यान्य देशों—विशेषतः संसार के अग्रगणी देशों के प्रतिनिधि फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका आदि—में स्त्रियों के हित के लिये परीक्षार्थ प्रचलित की गई हैं। आशा की जाती है कि जापान-संबंधी प्रकरण ज़्यादा दिलचस्पी के साथ पढ़ा जायगा। जापान पर हमारा यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि वहाँ के पुरुषों ने जितनी अधिक उन्नति की है, उतनी अधिक वहाँ की स्त्रियों ने नहीं की है।

अंत में हम श्रीयुत मित्र को उनके परिश्रम के लिये धन्यवाद देती हैं, जिनके कारण हमारे विचारों को इस प्रकार पूर्णता प्राप्त हुई है, और जिन्होंने इस पुस्तक के संबंध में सबसे पहले, विचार उत्पन्न होने से लेकर अंतिम प्रूफ़-संशोधन तक, सभी कामों में हमारे साथ हार्दिक सहयोग किया है।

लंदन
२२ जुलाई १९११.

भारतीय स्त्रियाँ

पहला प्रकरण

स्त्रियों का आंदोलन

जिस समय बीसवीं शताब्दी का इतिहास लिखा जायगा, उस समय उसमें कदाचित् सबसे अधिक महत्व का प्रकरण स्त्रियों के विकास के संबंध का होगा। इस समय सारे संसार में सभी वर्गों की स्त्रियों में एक नवीन जीवन का संचार हो रहा है। अमीर और गरीब, पढ़े-लिखे और बिना पढ़े-लिखे, सभी लोग यह बात समझ रहे हैं कि अब एक ऐसा युग आ रहा है, जिसमें स्त्रियों की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जायगी, और उनसे सभी प्रकार के बहुत-से नए-नए काम लिए जाया करेंगे। इस समय इस संबंध में चारों ओर अच्छा काम हो रहा है, और सभी देशों की स्त्रियाँ अपनी बहनों की उन्नति करने और उनमें ज्ञान का प्रसार करने के लिये मिलकर काम करना चाहती हैं। उनके इस प्रयत्न का उद्देश्य यह है कि इस आन्दोलन को संसार-व्यापी बनाने में सब लोग मिलकर काम

करें। स्त्रियों की यह तत्परता एक बहुत ही शुभ लक्षण है; और इस समय सारे संसार में जिस नवीन भ्रातृ-भाव का संचार हो रहा है, यह आन्दोलन उसके बिलकुल अनुकूल है। योरप और अमेरिका की स्त्रियों में इस समय एक ही प्रकार के भाव काम कर रहे हैं। ये भाव अब इतने अधिक प्रबल हो गए हैं कि एशिया की स्त्रियों में भी जागृति होने लग गई है, नवीन जीवन का संचार होने लगा है।

यह विषय विशेष रूप से विचार करने-योग्य है। बहुत-से नेता और सार्वजनिक कार्य करनेवाले इस संबंध में यों ही जो शोर मचा रहे हैं, उनके अतिरिक्त बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष ऐसे भी हैं, जो सच्चे हृदय से इस आन्दोलन की उपयोगिता स्वीकार करते हैं। इतने बड़े आन्दोलन की उन्नति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिये हम भारत की स्त्रियों को यह बात बतला देना चाहते हैं कि संसार के और-और देशों में, सार्वजनिक कार्यों में, स्त्रियों का क्या स्थान है, उन्होंने अब तक क्या-क्या किया है, और अब वे क्या करना चाहती हैं। और, इसी उद्देश्य से हम यहाँ पर सारे संसार की स्त्रियों का संक्षिप्त इतिहास दे देना चाहते हैं। इस समय और-और देशों में स्त्रियाँ जो-जो काम कर रही हैं, उनमें अवश्य कुछ काम ऐसे हैं, जो अनेक कारणों से हमारे यहाँ की स्त्रियों के करने-योग्य नहीं हैं, और उनसे हम लोगों को बचना चाहिए। पर साथ ही कुछ काम ऐसे भी हैं, जिनका हमें अनुकरण करना चाहिए—जिन

कामों को हमारे देश की स्त्रियों को भी अपने हाथ में लेना चाहिए।

अब तक जो कुछ पता चला है, उससे यही जान पड़ता है कि बिलकुल आरंभिक काल में, सभी देशों में, स्त्रियाँ और पुरुष एक साथ रहा करते थे, और उनके पास जो कुछ धन-सम्पत्ति होती थी, उस पर दोनों का समान रूप से अधिकार होता था। कुछ लोगों का विश्वास है कि भारतीय और योरपियन, दोनों के पूर्वज एशिया में हिंदूकुश-पर्वत के पास रहते थे। पर बाद के कुछ विद्वानों ने खोज से यह पता लगाया है कि उनका निवास-स्थान योरप के उत्तर-पूर्वी प्रांतों में था। पर हमें यहाँ इन बातों से कोई मतलब नहीं। हम यह जानते हैं कि वे सब लोग एक ही भाषा बोलते थे। जान पड़ता है कि बिलकुल आरंभिक काल में स्त्रियाँ शारीरिक दृष्टि से भी और मानसिक दृष्टि से भी पुरुषों के समान ही होती थी। हमारे इस कथन का प्रमाण यह है कि इस समय संसार में जो थोड़ी-सी जंगली जातियाँ बची हुई हैं—और जो कदाचित् इस समय भी उसी अवस्था में हैं, जिस अवस्था में हमारे पूर्वज अपने पहले निवास-स्थान में थे—उन जातियों की स्त्रियों और पुरुषों में न तो शारीरिक दृष्टि से और न मानसिक दृष्टि से ही कोई विशेष अंतर देखने में आता है। अनुमान से यह भी जान पड़ता है कि इसके उपरांत एक समय ऐसा आया, जब वे लोग अपनी-अपनी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर इधर-उधर बढ़ने लगे,

और धीरे-धीरे फैलते हुए संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जा बसे; और वहाँ उन लोगों ने राष्ट्रों या जातियों का रूप धारण कर लिया। नए देशों की नई परिस्थितियों और नए जल-वायु में पहुँचकर उनमें भी बहुत-सी नई-नई बातें पैदा हो गईं, और उन लोगों में परस्पर इतना अधिक भेद उत्पन्न हो गया कि वे एक दूसरे से बिलकुल अलग जान पड़ने लगे।

जिस समय मनुष्य-समाज की बिलकुल आरंभिक अवस्था थी, उस समय स्त्रियों और पुरुषों में कोई स्थायी संबंध नहीं होता था। पर इसमें अनेक प्रकार की हानियाँ और दोष दिखाई पड़ने लगे, जिसके कारण विवाह की प्रथा चली, और इसी प्रथा की कृपा से गृहस्थी, वंश और जाति आदि की सृष्टि हुई। उस समय स्त्रियाँ बच्चों का पालन-पोषण किया करती थीं, परिवार के लोगों के रहने के लिये झोपड़ियाँ आदि बनाया करती थीं, पहनने के लिये कपड़े तैयार करती थीं, भोजन बनाकर घर के लोगों को खिलाया करती थी, और इसी प्रकार के और अनेक काम किया करती थीं। तात्पर्य यह कि घर में बैठकर करने-योग्य जितने काम हुआ करते थे, वे सब तो स्त्रियाँ करती थी; और जो काम घर से बाहर के हुआ करते थे, उन्हें पुरुष किया करते थे। आगे चलकर जब मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी, तब लोगों को अनाज आदि बोने की आवश्यकता जान पड़ने लगी। उस समय खेत जोतने और बोने आदि का काम तो पुरुष करते थे, और

फसल काटने या अनाज साफ़ करके घर में रखने का काम स्त्रियों के ज़िम्मे रहता था। परंतु उस समय भी और उसके बहुत दिनों बाद तक भी स्त्रियाँ सब प्रकार से पुरुषों के अधीन रहती थीं, और पुरुषों का उन पर पूरा-पूरा अधिकार हुआ करता था। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम जो कुछ कह रहे हैं, वह सारे संसार के संबंध में है, किसी एक देश या जाति के संबंध में नहीं। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे भारत में तो स्त्रियाँ अब तक बहुत कुछ प्रायः इसी दशा में हैं; पर संसार के और-और देशों में, जो भारत की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत समझे जाते और अनेक अंशों में हैं भी, स्त्रियों की दशा बहुत अधिक उन्नत है। हम यह नहीं कहते कि हमारे देश की स्त्रियों को भी सब बातों में उन्नत देशों की स्त्रियों का ही अनुकरण करना चाहिए, वरन् हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे देश की स्त्रियों को यह जानना चाहिए कि और-और देशों में स्त्रियों की क्या अवस्था है, और उनकी कौन-कौन-सी बातें ऐसी हैं, जिनका हमारे देश की स्त्रियों को अनुकरण करना और किन-किन बातों से बचना चाहिए।

इसमें संदेह नहीं कि इतिहास के आरंभिक काल में भी एक समय अवश्य ऐसा था, जब स्त्रियों का बहुत अधिक आदर था, और लोग उन्हें देवियों की तरह पूजते थे। हमारे भारतवर्ष में तो यह भाव और देशों की अपेक्षा और भी बढ़ा-चढ़ा था। स्त्रियाँ यहाँ साक्षात् लक्ष्मी मानी जाती थीं। जिस समय योरप

आदि देशों में सभ्यता के विकास का आरंभ भी नहीं हुआ था, उससे भी बहुत पहले हमारे यहाँ स्त्रियों का आदर-मान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। इस बात का प्रमाण रामायण और महाभारत के अनेक आख्यान हैं। सुख में तो स्त्रियाँ साथ रहती ही थीं; पर दुःख में वे और अधिक उपयोगी हो जाती थीं, और अपने प्रेमपूर्ण परामर्श तथा और-और बातों से वे पुरुषों को अनेक प्रकार से सहायता देकर उनका दुःख बटाती थीं, यहाँ तक कि बन-वास के समय सीता ने राम का और द्रौपदी ने पांडवों का जिस प्रकार साथ दिया था, उसका स्मरण करके आज भी हम भारतवासी उनका नाम सुनते ही आदर-पूर्वक सिर झुका लेते हैं; उन्हें साक्षात् देवी समझते हैं। अमेरिका और योरप आदि के निवासी भी उनके पातिव्रत, पतिभक्ति और स्वामिनिष्ठा को देखकर दाँतों-तले उँगली दबाते और उन्हें आदर्श मानते हैं।

मिसरियों, हिंदुओं और यहूदियों आदि में तो स्त्रियों का यह आदर-सत्कार बहुत पहले से ही चला आता था, पर योरप में इसका थोड़ा-बहुत आरंभ प्रायः ईसा के समय हुआ। जिस समय इस्लाम-धर्म ने बहुत ज़ोर पकड़ा था, उस समय मुसल-मानी समाज में भी स्त्रियों का आदर-मान कुछ कम नहीं था। उन दिनों मुसलमान स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही अधि-कार प्राप्त थे। स्वयं मुहम्मद साहब की पहली स्त्री ख़दीजा ने पचीस वर्षों तक सुख-दुःख, सभी में अपने पति का पूरा-पूरा

साथ दिया था, और उसकी मृत्यु के उपरांत उनकी नव-विवाहिता स्त्री आयशा एक बार एक युद्ध में उनके साथ-साथ लड़ी थी। उनकी कन्या फ़ातिमा ने राजनीतिक क्षेत्र में अच्छा नाम पाया था, और उनकी पोती ज़ैनब अनेक सार्वजनिक कार्य करने के लिये प्रसिद्ध है। अनेक मुसलमान-स्त्रियाँ ऐसी ही गई हैं, जो शासन, शिक्षा-प्रचार और धर्म-प्रचार आदि अनेक प्रकार के बड़े-बड़े काम बहुत अच्छी तरह करती थीं, और हिंदू-स्त्रियों की भाँति विद्या और पांडित्य के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध थीं। सुलतान प्रथम बायज़ीद के शासन-काल में स्त्रियाँ मसजिदों में जाकर पुरुषों के सामने व्याख्यान दिया करती और पाठशालाओं में पढ़ाया करती थीं। उन दिनों वहाँ बालकों और बालिकाओं की शिक्षा साथ-ही-साथ हुआ करती थी। प्राचीन मिसर में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे, यहाँ तक कि वे पुरोहिती और शासन-कार्य की भी अधिकारिणी समझी जाती थीं। तात्पर्य यह कि किसी समय वहाँ भी स्त्रियों और पुरुषों में कोई विशेष अंतर नहीं माना जाता था।

यूनान में महाकवि होमर के समय से ही अनेक ऐसी सुयोग्य और विदुषी स्त्रियाँ हो गई हैं, जिनका नाम उस देश के इतिहास में सदा बना रहेगा। कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी हो गई हैं, जिनका नाम समस्त संसार की स्त्रियों के इतिहास में भी अमर रहेगा। इसी प्रकार इटली और जर्मनी में भी ऐसी अनेक

स्त्रियाँ हो गई हैं, जो विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता और वीरता आदि में पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं थीं। जर्मनी में तो एक समय ऐसा था कि स्त्रियाँ वर्गों या उपजातियों की सरदार हुआ करती थीं। ये सरदार-स्त्रियाँ वीरता और बुद्धिमत्ता में पुरुषों से भी बढ़ी-चढ़ी होती थीं, यहाँ तक कि उस समय जर्मन लोग समझा करते थे कि इन स्त्रियों में अवश्य कोई दैवी या अलौकिक शक्ति है! इँगलैंड में भी अनेक ऐसी वीर और योद्धा स्त्रियाँ हो गई हैं, जिनमें महारानी बोडीशिया का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है। जब रोमन लोगों ने इँगलैंड पर आक्रमण किया था, तब महारानी बोडीशिया अपना रथ स्वयं अपने हाथ से हाँक-कर युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं का सामना करने के लिये गई थीं।

परंतु आरंभिक काल की स्त्रियों की यह स्वतंत्रता और उन्नति स्थायी न हो सकी। सभी देशों में उनकी यह उन्नति और वृद्धि किसी-न-किसी प्रकार बिलकुल रुक गई। स्त्रियों का वह पहलेवाला आदर-मान ही नहीं रह गया; उनकी स्थिति में विलक्षण परिवर्तन भी हो गया। धनवानों या उच्च कोटि के लोगों में स्त्रियाँ केवल पाशविक वृत्तियों को चरितार्थ करनेवाली और आनंद की सामग्री समझी जाने लगीं, और धनहीनों या निम्न कोटि के लोगों में उनसे अनेक प्रकार के कठिन परिश्रम के काम लिए जाने लगे। बहुत दिनों तक प्रायः सभी देशों में यह अवस्था समान रूप से चलती रही। इसके उपरांत योरप में, मध्य-युग में, फिर स्त्रियों को उनका पुराना और उपयुक्त

मान मिलने लगा। उस समय जो लोग नाइट या सरदार होते थे, उन्हें विशेषतः अपनी स्त्री का और साधारणतः स्त्री-मात्र का यथेष्ट आदर करना पड़ता था; वे उनकी सब प्रकार के कष्टों तथा विपत्तियों आदि से रक्षा करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। उस युग में वहाँ स्त्रियों का महत्व जितना अधिक बढ़ा, उतना कदाचित् पहले कभी नहीं बढ़ा था। और, यही कारण था कि उस युग में वहाँ अनेक ऐसी स्त्रियाँ होने लगी थीं, जो शिक्षा, चिकित्सा और धर्म-प्रचार आदि कामों में पुरुषों की ही भाँति काम करती थीं। जर्मनी के अनेक नगरों में उन्हें पुरुषों के ही समान व्यापार आदि करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था; और फ्रांस में तो उन पेशों पर एक प्रकार से स्त्रियों का ही एकछत्र अधिकार था, जो स्त्रियों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त समझे जाते थे। ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिये जो अनेक बड़े-बड़े युद्ध हुए, उनके कारण योरप के अनेक देशों में पुरुषों की संख्या बहुत घट गई थी। उस अवसर पर बड़े-बड़े काम स्त्रियों ने ही सँभाले थे, और बहुत अच्छी तरह सँभाले थे।

परंतु इस बार भी स्त्रियों का वह आदर-मान और महत्व स्थायी न रह सका, और उनकी स्थिति फिर बिगड़ने लगी। योरप के जिस काल को लोग "पुनरुत्थान-काल" कहा करते हैं, उस समय लोगों की उच्छृंखलता बहुत बढ़ गई, और अनाचार भी बहुत अधिक फैल गया। यद्यपि उन दिनों बीच-बीच में इधर-उधर

कुछ सुयोग्य स्त्रियाँ हो जाया करती थीं, तथापि अधिकांश में उनकी अवस्था ख़राब ही रहती थी। उन दिनों न तो उनकी शिक्षा आदि का कोई प्रबंध होता था, और न कोई उनकी उन्नति की ओर ध्यान ही देता था। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनकी अवस्था फिर सुधरने लगी ; क्योंकि उनके लिये भी उच्च शिक्षा मिलने की व्यवस्था होने लगी। तब से अब तक उनकी उन्नत्ति बराबर होती जा रही है और लक्षणों से ऐसा जान पड़ता है कि इस बार की उनकी उन्नति स्थायी होगी; अब वे जो मर्यादा प्राप्त कर लेंगी, वह सहज में नष्ट न हो सकेगी। योरप और अमेरिका के बड़े-बड़े देशों को जाने दीजिए, बहुत ही छोटे-छोटे और साधारण देशों में भी स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता और साथ ही अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। फिनलैंड में स्त्रियाँ पार्लियामेंट की सदस्य तक हो सकती हैं। नार्वे की स्त्रियों को पार्लियामेंट तक के चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त है। यही बात स्वीडन और आइस-लैंड आदि देशों में भी है। रूस में पहले से ही स्त्रियों को बहुत कुछ स्वातंत्र्य तथा अधिकार प्राप्त थे। इधर जब से वहाँ बाल्शेविज़्म के सिद्धांतों का प्रचार हुआ है, तब से उनकी वह स्वतंत्रता और वे अधिकार और भी बढ़ गए हैं। वहाँ की अनेक स्त्रियाँ डॉक्टरी, इंजीनियरी और सम्पादन आदि कार्य करती हैं। इँगलैंड में भी वे धीरे-धीरे अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त करती जा रही हैं; और लक्षणों से जान पड़ता

है कि इस समय उन्हें जो अधिकार प्राप्त नहीं हैं, उन अधिकारों को वे विना प्राप्त किए न छोड़ेंगी। सन् १८७० में वहाँ एक ऐसा क़ानून बना था, जिसके अनुसार वहाँ की विवाहिता स्त्रियाँ सम्पत्ति ख़रीद, रख और बेच सकती हैं, और सब प्रकार के व्यापार कर सकती हैं। भारतवर्ष की हिंदू-स्त्रियों को तो इस प्रकार के अधिकार मनु के समय से ही प्राप्त हैं। सन् १८६४ में वहाँ की स्त्रियों को स्थानीय तथा प्रांतीय बोर्डों के चुनाव में मत देने तथा स्वयं निर्वाचित होने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। अभी तक इँगलैंड में स्त्रियाँ ज्यूरी नहीं हो सकती हैं; पर अमेरिका, नार्वे और फिनलैंड में उन्हें ज्यूरी के रूप में न्यायालय तक में बैठने का अधिकार प्राप्त है, और कहा जाता है कि वहाँ वे अपने तत्संबंधी कर्तव्यों का पालन बहुत ही योग्यता-पूर्वक तथा निष्पक्ष भाव से करती हैं।

अब ज़रा भारतवर्ष की स्त्रियों की दशा पर विचार कीजिए। आज से हज़ारों वर्ष पहले जिस समय योरपवाले बिलकुल जंगली दशा में रहते थे, भारतवर्ष की स्त्रियाँ परम विदुषी और सुयोग्य हुआ करती थीं। मैत्रेयी और गार्गी-सरीखी अनेक ऐसी स्त्रियाँ इस देश में हो गई हैं, जिनका सिक्का बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष भी माना करते थे। हमारे यहाँ के प्रायः सभी धर्म-शास्त्रकारों ने अनेक बातों में स्त्रियों को पुरुष के समान ही अधिकार दिए हैं। हमारे यहाँ स्त्री-धन-संबंधी जो नियम हैं, उनसे यह बात भली भाँति सिद्ध होती है कि किसी

समय यहाँ स्त्रियों का कितना अधिक आदर-मान होता था! साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि अभी तक किसी देश में ऐसा कोई क़ानून या नियम नहीं बना, जो इस विषय में हमारे यहाँ के स्त्री-धन-संबंधी नियमों का मुक़ाबला कर सके। मुसलमान-स्त्रियों को भी उनके धर्म के अनुसार सम्पत्ति आदि पर इसी प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। परंतु जिस प्रकार संसार के अन्यान्य देशों में स्त्रियों की उन्नति रुक गई, और उनके अधिकारों की उपेक्षा होने लगी, उसी प्रकार हमारे यहाँ भी उन पर आपत्ति आई। इधर बहुत दिनों से हमारे देश पर विदेशियों के निरंतर आक्रमण होते रहे, और अनेक प्रकार के आंतरिक झगड़े-बखेड़े भी चलते रहे। इन आक्रमणों और झगड़ों-बखेड़ों के कारण हमारे यहाँ विद्या और कला आदि की चर्चा बिलकुल रुक गई, और उसके साथ-ही-साथ स्त्रियों की उन्नति में भी बहुत बड़ी बाधा पड़ी। हमारे यहाँ की यह दुर-वस्था दिन-पर-दिन बराबर बढ़ती ही गई, और इस समय इस देश तथा यहाँ की स्त्रियों की जो दशा है, उसका वर्णन न करना ही अच्छा है।

अब इधर कुछ दिनों से धीरे-धीरे इस देश में जागृति के कुछ लक्षण दिखाई देने लगे हैं। साथ-ही-साथ लोगों का ध्यान स्त्रियों की दशा सुधारने की ओर भी गया है। इस बात में तो किसी को कोई संदेह हो ही नहीं सकता कि उन्नति का मुख्य उपाय शिक्षा का प्रचार है। पर साथ ही हमें इस

बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा का प्रचार हो जाने पर भी उन्नति तभी होगी, जब उस शिक्षा का ठीक-ठीक उपयोग होगा। यदि स्त्रियों को अच्छे ढंग से और उपयुक्त शिक्षा दी जाय, तो वे समाज और देश की उन्नति में पुरुषों को बहुत कुछ सहायता दे सकती हैं। इस समय योरप और अमेरिका के प्रायः सभी बड़े-बड़े देशों में अनेक ऐसी बड़ी-बड़ी सभाएँ आदि स्थापित हैं, जो स्त्रियों की उन्नति के लिये अनेक प्रकार के उपाय और प्रयत्न करती हैं। ऐसी सभाएँ किसी एक देश या जाति की स्त्रियों के लिये उद्योग नहीं करतीं, बल्कि उनका उद्देश्य समस्त स्त्री-जाति की उन्नति करना है। इस बात को कोई इनकार नहीं कर सकता कि जिस बात से स्त्रियों का भला होगा, उस बात से पुरुषों का भी अवश्य ही भला होगा। प्रायः सभी बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् एक स्वर से यह कहते हैं कि समस्त मानव-जाति का हित बहुत-से अंशों में स्त्रियों के ही हाथ में है। जिस देश की स्त्रियाँ जितनी ही सदाचारिणी, सुशील, शिक्षित और कर्मशील होंगी, वह जाति उतनी ही उन्नत, सभ्य तथा सम्पन्न होगी। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध नाटककार शेरिडन ने कहा है—"स्त्रियाँ ही हमारा शासन करती हैं। हमें चाहिए कि हम उन्हें पूर्ण बनावें। उन पर ज्ञान का जितना ही अधिक प्रकाश पड़ेगा, उतना ही अधिक प्रकाश हम पर भी पड़ेगा। पुरुषों की बुद्धिमत्ता स्त्रियों के मानसिक संस्कार पर ही निर्भर करती है।"

जिस स्त्री को अच्छी शिक्षा मिलती है, वह अपने पति की सुख-समृद्धि की अनेक प्रकार से वृद्धि कर सकती है, आपत्ति-काल में उसकी विपत्ति का बोझ हलका कर सकती और कठिन समय आ पड़ने पर उसे उत्साहित करके कर्तव्य-परायण बना सकती है। जिस स्त्री का ज्ञान-भांडार पूर्ण होता है, वह अपने बालकों को आरंभ से ही बहुत कुछ शिक्षित और सदाचारी बना सकती और उनमें ऐसा बीज बो सकती है, जिससे वे आगे चलकर अपने समाज तथा देश के गौरव का कारण बन सकें। इसलिये प्रत्येक देश की स्त्रियों का यह परम कर्तव्य होना चाहिए कि वे जितना अधिक हो सके, शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न करें, जिससे वे देश की भावी जनता को पूर्ण रूप से शिक्षित और सदाचारी बना सकें। मूर्ख स्त्रियों की संतान जब थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त कर लेती है, तब वह अपने माता-पिता को मूर्ख और अयोग्य समझने लगती है, और बहुत-से अंशों में उनके हाथ से निकल जाती है—उनके प्रभाव-क्षेत्र के बाहर हो जाती है। पर जो माता शिक्षित होती है, वह अपने विद्या-बल से अपनी संतान को सदा अपने वश में रखती है। यही नहीं, बल्कि वह उनकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक उन्नति में भी बहुत अधिक सहायक होती है। ऐसी माता और उसकी संतान में जो प्रेम-बंधन होता है, वह और भी दृढ़ हो जाता है, और दोनों को गार्हस्थ्य जीवन में बहुत अधिक आनंद मिलने लगता है।

योरप के सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् कांट का यह कथन बहुत ही ठीक है कि संसार में हमें जितनी शुभ या अच्छी बातें दिखलाई देती हैं, वे सब केवल अच्छी शिक्षा के ही कारण। वास्तव में स्त्रियों की उपयुक्त तथा उत्तम शिक्षा से जितना अधिक लाभ हो सकता है, उसकी सहज में कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हाँ, वह शिक्षा उपयुक्त और ठीक ढंग से होनी चाहिए। स्त्रियों के लिये वही शिक्षा सर्वोत्तम और उपयुक्त कही जायगी, जो उन्हें गार्हस्थ्य जीवन के सभी अंगों के लिये उपयोगी बना सके। स्त्रियों को सबसे पहले इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि कन्या-रूप में, भगिनी-रूप में, पत्नी-रूप में और माता-रूप में हमारे क्या-क्या कर्तव्य हैं; और तब उन्हें इस बात का ज्ञान होना भी आवश्यक है कि अपने समाज, देश तथा राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य क्या है। इसमें संदेह नहीं कि आज-कल की शिक्षा-प्रणाली अनेक अंशों में दूषित है। जहाँ वह एक ओर पुरुषों को किसी काम का नहीं रहने देती, वहाँ वह दूसरी ओर स्त्रियों को भी गृहस्थी के कर्तव्यों का पालन करने-योग्य नहीं रहने देती। ऐसी शिक्षा अधूरी और निकम्मी ही नहीं, बल्कि हानिकर भी होती है। जो शिक्षा किसी बालिका को गृहस्थी का काम चलाने के योग्य न बना सके, वह किस काम की? संसार की अधिकांश स्त्रियों को तो सदा गृहस्थी का ही काम करना पड़ेगा। और, यदि वे उसी काम के लिये उपयुक्त न हुईं, तो फिर उनके शिक्षित होने से

लाभ ही क्या हुआ ? इस विषय में हमें योरप की स्त्रियों की अवस्था से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। आजकल योरप में स्त्री-शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार है। पर वह शिक्षा प्रायः एकांगीन होती है। उस शिक्षा से उनका मानसिक विकास तो बहुत अधिक हो जाता है, पर वे गृहस्थी के कर्तव्यों का पालन करने-योग्य नहीं रह जातीं। इसमें संदेह नहीं कि वे बहुत उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं, और उसके फल-स्वरूप अनेक प्रकार के बड़े-बड़े काम और पेशे करने लगती हैं; पर वे गृहस्थी चलाने के योग्य नहीं होतीं। यही कारण है कि योरप का गार्हस्थ्य जीवन दिन-पर-दिन दुःखपूर्ण होता जाता है। हम भारतवासियों को ऐसी शिक्षा से बचना चाहिए। जिन स्त्रियों को अधिक और उच्च कोटि की शिक्षा मिलती है, वे ऐसे ही काम करना पसंद करती हैं, जिनके लिये केवल मानसिक बल की आवश्यकता होती है। शारीरिक श्रम करने से वे बहुत घबराती हैं। आगे के प्रकरणों में हम कई ऐसे उत्तम और उप-योगी काम-धंधे बतलावेंगे, जो स्त्रियों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं, और जिनकी ओर अभी तक हमारे देश की स्त्रियों का बिलकुल ही ध्यान नहीं गया है। ये सब प्रायः ऐसे ही हैं, जो गृहस्थी के कार्य-संचालन के साथ-ही-साथ बहुत सहज में सम्पन्न हो सकते हैं। साथ ही हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो कोरा मानसिक श्रम करने की अपेक्षा शारीरिक श्रम करना ही अधिक

पसंद करेंगी। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि स्वास्थ्य की रक्षा के विचार से जिस प्रकार पुरुषों के लिये शारीरिक परिश्रम आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्रियों के लिये भी उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। कहना तो यह चाहिए कि स्त्रियों के लिये, अनेक अंशों में, शारीरिक परिश्रम की और भी अधिक आवश्यकता है।

एक बात और है, जिसका हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि भारत में स्त्रियों के प्रश्न का रूप कुछ और ही है। इस समय योरप और अमेरिका आदि देशों में स्त्रियों के प्रश्न ने जो रूप धारण कर लिया है, वह यहाँ नहीं है, और न सहसा हो सकता है। उसका कारण भी बहुत-से अंशों में पाश्चात्य देशों की स्त्री-शिक्षा की दूषित प्रणाली ही है। योरप और अमेरिका में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है, जो या तो विधवा हैं या जिनका विवाह ही नहीं हुआ है। ऐसी स्त्रियाँ अपने परिवार के सिर पर भार बनकर रहना पसंद नहीं करतीं, और प्रायः अपने संबंधियों को छोड़कर अलग हो जाती और स्वतंत्र रूप से जीवन-निर्वाह करने लगती हैं। यही कारण है कि आजकल उन देशों में दीन और दुःखी लोगों की दशा सुधारने तथा उन्हें अनेक प्रकार से सहायता पहुँचानेवाले परोपकारी कार्यों की इतनी अधिकता देखी जाती है। संसार में हमें जो कुछ दया अथवा परोपकारिता आदि दिखलाई देती है, वह अनेक अंशों में स्त्री-जाति के ही कारण। मनुष्यत्व के इस अंग

की उन्नति करने में सबसे अधिक सहायक स्त्रियाँ ही हुई हैं। संसार में प्रायः स्त्रियों की कृपा से विना घर-बारवालों को रहने का स्थान मिलता है, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा होती है, और पतितों का उद्धार होता है। आजकल पाश्चात्य देशों में परोपकार के जितने अधिक कार्य होते हैं, उतने कदाचित् पहले नहीं होते थे। हमारे देश में भी बहुत कुछ दान पुण्य आदि स्त्रियों की ही बदौलत होते हैं। हाँ, यह और बात है कि ठीक-ठीक शिक्षा और संस्कार न होने के कारण उस दान-पुण्य का उचित और ठीक मार्ग में उपयोग न होता हो। पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ शिक्षित होती हैं, इसीलिये वे अपनी परोपकार वृत्ति और दयालुता आदि का बहुत कुछ सोच-समझकर और अच्छे ढंग से उपयोग करती हैं। इधर हमारे यहाँ शिक्षा का अभाव होने के कारण केवल पुरानी लकीर ही पीटी जाती है। पर पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की इस प्रवृत्ति के कारण वहाँ के गार्हस्थ्य जीवन को जो क्षति पहुँचती है, वह अवश्य ही शोचनीय है, और हमें उसके उसी दूषित अंश से बचना चाहिए। इस संबंध में पाश्चात्य देशों के प्राप्त किए हुए अनुभव से हमें लाभ उठाना चाहिए। हमें सोच-विचार कर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे हम उस कटु अनुभव से बचे रहें।

प्रायः लोग कहा करते हैं कि स्त्रियाँ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से इतनी दुर्बल होती हैं कि वे शिक्षा से उतना अधिक लाभ नहीं उठा सकतीं, जितना पुरुष

परंतु पाश्चात्य देशों की स्त्रियों ने यह बात भली भाँति प्रमाणित कर दी है कि सब कामों में नहीं, तो भी अधिकांश कामों में वे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से उतनी ही अधिक समर्थ है, जितने पुरुष जन्म के समय बालकों और बालिकाओं का मस्तिष्क प्रायः एक-सा हुआ करता है। इस संबंध में कुछ प्रयोग किए गए हैं, जिनका परिणाम इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है। इस समय भी संसार में अनेक जातियाँ ऐसी पाई जाती हैं, जिनमें अभी तक सभ्यता का कम विकास हुआ है, अर्थात् जो अनेक अंशों में अभी तक प्रायः असभ्य ही हैं। ऐसी जातियों की स्त्रियों का मस्तिष्क माप और तौल में प्रायः पुरुषों के मस्तिष्क के समान ही हुआ करता है। हाँ, उच्च कोटि की और सभ्य जातियों में यह अंतर विशेष रूप से देखने में आता है। सभ्य जातियों की स्त्रियों का मस्तिष्क अवश्य ही नाप और तौल में पुरुषों के मस्तिष्क की अपेक्षा कुछ छोटा और कम हुआ करता है। इससे यही सिद्ध होता है कि इधर अनेक शताब्दियों से सभ्य जातियों में स्त्रियाँ प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती रही हैं, और उनके मानसिक विकास की ओर जैसा चाहिए वैसा ध्यान नहीं दिया गया। इस उपेक्षा और लापरवाही का परिणाम यह हुआ है कि सभ्य जातियों में स्त्रियों के मस्तिष्क का विकास बिलकुल रुक गया है। यह ठीक है कि साधारणतः पुरुषों के मस्तिष्क की अपेक्षा स्त्रियों का मस्तिष्क कुछ छोटा हुआ करता

है। पर, फिर भी, साधारणतः स्त्रियों के शरीर को देखते हुए उनका मस्तिष्क अपेक्षा-कृत भारी ही होता है। इसमें संदेह नहीं कि इस समय के प्रयोगों से यही सिद्ध होता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मानसिक योग्यता कम होती है। पर इसका कारण यह है कि इधर बहुत दिनों से स्त्रियाँ ऐसी परिस्थिति में रक्खी गई हैं, जिसके कारण उनमें दया, प्रेम और भावुकता आदि गुण तो बहुत कुछ बढ़ गए हैं, पर विज्ञान, काव्य, दर्शन और ललित-कला आदि में उन्हें पुरुषों से दबना पड़ता है। ठीक यही दशा उनके शारीरिक विकास की भी हुई है। इधर बहुत दिनों से न तो उनसे किसी प्रकार का व्यायाम आदि कराया जाता है, और न उनसे कोई विशेष शारीरिक परिश्रम का ही काम लिया जाता है। परिणाम यह हुआ है कि वे शारीरिक दृष्टि से भी पुरुषों की अपेक्षा बहुत कुछ दुर्बल एवं हीन हो गई हैं।

परंतु इतिहास के देखने से हमें पता चलता है कि जिन स्त्रियों पर शासन करने का भार आ पड़ा है, वे पुरुषों के समान ही उत्तमता-पूर्वक शासन करने में समर्थ हुई हैं। संसार के और प्रदेशों को जाने दीजिए, स्वयं भारत में ही ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं है। सुलतान अल्तमश की कन्या रज़िया बेगम ने अपने भाई के सिंहासन-च्युत होने के उपरांत दिल्ली में बहुत अच्छी तरह शासन किया था। जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ भी शासन-कार्य में इतनी दक्ष थी कि जहाँगीर ने प्रायः सारा शासन-भार

उसी को सौंप दिया था, यहाँ तक कि उसके नाम का सिक्का भी चलवा दिया था। इन्दोर की महारानी अहल्याबाई तथा झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की गिनती सदा सुयोग्य शासिकाओं में होती रहेगी। इँगलैंड के सबसे बड़े साम्राज्य का विस्तार उसकी स्त्री-शासिका महारानी विक्टोरिया के ही समय में हुआ है । यदि देखा जाय, तो सारे संसार में इतनी अधिक सुयोग्य शासिकाएँ मिलेंगी कि किसी को सहसा यह कहने का साहस ही न होगा कि स्त्रियाँ किसी प्रकार का उत्तर-दायित्वपूर्ण कार्य करने के अयोग्य होती हैं।

मानव-जाति के कल्याण के अनेक बड़े-बड़े आंदोलनों के मूल में भी हमें प्रायः स्त्रियाँ ही दिखाई देती हैं। अमेरिका से दासत्व-प्रथा उठाने का उद्योग करनेवालों में प्रधान एक स्त्री ही थी, जिसका नाम हेरियट बीचर स्टो था। इँगलैंड के जेलखानों का सुधार भी एलिज़बेथ फ्राई-नामक एक स्त्री ने ही, बहुत दिनों तक निरंतर परिश्रम करने के उपरांत, किया था । इससे सिद्ध होता है कि समाज-सुधार और परोपकार आदि के कामों में भी स्त्रियाँ पुरुषों से कम नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि स्त्रियों में कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं; पर इसका कारण यही है कि उन्हें उपयुक्त शिक्षा नहीं दी जाती। स्त्रियाँ व्यवस्था और संगठन का काम करने के लिये उपयुक्त नहीं पाई जातीं; कला और विज्ञान-संबंधी बारीक बातों के समझने में भी वे प्रायः असमर्थ हुआ करती हैं। उनमें पाई

जानेवाली बहुत अधिक भावुकता और स्वभाव की कोमलता भी एक प्रकार की दुर्बलता या दोष ही है। स्त्रियाँ किसी बात के सोचने-समझने में ज़्यादा दिमाग़ नहीं लड़ा सकतीं, और अपने कोमल हृदय से ही अधिक काम लिया करती हैं। यही कारण है कि अवसर पड़ने पर उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और उनसे अनेक प्रकार की भूलें हो जाती हैं। परंतु ये सब बातें ऐसी हैं, जो कुछ दिनों की शिक्षा और संस्कार आदि से सहज में दूर की जा सकती हैं। स्त्रियों में दया, अनुराग, सहानुभूति, स्वार्थ-त्याग आदि अनेक गुण स्वाभाविक रूप में और आवश्यकता से अधिक हुआ करते हैं। और, यदि उन्हें ठीक ढंग से शिक्षा दी जा सके, तो इन गुणों से तो बहुत कुछ काम लिया ही जा सकता है; पर साथ ही उनमें अनेक नए गुणों का भी विकास हो सकता है, जिसके कारण संसार की सुख-समृद्धि बहुत कुछ बढ़ सकती है। किंतु इसके लिये उन्हें अनेक बातों में पुरुषों की पूरी-पूरी सहायता की आवश्यकता है। कम-से-कम अभी तो बिना पुरुषों की सहायता के उनका कोई काम चल ही नहीं सकता। हाँ, कुछ दिनों के उपरांत वे इतनी योग्यता अवश्य प्राप्त कर लेंगी कि बहुत-से काम स्वतंत्रता-पूर्वक करने लग जायँगी। और, उसी दशा में वे पुरुषों के साथ अनेक प्रकार के कार्य करके, वास्तविक अर्थ में अर्द्धांगिनी कहलाने के योग्य होंगी।

स्त्रियों की शिक्षा पर तो बहुत अधिक ज़ोर दिया जाता है,

पर इस संबंध में एक बहुत बड़ी कठिनाई है, जिसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। वास्तव में स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे वे जीविका-उपार्जन करने अथवा कम-से-कम सामाजिक उन्नति और कल्याण करने के योग्य तो हो जायँ, पर साथ ही वे गृहस्थी के काम के भी योग्य बनी रहें—पत्नी और माता के कर्तव्यों का पालन के अयोग्य न हो जायँ; क्योंकि स्त्रियों के प्रधान कर्तव्य गृहस्थी-संबंधी ही हैं। जिन देशों में स्त्रियाँ गृहस्थी के कर्तव्यों से विमुख होकर और-और प्रकार के कार्य करने लगी हैं, उन देशों के गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट और विपत्तियाँ भी दृष्टिगोचर होने लगी हैं। इसीलिये आजकल के बड़े-बड़े वैज्ञानिक और स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती यह समझने लगे हैं कि यदि स्त्रियाँ केवल ऐसे शारीरिक और मानसिक कार्य करने लगेंगी, जो उनके लिये उपयुक्त नहीं हैं, तो उसमें समय और शक्ति के नाश के सिवा और कुछ भी न हो सकेगा। हमारी समझ में तो यह आता है कि इसके अतिरिक्त उससे उलटे और हानि भी होगी। हम भारतवासी गार्हस्थ्य जीवन को जितना अधिक महत्व देते और उसे जिस दृष्टि से देखते हैं, उस दृष्टि से न तो और देशों के लोग उसे देखते हैं, और न उसे उतना अधिक महत्व ही देते हैं। यही कारण है कि उनका गार्हस्थ्य जीवन न तो उतना अधिक सरस ही होता है, और न सुखदायी ही। पर अब उन लोगों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है, और वे सम-

भने लगे हैं कि आजकल जिस ढंग से स्त्री-शिक्षा दी जा रही है, वह ठीक नहीं है; और इसीलिये वे सोचते हैं कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जो उनके शारीरिक संगठन को देखते हुए उनके लिये उपयुक्त हो; साथ-ही-साथ वे गृहस्थी के काम के भी योग्य बनी रहें। आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ बहुधा वही काम करने लग जाती हैं, जिसे अब तक पुरुष करते आए हैं। परंतु अनेक दृष्टियों से यह बात वांछनीय नहीं। उनके लिये ऐसे काम सोचे जाने चाहिए, जो केवल उन्हीं के लिये उपयुक्त हों, और जिनमें वे अपने स्वाभाविक गुणों और विशेषताओं का पूरा-पूरा उपयोग कर सकें। स्त्रियों और पुरुषों में जो भेद है, वह बहुत-से अंशों में स्पष्ट और प्रत्यक्ष है। बहुत-से गुण ऐसे हैं, जो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक पाए जाते हैं; और बहुत-से ऐसे हैं, जो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिकता से मिलते हैं। इन परस्पर भिन्न गुणों के संबंध में एक बहुत बड़े विद्वान् का मत है कि ये सब गुण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं, अर्थात् न तो केवल स्त्रियों के गुणों के कारण और न केवल पुरुषों के गुणों के कारण ही कभी पूर्णता प्राप्त हो सकती है। पूर्णता तभी प्राप्त होगी, जब दोनों के गुण मिलकर साथ-साथ काम करेंगे। संसार के कल्याण के लिये स्त्रियों-वाले गुणों की भी आवश्यकता है, और पुरुषोंवाले गुणों की भी। हमें अंधा होकर स्त्रियों के विकास और उन्नति के पीछे ही

न पड़ जाना चाहिए, बल्कि पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि स्त्रियों का अब तक का इतिहास और मानव-जाति का अब तक का अनुभव हमें क्या बतलाता है। साथ ही हमें इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि यदि हम स्त्रियों को गृहस्थी का काम छोड़कर तरह-तरह के पुरुषोंवाले पेशे करने के लिये ही उत्तेजित करेंगे, तो मानों हम बिलकुल ग़लत रास्ते पर चलते जायँगे। इसमें संदेह नहीं कि यह बात भी कुछ अनुपयुक्त-सी जान पड़ेगी; क्योंकि इसके कारण स्त्रियों पर दोहरी शिक्षा का बोझ आ पड़ेगा। किंतु पहली और प्रधान शिक्षा तो गृहस्थी-संबंधी ही होगी, जिससे वे पत्नी और माता के कर्तव्यों का पालन करने के योग्य बनेंगी; और दूसरी शिक्षा ऐसी होगी, जो उन्हें आवश्यकता पड़ने पर—कठिन परिस्थिति उत्पन्न होने पर—गृहस्थी के क्षेत्र से बाहर निकालकर जीविका-उपार्जन करने के योग्य बना सकेगी। ऐसी दशा में इस समय जो कुछ कहा जा सकता है, वह केवल यही कि हमें दोनों पक्षों की चरम सीमाओं से बचना चाहिए। स्त्रियों की शिक्षा के लिये कोई एक सार्वजनिक नियम नहीं बना देना चाहिए, बल्कि व्यक्तिगत आवश्यकताओं का भली भाँति विचार करके, ख़ूब अच्छी तरह से सोच-समझकर, वैज्ञानिक दृष्टि से परिवर्तन और परिवर्द्धन करना चाहिए। बिना इतना किए हमें कोई नया मार्ग नहीं ग्रहण करना चाहिए। आरंभ में कुछ समय तक तो बालकों और बालिकाओं को एक साथ ही अथवा एक

ही तरह की शिक्षा दी जा सकती है; पर कुछ आगे चलकर दोनों का क्रम एक दूसरे से भिन्न हो जाना चाहिए, और बालिकाओं को केवल वही शिक्षा दी जानी चाहिए, जो केवल उनके शारीरिक गठन और स्वाभाविक गुणों को देखते हुए उनके लिये उपयुक्त हो, जिसमें वे मुख्यतः गृहस्थी के काम के योग्य भी बनी रहें।

हम यह बात पहले ही कह चुके हैं कि स्त्रियों के संबंध में भारतीय आदर्श योरप और अमेरिका के आदर्श से बिलकुल भिन्न है, और इसीलिये हमारे देश की स्त्रियों की शिक्षा में भी उक्त देशों की शिक्षा से बहुत कुछ अंतर होगा। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि किसी व्यक्ति को आगे चलकर जीवन में जो कुछ काम करना पड़े, उसके लिये वह सब प्रकार से योग्य और समर्थ हो जाय। शिक्षा से विचार शुद्ध और परिष्कृत होते हैं, और काम करने की शक्ति बढ़ती है। पर इस प्रकार की शिक्षा का आरंभ जीवन-काल के आरंभ से ही होना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि सबसे पहले तो बालिकाओं को साधारण अक्षर-ज्ञान कराकर पढ़ने-लिखने-योग्य बनाया जाय, और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे आगे चलकर घर-गृहस्थी के काम के योग्य हो सकें। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को कुछ ऐसी शिक्षा की भी आवश्यकता है, जिसके द्वारा वे समय पड़ने पर स्वतंत्र रूप से अपना निर्वाह करने में भी समर्थ हो सकें। इस समय भी भिन्न-भिन्न जातियों में बहुत-सी

ऐसी स्त्रियाँ पाई जायँगी, जो विधवा, पुत्रहीना अथवा और किसी प्रकार से असहाय हो जाने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट भोगती हैं, जीविका-निर्वाह का कोई उपाय जिनके पास नहीं होता। भले घर की ऐसी स्त्रियों को तो और भी अधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। वे न तो भीख माँग सकती हैं, न किसी प्रकार का दान ले सकती हैं, और न स्वयं कोई ऐसी कला या काम जानती हैं, जिससे अपना निर्वाह कर सकें। इस पुस्तक के आगे के प्रकरणों में कुछ ऐसे ही धंधों का वर्णन किया जायगा, जो सब प्रकार से स्त्रियों के लिये उपयुक्त हैं, और जिनके द्वारा अनेक पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ भली भाँति और प्रतिष्ठा-पूर्वक अपना निर्वाह कर रही हैं। साथ ही ये काम ऐसे भी हैं, जिनमें पुरुषों के साथ किसी प्रकार की प्रति-द्वंद्विता का प्रश्न भी नहीं उठता। यदि हमारे देश की स्त्रियाँ इस प्रकार के कामों में लग जायँ, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे अपनी जाति, समाज, देश और साथ-ही-साथ समस्त मानव-समाज का बहुत बड़ा कल्याण करने में समर्थ होंगी। ऐसे कामों को अपने हाथ में लेने के कारण स्त्रियों की स्थिति तो बहुत कुछ सुधर ही जायगी, साथ ही समाज की स्थिति में भी बहुत कुछ सुधार हो जायगा; और उस आंदोलन की वृद्धि में बहुत कुछ सहायता मिलेगी, जिसकी सफलता इस देश के बहुत-से शुभचिंतक पुरुषों और स्त्रियों को हृदय से अभीष्ट है।

आदि तैयार करने, फल-फलहरी तथा शाक-भाजी आदि पैदा करने और शहद की मक्खियाँ आदि पालने की बहुत अच्छी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम भी वहाँ बहुत ही शुभ और लाभ-दायक प्रमाणित हुआ है। हमारे देश में न तो अभी इस प्रकार के विद्यालय ही हैं, और न इस देश की सामाजिक स्थिति ही ऐसी है कि यहाँ की स्त्रियाँ इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिये कॉलेजों में जायँ। अच्छा तो यह है कि बालिकाओं में छोटी अवस्था से ही इस प्रकार के कार्यों के प्रति अनुराग उत्पन्न किया जाय। इससे उन्हें सहज ही सब बातों का बहुत कुछ ज्ञान हो जायगा, और बड़ी होने पर वे उसके बहुत-से काम आप-से-आप ठीक ढंग से कर लेंगी। इससे एक और लाभ होगा। जो बालिकाएँ छोटी अवस्था से ही खेत-बारी के काम में लग जायँगी, उन्हें देहात का जीवन इतना पसंद आ जायगा कि फिर वे बड़ी होने पर वकालत और बैरिस्टरी-जैसे पेशों के प्रलोभन में न पड़ सकेंगी। बाल्यावस्था से ही बालिकाओं को इस प्रकार की शिक्षा देने का एक लाभ यह भी होगा कि फिर वे बड़ी होकर इस काम को तुच्छ नहीं समझेंगी, और बराबर शौक से करती रहेंगी। वास्तव में किसी प्रकार का उद्योग या काम निंदनीय नहीं होता, बल्कि लोग उसे व्यर्थ ही वैसा समझकर निन्दनीय बनाने लग जाते हैं। यदि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ, बाल्यावस्था से ही खेती-बारी के काम में लगी रहने के कारण, उसे प्रतिष्ठित समझने लगेंगी, तो और लोगों की भी

यह धारणा सहज में नष्ट हो जायगी कि खेती-बारी छोटा काम है। और, इससे हमारे देश का जो लाभ होगा, उसका सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। यदि हमारे देहातों की पाठशालाओं में बालिकाएँ भी पढ़ने के लिये जाने लगें, और वहाँ उन्हें—पाठ्य-पुस्तकों में ही सही—खेती-बारी के विषयों की शिक्षा दी जाने लगे, तो उनमें अनायास ही कृषि के प्रति अनुराग उत्पन्न किया जा सकता है। पाश्चात्य देशों के देहाती विद्यालयों में कृषि-संबंधी भी बहुत-सी बातें सिखलाई जाती हैं। वहाँ प्रत्येक बालिका को थोड़ी-सी ज़मीन दे दी जाती है, जिसमेंवह ऋतु और अपनी रुचि के अनुकूल फल-फूल और तरकारियाँ आदि उत्पन्न करती है, और इस प्रकार बहुत ही आरंभिक अवस्था में कृषि-संबंधी बहुत-सी बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। वहाँ प्रतिवर्ष देहातों में ऐसी प्रदर्शिनियाँ भी होती हैं, जिनमें छोटी-छोटी बालिकाओं द्वारा उत्पन्न की हुई तरह-तरह की चीज़ें रक्खी जाती हैं, और उनमें से अच्छी-अच्छी चीज़ों के लिये अनेक प्रकार के पुरस्कार दिए जाते हैं। इस प्रकार मानों उन्हें ऐसे कामों के लिये और भी अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है।

अभी हाल में भारतवर्ष के मध्य-प्रदेश में एक नई व्यवस्था की गई है, जो बहुत ही उपयोगी हो सकती है। वहाँ देहातों में छोटे-छोटे बालकों के लिये ऐसे आरंभिक विद्यालय स्थापित किए गए हैं, जिनमें केवल प्रातःकाल के समय ७ बजे से १० बजे तक पढ़ाई होती है। यह व्यवस्था इसलिये है कि जिससे देहात के

बालक सवेरे पढ़ चुकने के बाद, दिन के समय, अपने घर के लोगों को खेती-बारी के कामों में भी सहायता दे सकें। इन स्कूलों में साधारण लिखना-पढ़ना, हिसाब-किताब, भूगोल और ज़मीन की नाप-जोख तथा साधारण खेती-बारी की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक स्कूल के साथ एक छोटा-सा बग़ीचा भी होता है, जिसमें खेती के छोटे-छोटे काम होते हैं, और पाठ्य-पुस्तकों का विषय भी प्रायः कृषि-संबंधी ही होता है।

बालिकाओं को इस प्रकार की कृषि-संबंधी शिक्षा देने के लिये समस्त भारत में इसी प्रकार के स्कूल खोले जा सकते हैं। ऐसे स्कूलों में बालिकाओं को व्याख्यानों और लेखों आदि के द्वारा कृषि-संबंधी बहुत-सी आरंभिक बातें बतलाई जा सकती हैं। यदि किसी ज़िले या प्रांत में कोई ख़ास चीज़ अधिकता से उत्पन्न होती अथवा हो सकती हो, तो उसकी भी शिक्षा दी जा सकती है। उदाहरणार्थ जिन ज़िलों, में गउएँ अच्छी होती हों, उन ज़िलों में दूध, दही और मक्खन आदि का काम सिखलाया जा सकता है; और जहाँ नारंगियाँ अच्छी होती हों, वहाँ उनकी पैदावार कराई ज़ा सकती है। इसी प्रकार उन्हें शाक-तरकारी आदि बोने की विद्या भी सिखलाई जा सकती है। यह भी सिखलाया जा सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर अच्छी-अच्छी खादें किस प्रकार तैयार की जा सकती हैं। साथ ही उन्हें इस बात की भी शिक्षा दी जा सकती है कि कोई चीज़ तैयार करने में कितनी लागत आती और बाजार में बेचने पर

उसका क्या दाम मिलता है। इससे उन्हें घटी और नफ़े का भी बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

दूध, दही और मक्खन आदि तैयार करने का काम भी ऐसा है, जो बिलकुल एक स्वतंत्र व्यवसाय के रूप में सिखलाया जा सकता है। यह भी एक ऐसा काम है, जिसे चलाकर स्त्रियाँ अच्छा लाभ उठा सकती हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस संबंध में कुछ ऐसे मोटे काम भी होंगे, जिनमें पुरुषों की सहायता की आवश्यकता होगी। पर, फिर भी, दूध दुहना, दही जमाना, मक्खन बिलोना आदि ऐसे काम हैं, जिनमें उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता न होगी, और जिन्हें वे आप-ही-आप कर लिया करेंगी। यदि अधिक विस्तृत रूप में किया जाय, तो इस व्यापार से बहुत अधिक लाभ हो सकता है। योरप के डेनमार्क-नामक प्रदेश में गउएँ-भैंसें बहुत अधिकता से होती हैं, और बहुत अधिक मक्खन और पनीर आदि तैयार होता है। पर वहाँ इस प्रकार का काम करनेवालों में अधिकांश स्त्रियाँ ही हैं, जो बहुत अच्छी तरह सब कामों की व्यवस्था करती हैं, यहाँ तक कि बिक्री आदि की व्यवस्था भी प्रायः उन्हीं के हाथों में रहती है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि यह व्यवसाय स्त्रियों के लिये बहुत उपयुक्त है, और वे इसे अच्छी तरह कर सकती हैं। हमारे देश की हिंदू-स्त्रियाँ घर बैठे ये सब चीज़ें तैयार कर सकती हैं, और डाक के द्वारा आसपास के क़सबों या शहरों में उनकी बिक्री की भी

व्यवस्था कर सकती हैं। यदि वे चाहें, तो साथ ही शहद की मक्खियाँ पालकर शहद का भी व्यवसाय कर सकती हैं। मुसलमान-स्त्रियाँ यदि चाहें, तो साथ में मुर्ग़-मुर्ग़ियाँ भी रख सकती हैं, और उनके अंडे तथा चूज़े भी बेच सकती हैं। यदि ये सब काम छोटे रूप में किए जायँ, तो भी इनसे उनकी जीविका का भली भाँति निर्वाह हो सकता है; यदि बड़े मान में किए जा सकें, तो इनके द्वारा यथेष्ट धन भी संचित किया जा सकता है।

इँगलैंड में ऐसे कई बहुत बड़े स्कूल और कॉलेज हैं, जिनमें स्त्रियों को केवल इन्हीं सब विषयों की शिक्षा दी जाती है। साधारणतः इस प्रकार की शिक्षा में तीन महीने से लेकर दो वर्ष तक का समय लगता है। वहाँ कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जो समय-समय पर अपने यहाँ से कुछ ऐसी शिक्षिकाएँ भी गाँवों और देहातों आदि में भेजती हैं, जो वहाँ की स्त्रियों को तत्संबंधी नई-नई बातों और आविष्कारों आदि का ज्ञान कराती फिरती हैं, और इसके लिये किसी से कुछ फ़ीस नहीं लेतीं। इसका फल यह होता है कि ज्यों ही कोई नई बात मालूम होती या कोई नया आविष्कार होता है, त्यों ही वह सब लोगों को घर बैठे, और वह भी बिलकुल मुफ़्त में, मालूम हो जाता है। इसमें सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि इन सब बातों की व्यवस्था और इस प्रकार की संस्थाओं का संचालन स्त्रियाँ ही करती हैं। कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जो अलग-अलग विषयों के साम-

यिक पत्र निकालती तथा पुस्तकालय स्थापित करती हैं, और समय-समय पर अच्छे-अच्छे विद्वानों के व्याख्यानों आदि की व्यवस्था भी करती हैं। वहाँ स्त्रियों की एक ऐसी सार्वराष्ट्रीय सभा भी है, जो खेती-बारी आदि के कामों की उन्नति करने और स्त्रियों में तत्संबंधी नए-नए ज्ञान और आविष्कारों का प्रचार करने के लिये बनी है। यह संस्था खेती-बारी, दूध-दही, फल-फूल, शहद की मक्खी, ज़मीन, जंगल आदि के संबंध की सब प्रकार की बातें लोगों को बतलाया करती है, और स्त्रियों को उनकी उन्नति में सहायता दिया करती है—भिन्न-भिन्न देशों की प्रणालियों की तुलना करके निश्चय किया करती है कि कौन-सी प्रणाली किस अवस्था में अधिक लाभदायक प्रमाणित होती है। और, तब अपनी परीक्षाओं का परिणाम सब लोगों को बतलाया करती है। पूछने पर यह संस्था यह भी बतलाती है कि कोई उत्पन्न या तैयार की हुई चीज़ कहाँ और कैसे बिक सकती है। इस संस्था की सदस्याएँ आपस में पत्र-व्यवहार और परामर्श आदि करके भी अच्छा लाभ उठाया करती हैं; और इस प्रकार बिलकुल एकांत प्रदेशों में रहनेवाली स्त्रियों को भी सब बातें सहज में मालूम हो जाती हैं। साथ ही यह संस्था इस बात का भी ख़याल रखती है कि मज़दूरी करनेवाली स्त्रियों की मज़दूरी की दर घटने न पावे। जिन्हें अपने काम के लिये स्त्रियों के नौकर रखने की आवश्यकता होती है, उन्हें भी यह संस्था सहायता देती है, और जिन स्त्रियों को नौकरी या मज़-

दूरी की तलाश होती है, उन्हें यह नौकरी या मज़दूरी का काम भी दिलवा दिया करती है।

मुर्ग़े और मुर्ग़ियाँ आदि पालने का काम भी ऐसा है कि यदि ठीक ढंग से किया जा सके, तो उससे बहुत कुछ आर्थिक लाभ हो सकता है। यह ठीक है कि हमारे यहाँ कभी उच्च जाति की हिंदू-स्त्रियाँ यह व्यवसाय करना नहीं पसंद करेंगी; पर, फिर भी, मुसलमान अथवा और-और जातियों में ऐसी स्त्रियाँ निकल आवेंगी, जो यह कार्य निःसंकोच-भाव से कर सकेंगी। इस काम में भी प्रायः उतना ही लाभ होता है, जितना दूध-दही या फल-फूल आदि तैयार करने में; और इसमें भी घर-गृहस्थी का काम छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती। गृहस्थी के सब काम करते हुए भी यह काम बहुत अच्छी तरह चलाया जा सकता है।

इस प्रकार के कामों के साथ-ही-साथ यदि स्त्रियाँ चाहें, तो अचार, चटनी और मुरब्बे आदि तैयार करके बेचने का भी काम कर सकती हैं, जो आर्थिक दृष्टि से कम लाभदायक नहीं। शहद की मक्खियाँ आदि पालने और शहद तथा मोम आदि तैयार करके बेचने का काम भी इसके साथ-ही-साथ किया जा सकता है। यदि किसी प्रकार थोड़ी-सी अच्छी ज़मीन प्राप्त की जा सके, और उसमें ठीक ढंग से एक अच्छा छोटा-सा बग़ीचा लगाया जा सके, तो फल-फूल और तरकारी आदि की तो पैदावार उसमें हो ही सकेगी; साथ ही ऊपर बतलाए

हुए और सब काम भी उसमें सहज में हो सकते हैं। ऐसे बग़ीचे में अच्छे-अच्छे बड़े वृक्ष भी लगाए जा सकते हैं, जिनके फलों या लकड़ी से अच्छी आय हो सकती है। यदि आवश्यक ज्ञान पड़े, तो वे बीज, पौदों और कलमों आदि की बिक्री की भी व्यवस्था कर सकती हैं; क्योंकि प्रायः सभी जगह और सभी अवसरों पर लोगों को इस प्रकार की अच्छी चीज़ों की आवश्यकता रहती है। शाक-भाजी और फल-फूल आदि का काम ऐसा है, जो प्रायः सभी स्थानों में, अच्छे लाभ के साथ, किया जा सकता है।

यदि स्त्रियाँ बीज, पौदे और कलम आदि का काम करें, तो और भी अच्छा। इससे वे तरह-तरह के फूल भी उत्पन्न कर सकेंगी, जिनकी आसपास के नगरों में अच्छी बिक्री हो सकेगी। यदि वे सुरुचि-पूर्ण हों, तो अनेक प्रकार के सुंदर गुच्छे और मालाएँ आदि तैयार करके भी बहुत कुछ लाभ उठा सकती हैं। विवाह तथा इसी प्रकार के अन्यान्य अवसरों पर फूलों और पत्तों आदि से मकान और कमरे सजाने का काम भी उन्हें अधिकता से मिल सकता है। इसी के साथ बीज बेचने का भी बहुत अच्छा, हलका और स्त्रियों के लिये बड़ा ही उपयुक्त कार्य है। इस प्रकरण में जितने प्रकार के काम बताए गए हैं, यदि उन्हें सब कोई एक ही सुयोग्य और चतुर स्त्री कर सके, तो उसे बहुत अधिक लाभ हो सकता है। हाँ, अपने भिन्न-भिन्न कार्यों और शाखाओं के लिये उसे कुछ सुयोग्य कर्म-

चारी अवश्य रखने पड़ेंगे, जिनके कामों की देख-भाल उसे स्वयं करनी पड़ेगी। यद्यपि इनमें से प्रत्येक कार्य लाभदायक है तथापि यदि ये सब काम एक साथ किए जा सकें, तो ख़र्च आदि की तो बहुत कुछ बचत हो जायगी, और आमदनी बहुत बढ़ जायगी। परंतु इसके लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी, और साथ ही जब काम चल निकलेगा, तब उससे प्रायः उतनी ही आमदनी होने लगेगी, जितनी एक छोटे-मोटे इलाक़े से हो सकती है।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि स्त्रियों के पास इतनी अधिक पूँजी कहाँ से आवेगी कि वे इतना बड़ा काम कर सकें? इसका उत्तर यही है कि बहुत-सी स्त्रियों को मिलकर एक सहयोग-समिति स्थापित करनी चाहिए, और थोड़ा-थोड़ा धन सबको लगाना चाहिए। अभी तक हम भारतवासियों ने इस प्रकार मिलकर और सहयोग-समितियाँ स्थापित करके काम करने के लाभ नहीं समझा है। पाश्चात्य देशों में लोग इस प्रथा से आश्चर्य-जनक कार्य कर रहे हैं, और बहुत अधिक लाभ उठा रहे हैं। यदि एक बार भी हम लोगों की समझ में इसके पूरे-पूरे लाभ आ जायँ, तो फिर हम कभी उसे छोड़ने का नाम भी न लें। आजकल हमारे यहाँ शुद्ध दूध और घी की जितनी कमी है, वह किसी से छिपी नहीं। शुद्ध घी तो प्रायः दुर्लभ-सा हो रहा है। उसमें ऐसी-ऐसी गंदी और दूषित चीज़ें मिलाई जाती हैं, जिनसे उच्च कोटि के हिंदुओं को बहुत

अधिक घृणा है। और, अब तो अनेक प्रकार के देशी और विलायती वनस्पति-घी भी बाज़ार में आ गए हैं, जो प्रायः तेल के ही तुल्य होते हैं। पर, फिर भी, लोगों को विवश होकर उसी गंदे और मिलावटवाले घी का ही व्यवहार करना पड़ता है। यही बात शुद्ध और ताज़े दूध के संबंध में भी है। किसी समय योरप में भी, दूध आदि के संबंध में, लोगों को इसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। पर जब वहाँ सहयोग-समितियों के संबंध का आंदोलन आरंभ हुआ, तब लोगों ने पहलेपहल दूध और पनीर आदि के व्यापार के संबंध में ही इसका प्रयोग किया। इस समय सारे योरप में सैकड़ों-हज़ारों ऐसे बहुत बड़े-बड़े कारख़ाने हैं, जो इसी सिद्धांत पर चलकर सर्व-साधारण को बहुत अच्छी और शुद्ध चीज़ें पहुँचाते हैं, और साथ ही बहुत कुछ आर्थिक लाभ भी उठाते हैं। इसी सहयोग-प्रथा की कृपा से योरप की खेती-बारी की भी बहुत अधिक उन्नति हुई है। हमें इस संबंध में योरपवालों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और इस प्रथा से यथेष्ट लाभ उठाना चाहिए।

तीसरा प्रकरण

घरों की सजावट

भारतवर्ष में स्त्रियाँ जितने प्रकार के अच्छे-अच्छे काम कर सकती हैं, उनमें से शायद ही कुछ काम ऐसे हों, जो उनके हाथ में हों। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रियों को अपनी कार्य-पटुता दिखलाने का कोई अवसर ही नहीं मिलता। जहाँ सब काम पुरुषों के ही हाथ में हों, वहाँ भला स्त्रियाँ अपनी क्या कारगुज़ारी दिखला सकती हैं। जब तक कोई काम पुरुषों के हाथ में रहेगा, तब तक स्वभावतः स्त्रियों की उसमें कुछ भी न चल सकेगी। अतः यदि स्त्रियाँ किसी कार्य में दक्ष होना चाहती हों, किसी काम में वे बढ़कर आगे आना चाहती हों, तो उन्हें उचित है कि वे स्वयं कुछ उद्योग आरंभ करें, और अपने पिता, भाई या पति के साथ उसके किसी-न-किसी काम में सहयोग करें, यथासाध्य उसमें सहायता दें, और धीरे-धीरे उसमें पटुता प्राप्त करें। इस समय भी बहुत-से ऐसे काम हैं, जो, यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो, स्त्रियों के लिये ही विशेष उपयुक्त हैं, पुरुषों के लिये उतने अधिक नहीं। फिर भी वे काम पुरुषों के ही हाथ में हैं, स्त्रियों का उनसे किसी प्रकार का कोई

संबंध ही नहीं है। इसका कारण यही है कि इधर जब से भारत में मुसलमानों का आगमन हुआ है, तब से हमारे यहाँ की स्त्रियाँ घर के अंदर बंद कर दी गई हैं ; उन्हें घर से किसी प्रकार बाहर निकालना ही ठीक नहीं समझा जाता। इसका फल यह हुआ है कि जो काम केवल स्त्रियों के ही करने के थे, वे भी पुरुषों के हाथ में चले गए हैं। पर अब समय बदल रहा है, और लोग समझने लग गए हैं कि समय के साथ हमें भी बदलना चाहिए। ऐसे अवसर पर स्त्रियों को भी सचेत हो जाना चाहिए, और ध्यान-पूर्वक यह देखना चाहिए कि कौन-कौन-से काम हमारे लिये विशेष उपयुक्त हैं ; फिर उन कामों को चुनकर उनका ज्ञान प्राप्त करने लगना चाहिए। यदि वे अभी से अपने लिये उपयुक्त कामों में पुरुषों का थोड़ा बहुत हाथ बटाने लग जायँगी तो अवश्य ही थोड़े दिनों में वे उनमें पारंगत भी हो जायँगी, और पुरुषों के साथ मिलकर काम करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगी।

आजकल गृह-निर्माण और उसके शृंगार या सजावट आदि से संबंध रखनेवाले सभी काम पुरुषों के हाथ में हैं। पर उनमें बहुत-से काम ऐसे हैं, जिन्हें स्त्रियाँ बहुत सहज में और बहुत अच्छी तरह कर सकती हैं। बिलकुल प्रारंभिक काल में, जब लोग किसी एक स्थान पर सदा जमकर नहीं रहते थे, बल्कि थोड़े-थोड़े दिनों में अपना निवास-स्थान बदला करते थे, डेरे, ख़ीमे आदि एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर ले

जाना और उन्हें खड़ा करना स्त्रियों का ही काम था। पुरुष कुछ भी नहीं करते थे। इसके उपरांत जब लोग अधिक दिनों तक एक ही स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगे, तब भी झोपड़ियाँ आदि बनाने का काम स्त्रियों के ही ज़िम्मे रहता था। पर आजकल मकान बनाने और सजाने आदि में स्त्रियों से किसी प्रकार की सहायता ही नहीं ली जाती! जब मेमार, राज, संगतराश, बढ़ई, रंगसाज़ आदि सब काम कर चुकते हैं, मकान बिलकुल बनकर तैयार हो जाता और गृह-प्रवेश का समय आता है, तब स्त्रियाँ उसमें पैर रखती हैं, और घर का सब सामान जैसे-तैसे रखकर छुट्टी पा जाती हैं। न तो उनसे किसी विषय में कोई परामर्श लिया जाता है, और न किसी प्रकार की सहायता ही। किंतु परामर्श या सहायता ली कैसे जाय? यहाँ तो उन्हें किसी योग्य ही नहीं समझा जाता। पर यदि हम विचार-पूर्वक देखें, तो हमें मानना पड़ेगा कि स्त्रियाँ वास्तव में अयोग्य नहीं होतीं। स्वयं हम लोग जान-बूझकर और सदा अंधकार में रखकर ही उन्हें सब प्रकार से अयोग्य बना देते हैं। हम यह मानते हैं कि बड़े-बड़े पत्थर और शहतीर आदि गढ़ना या कई-कई खंडों के ऊपर चढ़ाना स्त्रियों का काम नहीं। पर साथ ही कोई यह भी नहीं कह सकता कि वे रँगाई या सजावट आदि का काम करने में भी नितांत असमर्थ होती हैं, अथवा घर की बनावट आदि के विषय में भी वे कोई परामर्श नहीं दे सकतीं या कोई अच्छी बात नहीं पैदा

कर सकतीं। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो कम-से-कम सजावट आदि के संबंध में स्त्रियों की रुचि पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत होती है, और साधारण शिक्षा के ही द्वारा वह कहीं अधिक परिमार्जित एवं परिष्कृत की जा सकती है। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि वे इस काम में आगे न बढ़ें, और कम-से-कम सजावट आदि के काम अपने हाथ में न लें। यदि इस विषय कीओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सके, तो स्त्रियों के काम के लिये एक बहुत ही विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ दिखलाई देगा। इसके लिये स्त्रियों की शिक्षा आदि की यहाँ भी वैसी ही व्यवस्था हो सकती है, जैसी और-और उन्नत देशों में हो रही है।

यदि स्त्रियाँ मकानों के नक़शे आदि बनाना सीख सकें, तो यह उनके लिये बहुत ही लाभदायक कार्य हो सकता है। वे अपनी योग्यता और बुद्धि से उसमें तरह-तरह की नई बातें निकाल सकेंगी, और ऐसे अच्छे-अच्छे नक़शे तैयार कर सकेंगी, जिनके अनुसार बने हुए मकान बस, देखने ही योग्य होंगे। दीवालों में उपयुक्त स्थानों पर अलमारियाँ, भंडरियाँ और कोनियाँ आदि लगाना, दरवाज़ों और खिड़कियों आदि के लिये नई-नई तराशें निकालना और दूसरे अनेक उपायों से घर की बनावट में सौंदर्य लाना स्त्रियों के लिये बहुत ही उपयुक्त काम है। यदि उन्हें उपयुक्त शिक्षा दी जाय, तो वे सार्वजनिक इमारतों के लिये बहुत अच्छे-अच्छे और नए ढंग के नक़शे तैयार

कर सकती हैं। और, जब इमारत बनकर तैयार हो जाय, तब उसकी सजावट में भी उनसे बहुत अधिक सहायता मिल सकती है। गृह-निर्माण-संबंधी कार्य के कम-से-कम ये दोनों विभाग अवश्य ऐसे हैं, जो पूर्ण रूप से स्त्रियों को सौंपे जा सकते हैं, और जिनमें वे संभवतः पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक योग्यता और कार्य-पटुता दिखला सकती हैं। पर हाँ, इसके लिये पहले उन्हें कुछ उपयुक्त शिक्षा मिलनी चाहिए, और तब कुछ दिनों बाद अवश्य ही एक ऐसा समय आ जायगा, जब उनके काम को लोग बहुत अधिक पसंद करने लगेंगे। मकानों आदि की सजावट का काम तो ऐसा है, जिसके लिये स्त्रियों को बहुत ही थोड़ी, प्रायः नहीं के बराबर, शिक्षा देने की आवश्यकता है।

कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि भारत के प्रायः सभी प्रदेशों और सभी जातियों में कुछ ऐसे त्योहार आदि होते हैं, जिनमें बहुत कुछ शृंगार और सजावट आदि की आवश्यकता होती है। कहीं जन्माष्टमी के समय ठाकुरजी का शृंगार होता है, और उनके आगे तरह-तरह के बाग़-बग़ीचे आदि लगाए जाते हैं; कहीं खिलौने आदि सजाए जाते हैं। कहीं गणेश-चौथ के समय इस प्रकार की सजावट होती है, जिसमें अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी कारीगरी की जाती है। इस प्रकार के शृंगार घरों में भी होते हैं, और बड़े-बड़े मंदिरों आदि में भी। मंदिरों में इस प्रकार के शृंगार का काम प्रायः पुरुष करते हैं,

और घरों में इसका सारा भार प्रायः स्त्रियों पर ही रहता है। जिन लोगों को अच्छे-अच्छे घरों में इस प्रकार के शृंगार आदि देखने का अवसर मिला है, वे कह सकते हैं कि घरों में की हुई स्त्रियों के हाथ की इस प्रकार की सजावट मंदिरों आदि में की हुई पुरुषों के हाथ की सजावट से किसी प्रकार कम नहीं होती। यदि कहीं कमी दिखाई भी देती है, तो वह साधन-मात्र की होती है, सजावट की योग्यता की नहीं। प्रायः श्रावण-मास में मंदिरों में एक प्रकार की सजावट होती है, जिसे 'साँझी' कहते हैं। यह सजावट पुरुष ही करते हैं। घरों में प्रायः वैसी अच्छी सजावट देखने में नहीं आती। इसका कारण यही है कि मंदिरों में व्यय बहुत अधिक किया जाता है, और वहाँ सामग्री और साधनों की बहुत अधिकता होती है। घरों में न तो उतना अधिक व्यय ही किया जाता है, और न उतने अधिक साधन ही होते हैं। यदि स्त्रियों को भी उतने अधिक साधन दे दिए जायँ, और कुछ दिनों तक यह काम उनके हाथ में रहने दिया जाय, तो इसमें संदेह नहीं कि थोड़े ही दिनों में वे इस विषय में बहुत अधिक उन्नति दिखला सकती और पुरुषों से बाज़ी ले जा सकती हैं; क्योंकि शृंगार और सजावट आदि स्त्रियों का स्वाभाविक कार्य है, पुरुषों के लिये वह कभी स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। यदि बड़े-बड़े मेलों और उत्सवों आदि के समय इस प्रकार की सजावट आदि का काम स्त्रियों से लिया जाय, तो हज़ारों ऐसी स्त्रियों की जीविका

का ठिकाना लग सकता है, जो इस समय बहुत ही कष्ट से अपना समय बिता रही हैं। यदि यह कहा जाय कि इसके बदले में उतने ही पुरुष ख़ाली और बेकार हो जायँगे, तो इसका उत्तर यह है कि पुरुष तो और भी सैकड़ों-हज़ारों प्रकार के कार्य कर रहे हैं। अतः पुरुषों को ऐसे ही कामों में लगना चाहिए, जो केवल उन्हीं से हो सकें, और जिनमें स्त्रियों से किसी प्रकार की सहायता न ली जा सकती हो। और, जो काम स्त्रियों के लिये ही उपयुक्त हों, उन्हें उन्हीं के लिये छोड़ देना चाहिए।

घरों की सजावट आदि का काम ऐसा है, जो छोटे-छोटे कई विभागों में बाँटा जा सकता है। इसके लिये कुछ स्त्रियों को मिलकर एक छोटा-सा अपना समूह या संघ बना लेना चाहिए, और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसका एक-एक विभाग अपने हाथ में ले लेना चाहिए। उत्तमता-पूर्वक और ठीक ढंग से यह काम चलाने के लिये इस प्रकार का कार्य-विभाग बहुत ही आवश्यक है; क्योंकि इस कार्य का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि साधारणतः कोई एक स्त्री उसके सब विभागों की पूरी-पूरी और अच्छी जानकारी नहीं प्राप्त कर सकती। प्रायः प्रत्येक काम के ठीक ढंग से करने का मुख्य सिद्धांत यही है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके किसी विशिष्ट भाग या अंग को अपने हाथ में ले ले। किसी कार्य के सब विभागों या अंगों को यदि एक ही आदमी करने लगे, तो बहुत संभव है, वह किसी विभाग या अंग का कार्य कभी सुचारु रूप से संचालित न कर

सके। इसलिये इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि जो व्यक्ति गृह-शृंगार का काम उठावे, उसे अपने कार्य के सब सिद्धांतों का पूरा-पूरा ज्ञान हो, और साथ ही उसके मन में कला के प्रति भी अनुराग हो। उसे लोगों की भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचियों का भी बहुत अच्छा ज्ञान होना और नए-नए तर्ज़ या ढंग निकालने का भी माद्दा होना चाहिए। यदि ये सब बातें नहीं होंगी, तो वह कभी अपना कार्य संतोष-जनक रीति से न कर सकेगा। स्त्रियों में स्वभावतः ही इन सब बातों का थोड़ा-बहुत अंश रहता है; और यदि वे चाहें, तो उसे अच्छी तरह विकसित एवं पल्लवित कर सकती हैं। इसीलिये हम इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इस प्रकार के कार्यों में स्त्रियों को प्रवृत्त होना चाहिए।

जो स्त्रियाँ इस प्रकार का काम उठाना चाहें, उन्हें एक और विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। उन्हें अपने देश की तथा पाश्चात्य देशों की वस्तु-विद्या के इतिहास का थोड़ा-बहुत ज्ञान भी प्राप्त कर लेना चाहिए, और यह जान लेना चाहिए कि सजावट के सामान और ढंग आदि कितने प्रकार के और कैसे-कैसे होते हैं। इसके लिये कुछ तो नियमित शिक्षा की और कुछ अध्ययन की आवश्यकता होगी। इस प्रकार के ज्ञान के अंतर्गत एक और प्रकार का ज्ञान है, जो स्त्रियों के लिये बहुत उपयोगी हो सकता है। वह ज्ञान है कपड़ों की बुनावट आदि के लिये तर्ज़ निकालने का। दरियों, क़ालीनों, धोतियों के

किनारों और चारख़ानेदार तौलियों तथा बिछौनों आदि के लिये तर्ज़ निकालनेवालों की भी सदा बहुत बड़ी आवश्यकता रहेगी। यदि स्त्रियाँ यह काम कर सकें, तो उन्हें बहुत कुछ आर्थिक लाभ हो सकता है। अनेक पाश्चात्य प्रदेशों में भी अब तक यह काम पुरुष ही करते हैं। स्त्रियों के लिये इस संबंध में बहुत बड़ा कार्य-क्षेत्र पड़ा हुआ है।

लकड़ी के आराइशी सामान बनाना और लकड़ी पर खुदाई का काम करना भी इसी के अंतर्गत आ जाता है। ये काम ऐसे हैं, जिनमें दिमाग़ और हाथ, दोनों से काम लिया जाता है। पाश्चात्य देशों में तो लकड़ी पर खुदाई या नक़ाशी करने का अधिकांश कार्य प्रायः मशीनों की ही सहायता से होता है; पर हमारे देश में कारीगर लोग हाथ से ये सब काम करते हैं। और, हाथ के सब काम की मशीन के काम की बनिस्बत ज़्यादा क़दर होती है।

घर की सजावट करना कोई सहज काम नहीं है। इसके लिये बहुत कुछ शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। जो लोग अपना मकान सजवाना चाहेंगे, उनकी स्वभावतः यही इच्छा होगी कि हमारा काम जहाँ तक हो, किफ़ायत से, कम दामों में और अच्छे-से-अच्छा हो। इसलिये जो यह काम करेगा, उसे भी इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि जहाँ तक हो सके, कम ख़र्च में ज़्यादा ख़ूबसूरती लाई जाय। अतः इसके लिये विशेष बुद्धिमत्ता और प्रबंध-कुशलता की

आवश्यकता होगी। मकान की सजावट में तरह-तरह के आरा-यशी सामानों की ज़रूरत होगी; और इसके लिये इस बात की आवश्यकता है कि भिन्न-भिन्न देशों के नए और पुराने, सभी तरह के आरायशी सामानों की जानकारी प्राप्त की जाय। बहुत से शौक़ीन ऐसे भी होते हैं, जो नए ढंग की चीज़ों की अपेक्षा पुराने ढंग के सामान आदि ज़्यादा पसंद करते हैं। ऐसे ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिये इन सब चीज़ों के इतिहास और ऐतिहासिक स्वरूप का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इसी से संबंध रखने-वाला एक और व्यवसाय है, जो कम लाभदायक नहीं है। यदि कोई व्यक्ति पुराने ढंग के आरायशी सामानों की विक्री का काम उठा ले, तो उसे अच्छा लाभ हो सकता है। पर इसके लिये सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि पुराने ढंग के आरायशी सामानों, तसवीरों, सिक्कों, मूर्तियों आदि की अच्छी पहचान हो। और, जहाँ कहीं ऐसी चीज़ें मिल जायँ, किफ़ायत से ख़रीदकर अवसर पड़ने पर अच्छे दामों में बेची जायँ। यदि पहले इस तरह की सभी पुरानी चीज़ों का व्यव-साय आरंभ न करके एक-दो तरह की चीज़ों का ही व्यापार उठाया जाय, और ज्यों-ज्यों अनुभव और गुंजाइश बढ़ती जाय, त्यों-त्यों उसका और अधिक विस्तार किया जाय, तो अधिक लाभ हो सकता है। ऐसा करने से थोड़े ही दिनों में जब अच्छा अनुभव प्राप्त हो जायगा, तब काम बहुत फ़ायदे से चल निकलेगा। यदि ऐसी चीज़ें सस्ती मिल जायँ, तब तो

उसी समय ख़रीद लेनी चाहिए; पर यदि चीज़ों का मालिक ज़्यादा दाम माँगे, और वे अच्छी हों, तो कमीशन पर बेचने के लिये ले लेनी चाहिए। जब वे बिक जायँ, तब उनके मालिक को अपना कमीशन काटकर दाम चुका देना चाहिए। यदि थोड़ी-सी पूँजी लगाकर यह काम शौक़िया भी किया जाय, तो थोड़े ही दिनों में इससे अच्छा लाभ हो सकता है।

अब इससे नीचे उतरकर हम एक और छोटा और सहज काम बतलाते हैं। रसोई पकाने का सब काम प्रायः सभी जगह स्त्रियाँ ही करती हैं। पर, फिर भी, यह एक विलक्षण बात है कि रसोई बनाने के लिये जिन बरतनों और इसी प्रकार के दूसरे सामानों की आवश्यकता होती है, उन सबके लिये तर्ज़ निकालने का काम पुरुष ही करते हैं। साधारणतः होना तो यह चाहिए कि जिन चीज़ों की आवश्यकता स्त्रियों को हो, उनके लिये तर्ज़ भी स्वयं वही निकालें। पर स्त्रियाँ कभी ऐसी बातों की ओर ध्यान ही नहीं देतीं। यदि वे इस ओर ध्यान दें, तो बहुत-सी नई बातें निकाल सकतीं हैं, और अनेक प्रकार की नई-नई और उपयोगी चीज़ें तैयार कर सकती हैं। हमारी समझ में यह एक ऐसा विषय है, जिसकी ओर स्त्रियों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि स्त्रियाँ घर-गृहस्थी के काम के लिये ऐसी नई-नई चीज़ें निकाल सकें, जिनकी बनावट बहुत सरल और साधारण हो, और जिनके व्यवहार से काम करने में सुबीता हो, तो उनसे वे स्वयं भी अच्छा

लाभ उठा सकती हैं, और दूसरों को भी लाभ पहुँचा सकती हैं।

ऊपर जितने प्रकार के काम बतलाए गए हैं, वे सब अलग-अलग और स्वतंत्र रूप से भी किए जा सकते हैं। यदि चाहें, तो कुछ स्त्रियाँ मिलकर इसके लिये सहयोग-समितियाँ भी स्थापित कर सकती हैं। यदि ये सब काम सहयोग-समितियाँ स्थापित करके किए जायँ, तो और भी अच्छा। आमदनी में से सब हिस्सेदारों को लाभ का समुचित अंश देने के उपरांत जो कुछ बचे, वह नौकरों आदि में बाँटा जा सकता है, और उसका कुछ अंश पूँजी बढ़ाने के लिये अलग भी किया जा सकता है। इस प्रकार व्यवसाय में उत्तरोत्तर उन्नति की जा सकती है।

अंत में हम एक और बहुत बढ़िया और हलका काम बतलाकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं। बंगाल में एक प्रकार के व्यवसायी होते हैं, जो 'घटक' कहलाते हैं। ये लोग वर के लिये उपयुक्त कन्या और कन्या के लिये उपयुक्त वर ढूँढने का काम करते हैं। परंतु इस देश में परदे की प्रथा होने के कारण प्रायः पुरुष-घटक घर के अंदर जाकर कन्याओं को नहीं देख सकते। इसलिये अब बंगाल में कुछ ऐसी स्त्रियाँ निकल आई हैं, जो घटकों का काम करने लग गई हैं। परंतु ये स्त्रियाँ प्रायः पढ़ी-लिखी नहीं होतीं, और अपने कार्य का पूरा-पूरा महत्व और उत्तरदायित्व नहीं समझतीं। यदि पढ़ी-लिखी और अपना

उत्तरदायित्व समझनेवाली स्त्रियाँ इस काम में लग जायँ, और वरों के लिये कन्याएँ तथा कन्याओं के लिये वर ढूँढने का कार्य आरंभ कर दें, तो स्वयं भी बहुत कुछ लाभ उठा सकती हैं, और दूसरों का भी बहुत कुछ उपकार कर सकती हैं।

इन सब बातों से यही प्रमाणित होता है कि इस समय भी देश में बहुत-से ऐसे कार्य हैं, जिन्हें स्त्रियाँ परदे के अंदर रहकर भी बहुत अच्छी तरह संपन्न कर सकती हैं।

चौथा प्रकरण

कला और शिल्प

ललित-कला के संबंध में एक स्थान पर आर० एल्० स्टिवेंसन ने लिखा है—"जो व्यक्ति ललित-कला का ज्ञाता है, और उसी के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता है, उसके लिये कोई ऐसा समय नहीं होता, जो आनंददायक न हो। जीविका-निर्वाह के लिये जितना अधिक आनंददायक यह काम है, उतना और कोई नहीं। हम यह मान लेते हैं कि इसमें पुरस्कार बहुत कम मिलता है। पर आश्चर्य तो इस बात का होना चाहिए कि भला कुछ मिल तो जाता है। और लोग तो इससे भी कम आनंददायक मनोविनोदों के लिये उलटे अपने पास से धन व्यय करते हैं—और बहुत अधिक व्यय करते हैं।"

यद्यपि यह कथन केवल ललित-कला के लिये है, तथापि यह प्रायः ऐसे सभी कामों पर घटता है, जिनका कला से कुछ भी संबंध है। अतः जो स्त्रियाँ किसी प्रकार के शिल्प या कला के द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करना चाहती हों, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कार्यों के द्वारा होनेवाली उनकी आय जहाँ तक हो सके, बढ़ जाय। आजकल विज्ञान और

मशीनों या कलों आदि का ज़माना है। प्रायः सभी प्रकार के काम कलों के द्वारा ही किए जाते हैं। इस कारण कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि हाथ की बढ़िया कारीगरी को जल्दी कोई पूछेगा भी नहीं। पर वास्तव में यह बात नहीं है। यदि हम ध्यान-पूर्वक देखें, तो हमें जान पड़ेगा कि इस ज़माने में भी हाथ की बनी हुई बढ़िया-बढ़िया चीज़ों की बहुत ज़्यादा ज़रूरत है, और शायद सदा बनी रहेगी। हाथ की बनाई हुई बढ़िया-बढ़िया बेलें, मीनाकारी की चीज़ें और तरह-तरह के नकाशी के काम अब भी बहुत अच्छे दामों पर बिकते हैं, और उनकी बहुत कुछ क़दर और चाह होती है। वास्तव में ये सभी काम ऐसे हैं, जिन्हें सदा यथेष्ट प्रोत्साहन मिलना चाहिए; क्योंकि असली कारीगरी इन्हीं चीज़ों में दिखलाई पड़ती है। इस समय भी भारतवर्ष में सैकड़ों-हज़ारों ऐसी अच्छी-अच्छी चीज़ें बनती हैं, जो दूर-दूर तक कारीगरी का बहुत अच्छा नमूना समझी जाती हैं। स्त्रियाँ इनमें से किसी को अपने लिये उपयुक्त समझकर चुन सकती हैं। पर हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक ही प्रकार की कला या कारीगरी में अपनी सारी योग्यता और सारी बुद्धि लगा दी जाय; क्योंकि जो व्यक्ति बहुत-से कामों में एक साथ ही अपना ध्यान बाँट देगा, वह संभवतः एक में भी दक्ष न हो सकेगा। पर यदि वह अपना सारा समय, सारी योग्यता और सारी शक्ति किसी एक काम में लगावेगा, तो बहुत संभव है कि वह अपने विषय का पूरा उस्ताद निकल

आवे; और उसी दशा में उसके काम का पूरा-पूरा आदर भी होगा। हमारे देश में धातुओं के सैकड़ों-हज़ारों तरह के सामान बनते हैं, और उन धातुओं में सोना, चाँदी, पीतल, ताँबा आदि, सभी सम्मिलित हैं। फिर, एक ही धातु की सैकड़ों तरह की चीज़ें बनती हैं। यदि उनमें से कोई एक धातु ले ली जाय, और उसकी एक तरह की चीज़ें बनाना आरंभ किया जाय, तो उसमें बहुत शीघ्र दक्षता भी प्राप्त की जा सकती है, और अच्छा आर्थिक लाभ भी उठाया जा सकता है। कोई एक काम उठा लिया जाय, और उसमें नए-नए ढंग और तर्ज़ निकाले जायँ—उसमें नई-नई ख़ूबसूरती पैदा की जाय—तो अवश्य ही उससे अच्छा लाभ हो सकता है। पर यदि कोई नया ढंग न निकाला जा सके, और न कोई ख़ूबसूरती पैदा की जा सके, तो फिर उसे हाथ में लेना ही व्यर्थ है; क्योंकि भद्दी और पुराने ढंग की चीज़ों को जल्दी कोई पूछता भी नहीं।

यदि सच पूछा जाय, तो किसी चीज़ में कोई नया तर्ज़ निकालने और कोई नई बात पैदा करने में जितना आनंद आता है, उतना शायद और बहुत कम बातों में पर इसके लिये थोड़ा दिमाग़ लड़ाने की ज़रूरत होती है, और इसीलिये लोग प्रायः ऐसे कामों से भागते हैं। पर यदि वे लोग थोड़े दिनों तक इसके लिये परिश्रम करें, और इस ओर पूरा ध्यान दें, तो इस संबंध की सारी कठिनाइयाँ आप-से-आप दूर हो जायँगी, और तब नित्य अनेक प्रकार की नई-नई बातें आप-से-आप, बिना किसी

प्रकार के परिश्रम के ही, उनके दिमाग़ से निकला करेंगी। और, जब कोई व्यक्ति नई बातें पैदा करने और नए-नए तर्ज़ निकालने का अभ्यस्त हो जायगा, तो फिर उसके क़द्रदाँओं की भी कमी न रह जायगी। आजकल योरप और अमेरिकावाले भारतीय शिल्प की जितनी अधिक क़द्र करते हैं, उतनी स्वयं भारतवाले नहीं करते। इसलिये भारतीय कारीगरों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, और ऐसी चीज़ें तैयार करनी चाहिए, जो पाश्चात्य देशों के निवासियों के लिये विशेष रूप से उपयोगी हो सकें। यदि हमारे देश की स्त्रियाँ कुछ ऐसी उपयोगी और बढ़िया चीज़ें बना सकें, जो पाश्चात्य देशों के निवासियों को पसंद भी हों, और उनके काम भी आ सकें, तो उन्हें बहुत अधिक आर्थिक लाभ हो सकता है।

यों काम तो सैकड़ों और हज़ारों तरह के हैं, पर यहाँ हम उदाहरण-स्वरूप कुछ थोड़े-से कामों का ही उल्लेख करना यथेष्ट समझते हैं। सबसे पहले मीनाकारी का काम लीजिए। यह एक ऐसा काम है, जो इस देश में बहुत प्राचीन काल से होता चला आया है, और कम शारीरिक परिश्रम का होने के कारण स्त्रियों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है। फ़ारस और जापान में भी यह काम बहुत अच्छा होता है। मध्य-युग में, योरप में, भी यह काम बहुत अच्छा होता था। इधर हाल में इँगलैंडवालों का ध्यान इस ओर गया है, और अब वहाँ अनेक प्रकार के गहनों और बरतनों पर बहुत अच्छी

मीनाकारी होने लगी है। मीनाकारी का काम करने में इसलिये बहुत अधिक आनंद आता है कि उसके रंग बहुत ही सुंदर होते हैं। दूसरी विशेषता इसमें यह है कि नए-नए तर्ज़ निकालने के लिये भी बहुत गुंजाइश रहती है, जिससे यह काम और भी मनोरंजक हो जाता है। जापानवालों ने मीनाकारी में एक और नई बात पैदा की है। वे धातु पर जो तरह-तरह के रंग चढ़ाते हैं, उन्हें चारों ओर से सोने के बहुत महीन तारों से, घेर देते हैं। यह काम प्रायः वैसा ही होता है, जैसी, कि हमारे यहाँ बिद्री की एक प्रकार की मीनाकारी होती है, जिसमें उतनी दूर तक कुछ गहरा गड्ढा-सा खोद देते और उसमें रंग भर देते हैं। इसमें रंग भरने के उपरांत उसके चारों ओर कुछ बाढ़-सी उठी रह जाती है, और वह रंग बिलकुल अलग मालूम पड़ता है। ताँबे पर एक प्रकार की मीनाकारी होती है, जिसमें रंगों के चारों ओर चाँदी के पानी की लकीरें खींच दी जाती हैं। इसमें नीचे का ताँबा कुछ विशिष्ट क्रियाओं से निकाल लिया जाता है; और तब केवल मीनाकारी रह जाती है, जो बहुत ही सुंदर जान पड़ती है। तात्पर्य यह कि मीनाकारी अनेक प्रकार की होती है, और यदि प्रयत्न किया जाय, तो उसमें और भी बहुत-सी नई बातें पैदा की जा सकती हैं। तर्ज़ों का तो मानों कोई अंत ही नहीं।

किताबों की जिल्द बाँधने का काम भी ऐसा है, जिसमें बहुत कुछ कारीगरी की जा सकती है। यदि जिल्दबंदी के काम में कुछ

रुपए लगाए जा सकें, और उसके लिये कुछ मशीनें आदि ख़रीदी जा सकें, तो उसमें भी बहुत-सी नई बातें निकाली जा सकती हैं, और अच्छा लाभ उठाया जा सकता है। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि स्त्रियाँ बिलकुल साधारण तरह की जिल्दबंदी का काम करें। हैदराबाद (दक्षिण) तथा दूसरे अनेक स्थानों में किताबों की बहुत बढ़िया-बढ़िया जिल्दें बँधती हैं, जिनके लिये राजे-महाराजे सैकड़ों-हज़ारों रुपए ख़र्च करते हैं। जिल्दें प्रायः सुनहली और रुपहली हुआ करती हैं, और उन पर बेल-बूटे आदि का बहुत ही सुंदर काम हुआ करता है। यदि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ उस तरह का कोई काम किसी प्रकार सीख और कर सकें, तो अवश्य ही उन्हें अच्छा लाभ हो सकता है। प्रायः लोग धार्मिक और सांप्रदायिक ग्रंथों की बहुत अच्छी-अच्छी जिल्दें बँधवाया करते हैं, और उनके लिये दाम भी बहुत अधिक देते हैं। इस प्रकार का काम सीखने के लिये अधिक-से-अधिक साल-भर का समय चाहिए। आजकल प्रायः सभी स्थानों में संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के ऐसे सैकड़ों-हज़ारों ग्रंथ मिल सकते हैं, जो किसी अच्छे जिल्दसाज़ के अभाव के कारण यों ही पड़े रह जाते हैं और समय पाकर नष्ट हो जाते हैं। यदि इस प्रकार की बढ़िया जिल्दबंदी की व्यवस्था हो सके, तो लोग बड़े शौक़ से और अच्छा दाम देकर उनकी जिल्दें बँधवा सकते हैं। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि जिल्द बाँधने के समय उनमें चमड़ा आदि मढ़ने में भिन्न-भिन्न धर्मों और संप्रदायों के धार्मिक

विचारों का भी ध्यान रखना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि किस धर्म के लोग किस पशु के चमड़े से परहेज़ करते हैं और किसे स्पर्श तक करना पाप समझते हैं। ऐसी दशा में अधिक सफलता होने की संभावना होगी।

तरह-तरह के जालीदार फ़ीते आदि बनाने का काम भी ऐसा है, जो स्त्रियों के लिये बहुत ही उपयुक्त है, और जिसमें बहुत-सी नई बातें पैदा की जा सकती हैं। इस काम में यह विशेषता है कि न तो इसके लिये किसी विशेष पूँजी की आवश्यकता होती है, और न किसी विशेष प्रकार की बहुत अधिक शिक्षा की ही; और इसीलिये इसे ग़रीब-से-ग़रीब स्त्रियाँ भी बहुत अच्छी तरह और सहज में कर सकती हैं। यदि कोई पढ़ी-लिखी और चतुर स्त्री हो, तो वह इस काम के लिये बहुत-सी स्त्रियाँ भी रख सकती है, अथवा गाँवों और शहरों में कुछ स्त्रियों को यह काम सिखाकर, उनसे बहुत-सी चीज़ें तैयार कराकर, अच्छे नफ़े पर बेच सकती है। यदि कोई स्त्री स्वयं ही फ़ीते आदि बनाने का काम शुरू करे, तब तो उसे किसी पूँजी आदि की कोई आवश्यकता ही नहीं। पर हाँ, यदि वह और स्त्रियों से भी यह काम कराना और अधिक लाभ उठाना चाहे, तो उसे अवश्य थोड़ी-बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी; क्योंकि चीज़ें तैयार कराने और बेचने में समय लगता है, और इस बीच में काम करनेवाली स्त्रियों को ख़र्च के लिये बराबर कुछ-न-कुछ देना ही पड़ेगा। साथ ही उसे स्वयं भी नए-नए तर्ज़

आदि निकालने में विशेष परिश्रम करना पड़ेगा, और दूसरी स्त्रियों को यह काम सिखलाने में अपना समय भी लगाना पड़ेगा। यदि यह काम गाँवों और देहातों की स्त्रियों से कराया जाय तो बहुत-सी दरिद्र स्त्रियों के निर्वाह आदि का एक बहुत अच्छा मार्ग निकल सकता है। इसमें संदेह नहीं कि आजकल भी हमारे देश की बहुत-सी स्त्रियाँ सूई आदि का बहुत कुछ काम करती हैं; पर वह काम प्रायः बिलकुल पुराने ढंग का और बहुत भद्दा होता है। यदि वे नए ढंग का बढ़िया और ख़ूबसूरत काम कर सकें, तो अवश्य ही उन्हें अच्छा लाभ हो सकता है। यदि यह काम छोटी-छोटी बालिकाओं को आरंभ से ही सिखलाया जाय, तो और भी अच्छा; क्योंकि उस दशा में वे थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ दक्ष भी हो जायँगी, और उनके काम में बहुत कुछ फुरती भी आ जायगी। इससे सिखाने और काम करनेवाली स्त्रियों को स्वयं तो लाभ होगा ही, साथ ही वे बहुत-सी ग़रीब स्त्रियों की जीविका का भी बहुत अच्छा प्रबंध कर सकेंगी। इस प्रकार इस कार्य में दोहरा लाभ होगा; अर्थात् अपना भी लाभ होगा, और साथ में परोपकार भी होता चलेगा। गाँव-देहात की स्त्रियाँ काम तो सहज में सीख जायँगी, पर वे अपना तैयार किया हुआ काम बाज़ार में न बेच सकेंगी; नगर की चतुर और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ उनका तैयार किया हुआ काम ख़रीदकर अच्छे दामों में बेच लेंगी।

मिट्टी के बरतन और खिलौने आदि बनाना भी एक ऐसा

काम है, जिसे स्त्रियाँ अपने हाथ में ले सकती और अच्छा लाभ उठा सकती हैं। जिस प्रांत की मिट्टी अच्छी हो, वहाँ की स्त्रियाँ मिट्टी के अनेक प्रकार के बरतन, गमले और खिलौने आदि बनाने का काम कर सकती हैं। इस देश में बनारस, चुनार, लखनऊ आदि स्थानों में पहले से ही मिट्टी के अनेक प्रकार के खिलौने और बरतन आदि बहुत अच्छे बनते हैं, जिनकी दूर-दूर तक माँग रहती है। इन चीज़ों के बनाने में भी बहुधा स्त्रियों का ही हाथ रहता है। पर वे स्त्रियाँ केवल कुम्हार-जाति की होती हैं, और जातियों की स्त्रियाँ यह काम अपने हाथ में नहीं लेतीं। पर यदि वे नए ढंग के खिलौने आदि बनाना आरंभ कर दें, तो इसमें किसी प्रकार की हानि या अपमान नहीं है। इसी से मिलता-जुलता एक और काम कुटके, खिलौने आदि बनाने का है, जिनका इस देश में अभी बहुत कम प्रचार है। जयपुर तथा दूसरे कुछ स्थानों के बने हुए खिलौने बहुत अच्छे होते हैं; लोग उन्हें बहुत पसंद करते हैं। इसके लिये पहले रद्दी कागज़ों और उनकी छोटी-छोटी कतरनों या टुकड़ों को पानी में भिगोकर अच्छी तरह गला लेते हैं, और तब उसमें थोड़ी रुई तथा थोड़ी मिट्टी मिलाकर उसके खिलौने बनाते हैं। इस प्रकार के खिलौने देखने में भी बहुत सुंदर होते हैं, और साथ ही मज़बूत भी। इसी तरह की छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की डोरियाँ आदि भी बनाई जाती हैं, जो घर-गृहस्थी में बहुत काम आती हैं। इसी से मिलता-जुलता एक और काम कपड़ों

की गुड़ियाँ आदि बनाना भी है, जो कम लाभदायक नहीं है, और जिसकी खपत काफ़ी होती है। थोड़ा दिमाग़ लड़ाने से इन सब चीज़ों से बहुत-सी नई-नई चीज़ें भी बनाई जा सकती हैं।

कपड़ों की बुनाई और सूत की कताई आदि का भी काम ऐसा है, जो स्त्रियों के लिये बहुत उपयुक्त है। गाँवों तथा देहातों में बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो बहुत ग़रीब होती हैं, और अपने बचे हुए समय में कुछ काम करना चाहती हैं। यदि कोई चतुर स्त्री व्यवस्था कर सके, तो वह बहुत-सी स्त्रियों को कताई और बुनाई का यथेष्ट काम दे सकती है। शहरों की स्त्रियाँ गुलूबंद, मोज़े, गंजीफ़्राक आदि बुनने का काम मज़े में कर सकती हैं। मुक्तिदायिनी सेना (Salvation Army) की ओर से अभी हाल में भारत के देहातों में इस संबंध में थोड़ा-बहुत काम हुआ भी है। उन लोगों ने एक ऐसा करघा निकाला है, जिसकी बनावट तो बहुत ही सीधी-सादी है, पर जिस पर सूत, ऊन और रेशम, सभी की बुनाई बहुत अच्छी तरह हो सकती है। उन्होंने कुछ देहातों में बुनाई आदि का काम सिखाने के लिये छोटे-छोटे स्कूल भी खोल रक्खे हैं; और उनके जो छात्र इस काम में विशेष सिद्धहस्त होते हैं, उन्हें प्रतिवर्ष कुछ पुरस्कार और पदक आदि भी दिए जाते हैं। उनकी इस व्यवस्था से बहुत-से निर्द्धनों के घर उजड़ते-उजड़ते बच गए हैं, और बहुत-से दीनों तथा अनाथों का

पालन होने लगा है। यदि कुछ चतुर और सुयोग्य स्त्रियाँ थोड़ी-बहुत पूँजी लगाकर इस प्रकार की व्यवस्था आरंभ कर दें, तो वे आर्थिक प्राप्ति करने के साथ-साथ पुण्य भी लूट सकती हैं। यदि वे चाहें, तो इसी के साथ रेशम के कीड़े पालने और रेशम आदि तैयार करने का काम भी भली-भाँति कर सकती हैं। यह काम भी कुछ कम लाभदायक नहीं है।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार के कार्य हैं, जिनमें अच्छा लाभ हो सकता है, और जिन्हें हाथ में लेने की बहुत बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि उनकी माँग अधिक है, और वे मिलती कम हैं। इनमें से एक काम दौरे-दौरियाँ आदि बनाने का है। अनेक प्रकार की सुंदर और रंगीन दौरियाँ बनाई जा सकती हैं, जो बाज़ारों में अच्छे दामों पर बिक सकती हैं। तिरहुत में अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियाँ इतनी सुंदर और हलकी दौरियाँ बनाती हैं कि उन्हें देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। पर वे यह काम केवल शौक़ से ही करती हैं। यदि स्त्रियाँ यही काम पेशे के रूप में करने लगें, तो उन्हें ख़ासी आमदनी हो सकती है। यह एक ऐसा काम है जिसे अंधी, गूँगी और बहरी स्त्रियाँ तक बहुत अच्छी तरह कर सकती हैं। इसमें कुछ विशेष पूँजी लगाने की भी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है केवल थोड़ी-सी शिक्षा की, जो सहज में प्राप्त की जा सकती है। जो स्त्रियाँ रोगी, दुर्बल या सुकुमार होने के कारण कठिन परिश्रम का कोई काम नहीं कर सकतीं, वे भी

यह काम बहुत सहज में और अच्छी तरह कर सकती हैं। जितने प्रकार के काम बतलाए गए हैं, वे तभी अच्छी तरह और अधिकता से हो सकते हैं, जब प्रत्येक ज़िले में कुछ पढ़ी-लिखी और योग्य स्त्रियाँ इस प्रकार के कामों को अपने हाथ में लें। उन्हें कुछ ऐसा संगठन करना चाहिए, जिसमें वे स्त्रियों को कुछ विशिष्ट कार्य सिखाने की, और तब उनका तैयार किया हुआ माल ख़रीदकर बेचने की व्यवस्था कर सकें। हमारे देश की गँवार और अपढ़ स्त्रियाँ काम तो बहुत कुछ कर सकती हैं, पर व्यवस्था और संगठन के अभावों के कारण उनके कामों का ठीक-ठीक और पूरा उपयोग नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक नगर में एक ऐसी दूकान खुल जाय, जिसमें केवल स्त्रियों के हाथ की बनी हुई बढ़िया-बढ़िया दस्तकारी की ही चीज़ें बिका करें, तो वह दूकान अच्छे नफ़े से तो चलेगी ही, साथ ही उसके कारण स्त्रियों को अनेक प्रकार की नई-नई चीज़ें तैयार करने का भी शौक़ पैदा होगा। और, इस तरह उनकी अनेक प्रकार से उन्नति होने लगेगी। यदि कोई ऐसा मासिक पत्र निकाला जाय, जिसमें केवल स्त्रियों की ही बनी हुई चीज़ों के विवरण मिलने के पते और विज्ञापन आदि रहें, तो और भी अधिक लाभ हो सकता है। पर हाँ, इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के कार्य आरंभ करने के लिये अदम्य उत्साह और लगन की आवश्यकता है। आरंभ में अवश्य ही अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ होंगी, और आर्थिक लाभ भी कुछ विशेष न दिखाई देगा।

पर जब इस प्रकार का कोई काम चल निकलेगा, तो उससे इतने अधिक लाभ होने लगेंगे कि उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। यदि स्त्री-जाति का सुधार करने की कामना रखनेवाली कुछ स्त्रियाँ ऐसे कामों में लग जायँ, तो अवश्य ही वे देश का बहुत बड़ा उपकार कर सकेंगी। उन्हें सर जे० रेनाल्डस् का यह कथन स्मरण रखना चाहिए—"यदि तुममें साधारण गुण या योग्यता ही है, तो शिल्प के द्वारा उसकी त्रुटि की पूर्ति होगी। यदि अच्छी तरह परिश्रम किया जाय, तो कोई बात असाध्य या अप्राप्य नहीं हो सकती; और यदि अच्छी तरह परिश्रम न किया जाय, तो कोई बात साध्य या प्राप्य भी नहीं हो सकती।"

पाँचवाँ प्रकरण

परोपकारिता के कार्य

समाज और लोक-सेवा के जितने काम हैं, वे चाहे अवैतनिक रूप से किए जायँ या किसी प्रकार का वेतन या पुरस्कार आदि लेकर, उन सबका उद्देश्य एक ही होता है। बहुत-सी स्त्रियों में परोपकार और लोक-सेवा आदि की प्रवृत्ति बिलकुल स्वाभाविक रूप से ही होती है; क्योंकि स्त्रियाँ स्वभाव से ही दयालु और कोमल-हृदया होती हैं। पर प्रायः उन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि हम अपनी यह वृत्ति किस रूप और किस क्षेत्र में चरितार्थ करें; और इसीलिये वे प्रायः अनेक प्रकार के परोपकारिता और लोक-सेवा आदि के कार्य करने से वंचित रह जाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि केवल आवश्यक साधनों के अभाव के कारण ही, बहुत कुछ इच्छा रखने पर भी, वे कोई अच्छा कार्य नहीं करने पातीं। यदि ऐसी स्त्रियों को यह बात मालूम हो जाय कि अमुक क्षेत्र में अमुक प्रकार का कार्य करने की इतनी आवश्यकता है, और साथ ही उन्हें यह भी मालूम हो जाय कि उसके लिये इतने सुबीते और साधन भी प्रस्तुत हैं, तो वे बहुत सहज में और बहुत अधिक कार्य

कर सकती हैं। आजकल अनेक प्रकार के ऐसे कार्य छिड़ गए हैं, जिनमें स्त्रियों को लोक-सेवा करने का अच्छा अवसर मिल सकता है; और यदि वे चाहें, तो उसके लिये उन्हें कुछ वेतन या पारिश्रमिक आदि भी मिल सकता है। यदि सच पूछा जाय, तो मानव-समाज को अनेक प्रकार के कष्टों से मुक्त करना, सामाजिक दोषों को दूर करना आदि कुछ काम ऐसे ही हैं, जिनके लिये स्त्रियाँ सबसे अधिक उपयुक्त हैं। यह तो साधारणतः सभी लोग जानते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में धर्म-भाव कहीं अधिक होता है। यदि स्त्रियाँ न हों, तो धर्म और धार्मिक भावों का बहुत शीघ्र लोप हो जाय, अथवा कम-से-कम उनका प्रचार तो अवश्य ही बहुत कुछ घट जाय। यह बात केवल भारतवर्ष के हिंदुओं के ही संबंध में नहीं, बल्कि प्रायः सभी देशों और सभी जातियों के संबंध में है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि परोपकार और लोक-सेवा का भाव स्त्रियों में जितना अधिक होता है, उतना पुरुषों में कदापि संभव नहीं। चाहे यह बात थोड़ी देर के लिये मान भी ली जाय कि परोपकार और लोक-सेवा के क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने कम काम किया है; पर, फिर भी, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि स्त्रियों में यह प्रवृत्ति पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। इसका कारण स्त्रियों की कोमल-हृदयता और उसके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होनेवाली दयालुता ही है। यदि स्त्रियों में ज्ञान का यथेष्ट प्रकाश फैल जाय, और उन्हें पूरे-

पूरे साधन प्राप्त हो जायँ, तो अनेक देशों और जातियों के अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख बहुत ही सहज में, और बहुत ही थोड़े समय में, दूर हो सकते हैं। अतः आजकल की पढ़ी-लिखी और ज्ञान-संपन्न स्त्रियों का यह परम कर्तव्य है कि वे अपनी अशिक्षित और अज्ञान बहनों को शिक्षा देकर इस बात का ज्ञान प्राप्त करा दें कि लोक-सेवा के क्षेत्र में उनका क्या स्थान है, और यदि वे चाहें, तो इस संबंध में कहाँ तक क्या कर सकती हैं। इस समय स्त्रियों को सबसे पहले यह बतलाने की आवश्यकता है कि परिवार, समाज और देश आदि के प्रति उनके क्या कर्तव्य हैं, और किस विषय में उन्हें कितने अधिकार प्राप्त हैं। हमारे यहाँ भारतवर्ष में भी अनेक बड़ी-बड़ी परोपकारिणी स्त्रियाँ हो गई हैं, जो लोक-सेवा के बहुत बड़े-बड़े कार्य कर गई हैं, और उन्हीं कार्यों के कारण जिनकी गिनती आज तक हमारे यहाँ देवियों में होती है। उदाहरण के लिये हम महारानी अहल्याबाई और नाटौर की रानी भवानी आदि के नाम ले सकते हैं। महारानी अहल्याबाई की दयालुता और परोपकारिता इतनी अधिक बढ़ी हुई थी कि वह मानव-क्षेत्र को पार करके पशु संसार तक पहुँच गई थी। उनके नौकर खेतों में हल जोतते हुए बैलों तक को पानी पिलाते फिरते थे! इसी प्रकार हम और भी अनेक स्त्रियों के नाम बतला सकते हैं, जिन्होंने परोपकार के अनेक प्रकार के कार्य किए हैं। अब भी भारतवर्ष में अनेक ऐसी स्त्रियाँ वर्तमान हैं, जो साधनों के बहुत कुछ अभाव में भी

बहुत बड़े-बड़े काम बराबर करती रहती हैं। पर यहाँ हम केवल यही कहना चाहते हैं कि यदि इन स्त्रियों का यह कार्य अधिक सुव्यवस्थित और अधिक संगठित रूप से हो, तो उसका परिणाम कहीं अधिक व्यापक तथा शुभ हो सकता है। यहाँ भी हमें योरप और अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के उदाहरणों से ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस समय उन देशों के परोपकारिता के प्रायः सभी काम स्त्रियों के ही द्वारा होते हैं, और वह भी बहुत ही सुव्यवस्थित तथा संगठित रूप से। सबसे पहले चिकित्सा को ही लीजिए। यह एक ऐसा काम है, जिसमें समाज की बहुत अच्छी सेवा भी होती है, और यथेष्ट लाभ भी होता है। और, इस समय हमारे देश में स्त्री-चिकित्सकों की आवश्यकता भी बहुत अधिक है। हमारे यहाँ परदे का अधिक रिवाज़ होने के कारण स्त्रियाँ प्रायः पुरुष-चिकित्सकों के सामने नहीं होतीं, अथवा कम-से-कम उन्हें अपने कष्ट अच्छी तरह नहीं बतला सकतीं। यदि अधिक संख्या में स्त्रियाँ चिकित्सा करने लग जायँ, तो हमारे देश की स्त्रियों और बच्चों की भीषण मृत्यु-संख्या बहुत कुछ घट सकती है। न-जाने क्यों आजकल कुछ लोग कहा करते हैं कि चिकित्सा का काम स्त्रियों के लिये उपयुक्त नहीं है। पर यदि हम आँख उठा-कर देखें, तो इस समय हमें सारे संसार में स्त्री-चिकित्सकों की बहुत अधिक संख्या, बहुत अच्छा काम करती हुई, दिखाई देगी। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है—और बहुत ठीक

जान पड़ता है—कि समाज की आरंभिक अवस्थामें चिकित्सा का काम प्रायः स्त्रियाँ ही किया करती थीं। हमें भी अनुमान से यह जान पड़ता है कि आरंभ में जल-वायु आदि की शुद्धता तथा उत्तम खाद्य-पदार्थों की अधिकता के कारण पुरुष तो प्रायः कम बीमार पड़ते होंगे; लेकिन अधिक रोग प्रायः प्रसूतिका स्त्रियों और नवजात शिशुओं को ही हुआ करते होंगे। और, उस दशा में उनकी चिकित्सा भी प्रायः सयानी स्त्रियाँ ही करती होंगी। पश्चिम में 'सयाना'-शब्द चिकित्सक के लिये व्यवहृत होता है। विद्वानों का अनुमान है कि आरंभ में सयाने पुरुषों से पहले सयानी स्त्रियों का ही आविर्भाव हुआ होगा। पुरुषों में यह सयानपन बहुत बाद को, और स्त्रियों की देखा-देखी, आया होगा। आजकल भी रोगियों की सेवा-सुश्रूषा का जितना अच्छा काम स्त्रियाँ करती हैं, वह पुरुषों से नहीं हो सकता। और, इसीलिये प्रायः सभी बड़े-बड़े अस्पतालों आदि में सेवा-सुश्रूषा के काम के लिये स्त्री-परिचारिकाएँ ही रक्खी जाती हैं। चीर-फाड़ आदि के कामों में भी जिन डॉक्टरों को डॉक्टरनियों के साथ काम करना पड़ता है, वे उनकी योग्यता और कार्यपटुता आदि की बहुत अधिक प्रशंसा करते हुए पाए जाते हैं। ऐसी दशा में यह कहना ठीक नहीं कि स्त्रियाँ चिकित्सा-कार्य के लिये उपयुक्त नहीं होतीं। इस काम में वे चाहे और किसी रूप में पुरुषों से आगे न बढ़ सकती हों; परंतु स्त्रियों की चिकित्सा करने में तो वे अवश्य ही पुरुषों की

अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ होती हैं। इस समय भी गाँवों और देहातों में सैकड़ो-हज़ारों ऐसी अशिक्षित स्त्रियाँ मिलेंगी, जो प्रसूतिका और नवजात शिशुओं की उतनी अच्छी चिकित्सा जानती और करती हैं, जितनी आजकल के अच्छे-अच्छे और शिक्षित डॉक्टरों से भी जल्दी न हो सकेगी। संभव है, इस विषय में कुछ लोगों को आश्चर्य हो; पर वास्तव में इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। सयानी स्त्रियाँ प्रायः अनेक प्रकार के ऐसे अच्छे और अनुभूत प्रयोग जानती हैं, जिनसे सैकड़ो-हज़ारों प्राणों की अनायास ही रक्षा हो जाती है। कभी-कभी अशिक्षित दाइयाँ अपने कार्य से अच्छे-अच्छे डॉक्टरों को भी चकित कर देती हैं। यदि ऐसी स्त्रियों को चिकित्सा-शास्त्र की नियमित और व्यवस्थित शिक्षा मिले, तो अवश्य ही उनके हाथों समाज का बहुत अधिक कल्याण हो सकता है।

लंदन के बड़े-बड़े अस्पतालों में कुछ ऐसी स्त्रियाँ रहती हैं, जो 'एलमनर' कहलाती हैं। ये स्त्रियाँ रोगियों के संबंध में अनेक प्रकार के कार्य करती हैं। जो लोग अस्पतालों में अपनी चिकित्सा कराने आते हैं, उनसे ये स्त्रियाँ मिलकर हाल-चाल पूछती हैं, और जिन रोगियों के रोग भीषण होते हैं, उनकी विशेष चिकित्सा का प्रबंध कराती हैं। बीच-बीच में ये स्त्रियाँ रोगियों के घर भी जाती हैं, और वहाँ यह देखती हैं कि उनकी चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा डॉक्टर के कहे अनुसार होती है, या नहीं। वे रोगियों की परिस्थिति आदि का ज्ञान प्राप्त करती

हैं, और यह भी देखती हैं कि रोगी अस्पताल से पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, या नहीं। जिन रोगियों के लिये किसी विशेष प्रकार की चिकित्सा या चीर-फाड़ आदि की आवश्यकता होती है, उनके लिये वे वैसी ही व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार वे रोगियों और अस्पतालों के अधिकारियों के बीच मध्य-स्थका काम करती हैं। जिन घरों में वे जाती हैं, वहाँ सब लोगों को यह बतलाती हैं कि स्वास्थ्य को बनाए रखने और उत्तम बनाने के लिये किन-किन नियमों का पालन करना आवश्यक है, भोजन आदि को क्या और कैसी व्यवस्था होनी चाहिए। इत्यादि-इत्यादि। यहीं नहीं, वे ग़रीब लोगों को यह भी बतलाती हैं कि किस प्रकार गृहस्थी का प्रबंध करना चाहिए, और किस प्रकार थोड़े में निर्वाह किया जा सकता है। निम्न श्रेणी के लोग अपने अज्ञान या लापरवाही आदि के कारण जो कष्ट उठाते हैं, उनसे वे उन्हें यथासाध्य बचने के उपाय बतलाती हैं, और इसी प्रकार के अनेक परोपकार के कार्य करती हैं। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि समाज का वे कितना अधिक कल्याण करती और यथाशक्ति समाज की कितनी अधिक सेवा करने के लिये सदा तैयार रहती हैं। उनका यह उदाहरण हमारे यहाँ की पढ़ी-लिखी और संपन्न स्त्रियों के लिये अनुकरणीय होना चाहिए।

विलायत के बड़े-बड़े कारख़ानों में भी कुछ इसी से मिलता-जुलता कार्य करनेवाली स्त्रियाँ रहती हैं। वहाँ के कारख़ानों में

बहुत-सी स्त्रियाँ भी काम करती हैं, और ये स्त्रियाँ उन काम करनेवाली स्त्रियों के जीवन में अनेक प्रकार के सुधार करती हैं। अब तो वहाँ के प्रायः सभी बड़े-बड़े कारख़ानों में इस प्रकार का कार्य करनेवाली स्त्रियाँ अच्छी-अच्छी तनख़्वाहों पर रक्खी जाने लगी हैं। जो नई स्त्रियाँ काम ढूँढ़ने के लिये आती हैं, उनसे ये मिलकर उनके स्वभाव, गुण और स्वास्थ्य आदि का पता लगाती हैं, और तब उनके लिये उपयुक्त काम निकालती अथवा उनकी नियुक्ति में और कई प्रकार से सहायक हुआ करती हैं। वे उन्हें काम करने का ढंग और कारख़ाने के नियम आदि बतलाती हैं, और उनके रहने तथा खाने-पीने आदि की अच्छी व्यवस्था करती हैं। वे कारख़ानों में अच्छे-अच्छे होटल खुलवाती हैं, जिनमें काम करनेवाली स्त्रियों को सस्ते दामों में अच्छा भोजन मिलता है। वहाँ उन्हें इतना अच्छा और सस्ता भोजन मिलता है, जितना और कहीं किसी प्रकार मिल ही नहीं सकता। साथ ही उनके लिये वे खेल और संगीत आदि की भी व्यवस्था करती हैं, जिससे बीच-बीच में उनका मनोरंजन भी होता रहता है। उनके लिये व्याख्यानों आदि की भी अलग व्यवस्था की जाती है। ऐसे बंक भी खोल दिए जाते हैं, जिनमें वे अपनी बची हुई रक़म अच्छे सूद पर जमा कर सकती हैं। बीमारी के समय उनकी चिकित्सा और निर्वाह आदि का भी यथेष्ट प्रबंध किया जाता है। उनके लिये अस्पताल तथा पुस्तकालय भी खोल दिए जाते हैं, जिनमें अच्छे-अच्छे ग्रंथ तथा समाचार-पत्र आदि

रहते हैं। और, यह सारा प्रबंध करता कौन है? वही स्त्रियाँ, जो कारख़ाने की ओर से वेतन पाकर इसी काम के लिये नियुक्त रहती हैं। इस प्रकार उन स्त्रियों का निर्वाह भी होता जाता है, और उनके द्वारा अनेक प्रकार के परोपकार के कार्य भी होते रहते हैं।

हमारे देश में कारख़ानों आदि का बहुत कुछ अभाव है। जो हैं भी, उनमें काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। तो भी यदि उन कारख़ानों के आसपास रहनेवाली अथवा उन कारख़ानों के अधिकारियों के घर की सभ्य और सुशिक्षित स्त्रियाँ अपनी बहनों का जीवन सुधारना चाहें, तो बहुत कुछ काम कर सकती हैं। वे उन्हें अवकाश के समय अच्छी-अच्छी बातें बतला सकती हैं, पढ़ना-लिखना तथा सीना-पिरोना आदि काम सिखला सकती हैं। कारख़ानों में बहुत-सी स्त्रियाँ और बच्चे ऐसे होते हैं, जो अवकाश के समय कुछ पढ़ना-लिखना चाहते हैं; पर साधनों के अभाव से वे ऐसा करने में असमर्थ होते हैं। यदि उनके लिये इस प्रकार के साधन प्रस्तुत किए जा सकें, तो उनका बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। विलायत में प्रायः सभी कारख़ानों के साथ-साथ इस प्रकार के विद्यालय होते हैं, जिनमें काम करनेवालों को शिक्षा दी जाती है, और विद्यालयों की सारी व्यवस्था परोपकारिणी स्त्रियाँ ही करती हैं।

हमारे यहाँ एक तो शिक्षा का स्त्रियों में यों ही बहुत कम

प्रचार है; दूसरे यहाँ की स्त्रियाँ उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त करने में और भी पिछड़ी हुई हैं। पर पाश्चात्य देशों में बहुत-सी स्त्रियाँ वकालत और बैरिस्टरी तक करती हैं। हमारे भारत में तो इस समय तक दो-तीन से अधिक स्त्रियाँ वकील नहीं हो सकी हैं! जर्मनी में स्त्री-वकीलों आदि की बहुत अधिकता है। वहाँ उनके अलग-अलग क्लब बने होते हैं, जहाँ वे सब एकत्र होती हैं। यदि किसी स्त्री पर कोई मुकद्दमा-मामला होता है, और वह अपनी आंतरिक बातें किसी पुरुष-वकील को नहीं बतला सकती, तो वह उन स्त्री-वकीलों के पास चली जाती है, और उनसे सब हाल कहकर परामर्श लेती है। हमारे यहाँ जब कोई ऐसी स्त्री विधवा हो जाती है, जिसका और कोई पुरुष-संबंधी नहीं होता, तब वह अपनी संपत्ति की व्यवस्था का भार विवश होकर अपने गुमाश्तों, मुनीमों और मैनेजरों आदि पर छोड़ देती है, जो कोई अच्छा निरीक्षक के न होने के कारण उन्हें मनमाना लूट-लूटकर अपना घर भरते हैं। यदि उन्हें अच्छी सलाह और सहायता देनेवाली स्त्रियाँ मिलें, तो उनका बहुत कुछ लाभ हो सकता है। जर्मनी में ऐसी स्त्रियाँ भी हैं, जो इस प्रकार की विधवाओं की संपत्ति आदि की अनेक प्रकार से रक्षा और व्यवस्था करती हैं। यदि स्त्रियों को क़ानूनी दृष्टि से किसी बात का अधिकार नहीं प्राप्त होता, तो वे उस अधिकार के प्राप्त करने का उद्योग करती हैं। तात्पर्य यह कि ये अथवा इसी प्रकार के और ऐसे सैकड़ों काम निकाले जा सकते हैं,

जिनमें दूसरों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है; और यदि उपकार करनेवाली स्त्रियाँ साधारण आयवाली हों, तो उन कार्यों के द्वारा उनकी आय भी बढ़ सकती है। आवश्यकता है केवल शिक्षा, योग्यता और परिश्रम की।

छठा प्रकरण

गृह-प्रबंध

इधर बहुत हाल तक लोग प्रायः यही समझा करते थे कि घर-गृहस्थी के प्रबंध का काम ऐसा है, जिसके लिये स्त्रियों को किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। लोगों की धारणा थी कि गृहस्थी का काम करने की योग्यता स्त्रियों में स्वाभाविक होती है, और वे काम पड़ने पर, विना किसी विशेष प्रकार की शिक्षा पाए ही, गृहस्थी का सब प्रबंध भली भाँति कर सकती हैं। पुरुष जो काम करते थे, उसके लिये तो किसी-न-किसी प्रकार की शिक्षा का अवश्य प्रबंध होता था; पर बेचारी स्त्रियों को उनके कठिन कार्य के संपादन के लिये किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती थी, और वे बिलकुल अंधकार में भटकने के लिये छोड़ दी जाती थीं। किंतु स्वाभाविक रूप से इसका परिणाम प्रायः यही हुआ करता था कि स्त्रियाँ गृहस्थी का काम ठीक ढंग पर और पूरा-पूरा करने में असमर्थ हुआ करती थीं, जिसके कारण स्वयं उन्हें भी कष्ट होता था, और घर के लोगों को भी। यही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो व्यवस्था के अभाव के कारण सारी गृहस्थी ही चौपट हो जाती थी।

हमारे देश में तो अब भी यही बात ज्यों-की-त्यों बनी हुई है ; पर पाश्चात्य देशों के निवासियों ने अब यह बात भली भाँति समझ ली है कि इससे बहुत बड़ी हानि होती है। और, इसी लिये अब वहाँ स्त्रियों को घर-गृहस्थी का काम सिखलाने की भी बहुत अच्छी व्यवस्था हो गई है।

परंतु जो बात संसार के और सब कामों की है, वही घर-गृहस्थी के संबंध में भी ठीक घटता है। प्रत्येक कार्य के लिये अच्छी व्यवस्था की आवश्यकता हुआ करती है। यदि काम ठीक ढंग से न किया जायगा, तो अवश्य ही उसमें अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रहेंगी, जिनसे हानियाँ भी होंगी। जिस प्रकार बिलकुल नए रंगरूट की अपेक्षा पुराना शिक्षित और अनुभवी योद्धा युद्ध-क्षेत्र में कहीं अधिक उपयोगी होता है, उसी प्रकार साधारण अशिक्षित स्त्रियों की अपेक्षा घर-गृहस्थी का काम सीखी हुई स्त्रियाँ भी अधिक उपयोगी होती हैं। हमारे देश की फूहड़ स्त्रियों के संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद और कहावतें आदि प्रचलित हैं, जो बहुत-से अंश में बिलकुल ठीक हैं, और अनेक गृहस्थियों में प्रत्यक्ष देखने में आती हैं। पर यदि स्त्रियों को घर-गृहस्थी का काम सौंपने के पहले उस विषय की कुछ शिक्षा उन्हें दे दी जाया करे, तो फिर यह फूहड़पन देखने में न आवे।

अब लोगों की समझ में धीरे-धीरे यह बात आती जाती है कि गृहस्थी का कार्य ठीक ढंग से चलाने के लिये स्त्रियों को

कुछ विशेष प्रकार की शिक्षा देना आवश्यक है। अब तो पाश्चात्य देशों में अनेक ऐसे विद्यालय खुल गए हैं, जहाँ स्त्रियों को गृहस्थी का कार्य चलाने की व्यवस्थित रूप से शिक्षा दी जाती है। वहाँ के अधिकांश विद्यालयों के साथ एक अलग छोटा विद्यालय भी होता है, जिसमें बालिकाओं को संध्या समय रसोई बनाने, कपड़े धोने और सीने-पिरोने आदि की शिक्षा दी जाती है। साथ ही उन्हें यह भी सिखलाया जाता है कि शरीर और घर की सफ़ाई आदि की, स्वास्थ्य के लिये, कितनी अधिक आवश्यकता है, और स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से स्त्रियों को घर में क्या-क्या काम करने चाहिए। बड़े-बड़े कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में भी इसी प्रकार की, उच्च कोटि की, शिक्षा दी जाती है। पाश्चात्य देशों के लोग अब इस विषय की महत्ता बहुत भली भाँति समझ गए हैं। इसलिये वहाँ इस विषय की शिक्षा के लिये उपयुक्त शिक्षिकाओं की बहुत अधिक आवश्यकता बढ़ गई है। जो स्त्रियाँ इस विषय की उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं, उन्हें भी अनेक प्रकार की पदवियाँ आदि मिलती हैं, और वे आगे चलकर साधारण स्त्रियों को घर-गृहस्थी, खाने-पकाने, सीने-पिरोने आदि के साथ-साथ इस विषय की भी शिक्षा देती हैं कि स्वास्थ्य-रक्षा के नियम क्या हैं, घर में सफ़ाई किस प्रकार रक्खी जाती है, अनेक प्रकार के बरतन और शीशे आदि के सामान किस प्रकार ठीक दशा में रक्खे जाते हैं, नौकरों-चाकरों से किस प्रकार काम लिया जाता है,

इत्यादि-इत्यादि। अब तो पाश्चात्य देशों में कदाचित् ही कोई ऐसा बड़ा नगर होगा, जहाँ स्त्रियों को इन सब बातों की शिक्षा देने के लिये विद्यालय आदि न हों।

यहाँ हम संक्षेप में यह बतला देना चाहते हैं कि इस विषय की शिक्षा का क्या उपयोग होता है। सबसे पहली बात यह है कि यदि स्त्री सुशिक्षित, चतुर, सुघड़ और घर-गृहस्थी का सब काम जाननेवाली होती है, तो गृहस्थी में स्वर्ग-सुख का अनुभव होने लगता है। इससे पति-पत्नी में प्रेम की मात्रा बहुत बढ़ जाती है; सास, ननँद या भाभी आदि से व्यर्थ की लड़ाई या किचकिच नहीं होने पाती, और आगे चलकर लड़के-बच्चे भी सुघड़ और चतुर निकलते हैं। यह एक ही काम इतने अधिक महत्व का है कि इससे इसकी पूर्ण उपयोगिता सिद्ध हो जाती है। पर इसके सिवा इस प्रकार की शिक्षा से और भी अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। जो स्त्रियाँ आगे चलकर ग़रीब लोगों में, परोपकार की दृष्टि से, किसी प्रकार का उपयोगी कार्य या सुधार करना चाहती हैं, उनके लिये भी शिक्षा बहुतआवश्यक होती है। मान लीजिए, कोई स्त्री गृह-कार्य में बहुत अधिक दक्ष है। अब यदि वह अपने पास-पड़ोस की ग़रीब और मूर्ख स्त्रियों को, अपने फ़ुरसत के समय, यह सिखलाया करे कि रसोई अमुक प्रकार से बनानी चाहिए, अमुक प्रकार से परोसनी चाहिए, लड़कों के कपड़े इस प्रकार सीने चाहिए, घर की चीज़ों को इस प्रकार ख़राब या नष्ट होने से बचाना चाहिए, तो

उससे उन ग़रीब और सीधी-सादी स्त्रियों का कितना अधिक लाभ हो सकता है। बहुत-सी विधवा स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनका भरण-पोषण करनेवाला कोई नहीं होता। यदि वे घर-गृहस्थी का सब काम बहुत अच्छी तरह जानती हों, तो उन्हें सहज में किसी अच्छी गृहस्थी में निर्वाह-भर के लिये यथेष्ट वेतन मिल सकता है, वे मारी-मारी फिरने से बच जाती हैं। तात्पर्य यह कि इस प्रकार की शिक्षा से स्त्रियों को अनेक प्रकार के लाभ हो सकते हैं। यदि थोड़ी देर के लिये यह भी मान लिया जाय कि इससे उनका कोई विशेष लाभ नहीं होता, तो भी इस बात से तो कोई इनकार कर ही नहीं सकता कि घर-गृहस्थी के सब कामों से भली-भाँति परिचित होना स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य है। यदि कोई यह कहे कि अमीरों के घरों की स्त्रियों के लिये इस प्रकार की शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है—क्योंकि उन्हें स्वयं कभी कोई काम नहीं करना पड़ता—तो उसका यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि यदि हम यह मान भी लें कि अमीरों के यहाँ सब काम करनेवाली दूसरी स्त्रियाँ मजदूरनियाँ, रसोई बनानेवाली आदि होती हैं, तो भी इस विषय की शिक्षा की आवश्यकता बनी ही रह जाती है। यदि घर की मालकिन स्वयं सब कामों से भली-भाँति परिचित न होगी, तो और सब काम पराई स्त्रियों और नौकरनियों आदि पर ही छोड़ देगी, और तब उसके बहुत-से काम बिगड़ जायँगे, तथा बहुत कुछ आर्थिक हानि भी होगी। दाइयाँ आदि कहीं तो

अनावश्यक रूप से अधिक ख़र्च कर देंगी, कहीं कोई काम बिगाड़ देंगी, और कहीं स्वयं कुछ चुरा-छिपा लेंगी। पर यदि घर की मालकिन सब कामों से स्वयं भली भाँति परिचित होगी, और सब बातों की देखरेख करती रहेगी, तो न तो उसका कोई काम बिगड़ेगा, और न कोई हानि ही होगी। और, यदि साधारण कोटि की कोई स्त्री इस विषय में भली भाँति शिक्षित होगी, तो वह बहुत ही थोड़े व्यय में अपना निर्वाह कर लेगी, और घर के सब लोगों को भी ख़ूब प्रसन्न और संतुष्ट रक्खेगी। इसलिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि बालिकाओं को आरंभ से ही घर-गृहस्थी के सब कामों की यथेष्ट शिक्षा दी जाया करे। यदि सब स्त्रियों को इस प्रकार की समुचित शिक्षा मिलने लग जाय, तो थोड़े ही समय में सभी कुटुंब आदर्श सुख का भोग करने लगें। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि घर और रसोई की सफ़ाई आदि का मनुष्य के स्वास्थ्य पर जो अच्छा प्रभाव पड़ता है, वह तो पड़ता ही है ; साथ ही उसके विचारों आदि पर भी इसका बहुत ही शुभ परिणाम होता है। स्वच्छता आदि का मनुष्य के ऊपर इतना अच्छा प्रभाव पड़ता है कि उसका नैतिक आचरण भी बहुत अधिक सुधर जाता है, और वह अनेक अवसरों पर पतित या पथ-भ्रष्ट होने से बच जाता है। भला इससे अधिक इस विषय की उपयोगिता के संबंध में और कहा ही क्या जा सकता है।

इस समय प्रायः सभी दृष्टियों से हमारा देश जिस दुर्दशा में

है, यहाँ उसका वर्णन करने की आवश्यकता या मौक़ा नहीं है। हमारे यहाँ के अधिकांश लोग न तो शुद्ध वायु और स्वच्छता का महत्व जानते हैं, न किसी चीज़ का ठीक मूल्य अथवा आदर करना, और न उचित रीति पर व्यय या व्यवस्था करना ही। ऐसी दशा में यदि हमारे देश की कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ अपनी दरिद्र बहनों की दुरवस्था का सुधार करने का प्रयत्न आरंभ करें, उन्हें गृहस्थी-संबंधी आवश्यक और उपयोगी बातें बताने लगें, तो इसमें संदेह नहीं कि हमारे देश का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है। भारत में गृहस्थी-संबंधी शिक्षा का प्रचार करना बहुत बड़ा समाज-सेवा का कार्य है, और उसकी ओर पूरा-पूरा ध्यान देना प्रत्येक देश-हितैषी और समाज-सुधारक का कर्तव्य है।

हमारे यहाँ के साधारण लोग और विशेषतः ग़रीब भिन्न-भिन्न खाद्य-पदार्थों के गुणों और महत्व आदि से प्रायः अपरिचित-से ही हैं। उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता है कि अमुक खाद्य-पदार्थ में क्या गुण हैं, उसका किस प्रकार और क्या उपयोग हो सकता है, वह किस प्रकार सुरक्षित रक्खा जा सकता है, और किस अवस्था में उसके व्यवहार से क्या लाभ अथवा क्या हानि होती है। यह भी उन्हें बतलाने की आवश्यकता है कि शुद्ध वायु से और स्वच्छता-पूर्वक रहने से क्या-क्या लाभ हैं। बालिकाओं और युवती स्त्रियों को यह बतलाने की आवश्यकता है कि शिशुओं और बच्चों का पालन-पोषण किस प्रकार किया जाना चाहिए, और उनके स्वास्थ्य का किस प्रकार ध्यान रखना

चाहिए। फ्राँस ने इस विषय में यथेष्ट उन्नति की है। वहाँ अनेक ऐसी संस्थाएँ स्थापित हैं, जो उन स्त्रियों के लालन-पालन आदि का पूरा-पूरा प्रवंध करती हैं, जो कला-कारखानों आदि में काम करने चली जाती हैं। ऐसी संस्थाएँ प्रायः पाठशालाओं से ही संबद्ध होती हैं, और वहाँ इस प्रकार की व्यवस्था होती है कि अधिक अवस्थावाले बालक छोटी अवस्था-वाले बालक को घंटे-आधा घंटे शिक्षा दिया करते हैं। जो बालि-काएँ कुछ सयानी हो जाती हैं, उन्हें एक-एक शिशु सौंप दिया जाता है। वे उसका लालन-पालन भी करती हैं, और उसे शिक्षा भी देती हैं। इस प्रकार छोटी अवस्था से ही उन्हें इस बात की शिक्षा भी मिलने लगती है कि बच्चों को किस प्रकार रखना और उनकी व्यवस्था करनी चाहिए।

इँगलैंड के कुछ कॉलेजों में एक और व्यवस्था है। वहाँ उन स्त्रियों को, जो आगे चलकर बच्चों के लालन-पालन का कार्य करना चाहती हैं, इस बात की विशेष रूप से और उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती है। वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो दूसरों के बच्चों के लालन-पालन आदि का ही पेशा करती हैं, अर्थात् इसी कार्य के द्वारा उनकी जीविका चलती है। जो लोग बालकों की शारीरिक और मानसिक उन्नति का विशेष ध्यान रखते हैं, वे अपने बच्चों को इसी प्रकार की उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्रियों की देखरेख में रखते हैं। जिन कॉलेजों में शिशुओं और बालकों की रक्षा और लालन-पालन आदि की शिक्षा दी जाती

है, उनमें शिक्षार्थी स्त्रियों को स्वास्थ्य-रक्षा के संबंध की अनेक उपयोगी बातें बतलाई जाती हैं, साधारण रोगों के समय या चोट-चपेट लग जाने पर आवश्यक सेवा-सुश्रूषा करने का काम सिखलाया जाता है, बालकों के संबंध की मनोविज्ञान की बातें बतलाई जाती हैं, और यह बतलाया जाता है कि किस अवस्था में बालकों के लिये किस प्रकार का भोजन स्वास्थ्य-वर्द्धक एवं पुष्टिकारक होता है। कदाचित् यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जो स्त्री इतनी बातें जानती होगी, उसे बच्चों के लालन-पालन के लिये ही बहुत अधिक वेतन मिल सकेगा। और, ऐसी स्त्रियों की देखरेख में रहनेवाले बालक यथेष्ट हृष्ट-पुष्ट और चतुर भी होंगे। तात्पर्य यह कि इस तरह यह काम सीखनेवाली स्त्रियों का भी हित होगा, और समाज तथा देश का भी।

भारतवर्ष की बहुत बढ़ी हुई मृत्यु-संख्या प्रायः सारे संसार में प्रसिद्ध है। विशेषतः गर्भवती स्त्रियों और बालकों की तो यहाँ और भी अधिक मृत्यु होती है। इसके अतिरिक्त बहुत-से लोग तो केवल स्वास्थ्य-संबंधी नियमों की ठीक-ठीक जानकारी न रखने और उनका पालन न करने के कारण ही मर जाते हैं। यदि लोगों को स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाय, और वे उनका पालन करने लगें, तो हमारे देश की मृत्यु-संख्या अनायास ही बहुत कुछ कम हो सकती है। यदि चिकित्सा-शास्त्र का यथेष्ट ज्ञान रखनेवाली स्त्रियाँ किसी संस्था

आदि की ओर से शहरों, गाँवों और देहातों आदि में घूम-घूम कर, वयस्क स्त्रियों को घर की सफ़ाई और बच्चों के लालन-पालन के संबंध में अच्छी-अच्छी बातें बतलाया करें, तो यह कार्य बहुत सहज में सिद्ध हो सकता है।

बंबई में स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी एक बड़ी सभा है, जो इस संबंध में अपने नगर और प्रांतों में अच्छा कार्य कर रही है। कोई बारह-तेरह वर्ष हुए, उक्त संस्था के वार्षिक अधिवेशन के समय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—

'ज्यों-ज्यों समाज की उन्नति होती है, त्यों-त्यों मानव-जाति का कल्याण करने की कामना रखनेवाले और राजनीतिज्ञ आदि यह बात अच्छी तरह समझते जाते हैं कि हमें सबसे अधिक ध्यान रोगों आदि को रोकने और कम करने की ओर देना चाहिए। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता है, त्यों-त्यों भीषण और संक्रामक रोगों का बल कम होता जाता है, और राज्यों की ओर से स्वास्थ्य-रक्षा का अधिकाधिक कार्य होता है। जो-जो जातियाँ चिकित्सा और विज्ञान आदि की सहायता से इस प्रकार जन-रक्षा करती हैं, वही अधिक कार्यक्षम और सम्पन्न होती हैं। इधर प्रायः तीन शताब्दियों से योरप के अनेक देशों में यही देखने में आता है कि यदि स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का ठीक-ठीक पालन किया जाय, तो मृत्यु-संख्या बहुत कुछ घट सकती है, और मनुष्य की आयु बहुत बढ़ सकती है। भारत-वासियों के लिये यह बात बहुत ही महत्त्व की और स्मरण

रखने-योग्य है ; क्योंकि इधर प्रायः पचास वर्षों से यहाँ की असौत आयु प्रायः तेईस वर्ष ही रह गई है। अब इसकी तुलना प्रूशिया की अवस्था से कीजिए, जहाँ स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का बहुत अधिक ध्यान रक्खा जाता है । वहाँ प्रति शताब्दी यह मान प्रायः सत्ताईस वर्ष के हिसाब से बढ़ा है। अर्थात् पिछली शताब्दी में वहाँ की औसत आयु जितनी थी, उसकी अपेक्षा वह इस शताब्दी में सत्ताईस वर्ष अधिक है। इससे तथा इसी प्रकार की कुछ और बातों से भली भाँति सिद्ध होता है कि भारत में स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी नियमों के प्रचार और पालन आदि की कितनी अधिक आवश्यकता है। यह तो मानी हुई बात है कि रोगों की जितनी अधिक वृद्धि होगी, राष्ट्र का बल और क्षमता उतनी ही घटेगी। मृत्यु के आधे कारण प्रायः ऐसे होते हैं, जो उपयुक्त उपायों तथा उपचारों से रोके या दूर किए जा सकते हैं। जो लोग इस विषय में पारंगत हैं, उनका अनुमान है कि उचित उपचारों से मनुष्य की आयु में कम-से-कम पंद्रह वर्षों की वृद्धि तो अवश्य हो सकती है। भारत-सरीखे देश में जहाँ प्लेग, हैज़ा और मलेरिया आदि रोगों ने अपना घर बना रक्खा है, यदि स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का यथेष्ट पालन किया जाय, तो मनुष्य की औसत आयु बढ़ सकती है।

........................हिसाब लगाकर यह जाना गया है कि यदि उचित व्यवस्था हो जाय, तो हमारे देश में प्रतिवर्ष चालीस लाख आदमी मृत्यु-मुख में जाने से बचाए जा सकते

हैं, और प्रायः अस्सी लाख मनुष्यों की भिन्न-भिन्न रोगों से रक्षा की जा सकती है। जब मृत्यु और रोगों की संख्या इतनी घट जायगी, तब हमारे देश की आय भी करोड़ों रुपए वार्षिक बढ़ जायगी। जब हम लोग इन बातों को अच्छी तरह समझ लेंगे, तब हम जल-वायु तथा खाद्य-पदार्थों की शुद्धता तथा उत्तमता के लिये अवश्य ही अधिक धन व्यय करने लगेंगे। ....यों तो स्वास्थ्य-रक्षा के अनेक अंग हैं, पर हम उसके दो मुख्य विभाग कर सकते हैं—एक तो सार्वजनिक स्वास्थ्य और दूसरा व्यक्तिगत। पर, फिर भी, इन दोनों का इतना घनिष्ठ संबंध है कि हम इन्हें अलग नहीं कर सकते। मान लीजिए, राज्य की ओर से तो सब लोगों को यथेष्ट स्वच्छ जल पहुँचाया जाता है; पर घर-गृहस्थी में लोग उसका व्यवहार करने से पहले उसकी स्वच्छता नष्ट कर देते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य के उद्योग का क्या परिणाम हो सकता है?......................... ।"

यदि शिक्षित स्त्रियाँ इस विषय की उचित शिक्षा और जानकारी प्राप्त करके ग़रीब स्त्रियों को अनेक ज्ञातव्य और उपयोगी बातें बतलाया करें, तो देश का बहुत अधिक लाभ तथा कल्याण हो सकता है।

एक पाक-शिक्षा को ही लीजिए। हमारे देश में अच्छी रसोई पकानेवाले पुरुषों तथा स्त्रियों की बहुत ही कमी है। रसोई तो नित्य ही सभी घरों में बनती है, पर प्रायः वह बहुत ही साधारण

कोटि की होती है। और, यदि कहीं कोई स्त्री अच्छी रसोई बनाना जानती भी है, तो वह अनेक ऐसी बातों से नितांत अपरिचित होती है, जिनका जानना रसोई बनानेवाले के लिये बहुत ही आवश्यक है। वे न तो यही जानती हैं कि किस ऋतु और किस अवस्था में कौन-सा पदार्थ खाद्य तथा कौन-सा त्याज्य है, और न यही जानती हैं कि किस पदार्थ में क्या गुण अथवा अवगुण होता है। स्वास्थ्य-संबंधी नियमों का पालन तो वे नाम के लिये भी नहीं करतीं। गंदे और मैले-कुचैले हाथों से आटा गूँधना, बरसों तक एक ही गंदे और बदबूदार कपड़े से रोटियाँ ढककर रखना तथा इसी प्रकार की और भी अनेक बातें हैं, जो स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकर होने पर भी नित्य बहुत-से घरों में देखने में आती हैं। रसोई बनाने की अच्छी शिक्षा तो हमारे यहाँ कभी किसी को मिलती ही नहीं। सैकड़ों-हज़ारों स्त्रियों में कदाचित् दो-चार-दस ही ऐसी स्त्रियाँ मिलेंगी, जो बहुत अच्छी और स्वादिष्ट रसोई बना सकती हों; नहीं तो सभी बिलकुल साधारण रसोई बनाना जानती हैं। अच्छी रसोई वे इसलिये नहीं बना सकतीं कि उन्हें इस विषय की कभी कोई शिक्षा ही नहीं मिली। इधर कुछ दिनों से हमारे देश में भी दस-पाँच ऐसे विद्यालय और विधवाश्रम आदि खुल गए हैं, जिनमें स्त्रियों को पाक-शास्त्र की शिक्षा दी जाती है। पर वह भी अनेक दृष्टियों से साधारण ही कही जा सकती है, अधिक उच्च कोटि की नहीं मानी जा सकती। अभी इस विषय में बहुत अधिक उन्नति

होने की आवश्यकता है। पाश्चात्य देशों में बालिकाओं और स्त्रियों को पाक-शास्त्र की अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देने का बहुत अच्छा प्रबंध है। वहाँ इसके लिये डिग्रियाँ और डिप्लोमे तक मिलते हैं। जो स्त्रियाँ पाकशाला का काम अच्छी तरह सीख लेती हैं, उनकी नियुक्ति बहुत अच्छे वेतन पर होती है। जर्मनी में गृह-कार्यों की शिक्षा देनेवाले विद्यालयों में जब बलिकाएँ पढ़ चुकती हैं, तब उन्हें साल-भर तक किसी अच्छी गृह-स्वामिनी के पास रहकर काम सीखने के लिये भेज देते हैं। वहाँ वे छोटे काम सीखती हैं, और उसके बदले में गृह-स्वामिनी को कुछ रक़म बतौर फ़ीस के देती हैं। इस प्रकार अच्छी गृह-स्वामिनियाँ अपने घर में ही बैठी-बैठी स्त्रियों को शिक्षा दिया करती और धनोपार्जन किया करती हैं। बात यह है कि जर्मनों का यह विचार है कि बालिकाओं को गृह-कार्य की उतनी अच्छी और अधिक शिक्षा अपने घर में रखकर नहीं दी जा सकती, जितनी चतुर और दक्ष गृह-स्वामिनियों के पास रखकर दिलाई जा सकती है। और, इसीलिये वे अपनी लड़कियों को दूसरों के यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजते हैं। इसी प्रकार योरप के अन्यान्य देशों में भी अनेक ऐसी व्यवस्थाएँ हैं, जिनके द्वारा स्त्रियों को गृह-कार्य की उपयुक्त शिक्षा दी जाती है।

सातवाँ प्रकरण

निरीक्षण-कार्य

प्रायः सभी नगरों में कुछ ऐसे निरीक्षक हुआ करते हैं, जो म्यूनिसिपैलिटी आदि की ओर से नियुक्त होते हैं, और जिनका कार्य नगर की स्वास्थ्य-संबंधी अवस्था का देखना-भालना और उसमें सुधार करना होता है। इधर थोड़े दिनों से इँगलैंड में यह काम स्त्रियों से लिया जाने लगा है। उनके इस कार्य की वहाँ सब लोग मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि स्वास्थ्य-संबंधी निरीक्षण का काम जितनी उत्तमता से स्त्रियाँ करती हैं, उतनी उत्तमता से पुरुष नहीं कर सकते। वे कहते हैं कि जहाँ इस समय एक स्त्री निरीक्षण का कार्य करती है, वहाँ दस-दस स्त्रियाँ नियुक्त होनी चाहिए। इँगलैंड के बड़े-बड़े कारख़ानों में सरकार की ओर से कुछ ऐसे निरीक्षक नियुक्त होते हैं, जो इस बात का ध्यान रखते हैं कि कारख़ानों अथवा मज़दूरों आदि के रहने के स्थानों में कोई ऐसी बात तो नहीं है, जो उन लोगों के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उन कारख़ानों में पुरुषों और स्त्रियों को

प्रायः दिन-दिन-भर और कभी-कभी बहुत रात तक भी काम करना पड़ता है। अतः उस स्थान के वातावरण का उनके स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। और, इसीलिये वहाँ की सफ़ाई आदि का ध्यान रखने की बहुत बड़ी आवश्यकता हुआ करती है। ऐसे स्थानों के निरीक्षण का कार्य अब वहाँ स्त्रियों से लिया जाने लगा है, जिसे वे बहुत ही योग्यता-पूर्वक संपादित करती हैं। यद्यपि वहाँ अनेक प्रकार के ऐसे क़ानून बने हुए हैं, जिनके द्वारा कारख़ानेदार कठोर परिश्रम लेने और दूसरे अनेक प्रकार से लोगों का स्वास्थ्य नष्ट करने से रोके जाते हैं; फिर भी वे लोग उन क़ानूनों की अवहेलना करते हैं; और या तो वे लोगों से बहुत अधिक काम लेते हैं, या उनके लिये यथेष्ट प्रकाश और वायु आदि की व्यवस्था नहीं करते। ऐसे लोगों को ठीक मार्ग पर लाने का काम ही ये निरीक्षिकाएँ किया करती हैं। छोटे-बड़े सभी प्रकार के कारख़ाने इनके कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत होते हैं, और ये काम करनेवालों के रहने और काम करने के सभी स्थानों का सदा निरीक्षण किया करती हैं। छोटे-बड़े होटलों आदि का भी ये निरीक्षण करती हैं। ये स्त्रियाँ दूकानों आदि में घूम-घूमकर यह भी देखती हैं कि नौकरों से निश्चित समय से अधिक समय तक काम तो नहीं लिया जाता, और उनके बैठने आदि की व्यवस्था ठीक है, या नहीं। एक वर्ष से कम अवस्थावाले जो शिशु बदहज़मी और दस्त आदि रोगों से मरते

हैं, उनके संबंध में भी ये स्त्रियाँ जाँच करती हैं। इस प्रकार का निरीक्षण-कार्य आरंभ करने से पहले उन्हें एक विशेष परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता और साधारण गणित, भौतिक विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा आदि के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। जो स्त्रियाँ इससे उच्च श्रेणी की परीक्षा पास करना चाहती हैं, उन्हें शरीर-विज्ञान और चिकित्सा आदि का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है।

अब हम संक्षेप में यह बतला देना चाहते हैं कि इनके मुख्य-मुख्य कार्य क्या होते हैं। वहाँ के अधिकांश कारख़ानों और फ़ैक्टरियों आदि में काम करनेवाली प्रायः स्त्रियाँ या बालिकाएँ ही हुआ करती हैं। निरीक्षण करनेवाली स्त्रियाँ वहाँ जाकर यह देखती हैं कि जिन कमरों में स्त्रियाँ काम करती हैं, वे साफ़ हैं या नहीं, उनमें रोशनी और हवा ठीक तरह से आती है या नहीं, वहाँ जितनी स्त्रियों के बैठकर काम करने की जगह है, उससे अधिक तो नहीं काम कर रही हैं। इत्यादि। यदि वे कहीं देखती हैं कि इन बातों में नियमों का ठीक-ठीक पालन नहीं हो रहा है, तो वे कारख़ाने के मालिक को लिखकर एक सूचना भेजती हैं कि तुम्हारे यहाँ अमुक-अमुक त्रुटियाँ हैं, तुम इन्हें यथासाध्य शीघ्र दूर करो। यदि कारख़ानेदार मान जाय, तब तो कोई बात नहीं है; और यदि वह न माने, तो फिर उसके साथ क़ानूनी काररवाई की जाती है। तात्पर्य यह कि कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना ही इन स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य

हुआ करता है, और इसके लिये स्त्रियाँ ही पुरुषों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझी जाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि यदि स्त्रियों को किसी प्रकार का कोई कष्ट होगा, तो वे उसकी पूरी-पूरी सूचना भी स्त्रियों को ही दे सकेंगी; पुरुषों को उतनी बातें वे नहीं बतला सकेंगी।

जिन परिस्थितियों में स्त्रियों को काम करना पड़ता है, उनमें सुधार कराना इन स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य होता है। प्रायः ऐसा होता है कि कारख़ानों में गंदी और अँधेरी जगहों में स्त्रियाँ चुपचाप काम करती रहती हैं, और मालिक से किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं करतीं। पर निरीक्षण करनेवाली स्त्रियाँ जब ऐसे स्थानों में कोई त्रुटि या स्वास्थ्य-नाशक बात देखती हैं, तो वे तुरंत उस त्रुटि की सूचना मालिक को देती हैं। और, जब मालिक को यह मालूम हो जाता है कि अमुक सुधार की आवश्यकता है, तो प्रायः वह स्वयं ही तुरंत वह सुधार कर देता है; क्योंकि वह जानता है कि यदि काम करनेवालों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, तो उनसे काम भी अच्छा और यथेष्ट लिया जा सकेगा। पर यदि वह किसी कारण-वश सुधार करने में आनाकानी करता है, तो तुरंत उसे ठीक मार्ग पर लाने के लिये क़ानूनी काररवाई की जाती है। इस काम के लिये निरीक्षण करनेवाली उन स्त्रियों को बिलकुल निष्पक्ष भाव से काम करना पड़ता है। यदि वे कारख़ाने के मालिकों का पक्षपात करें, तो मानो अपने कर्तव्य का पूरा-पूरा पालन नहीं करतीं;

और यदि वे काम करनेवाली स्त्रियों का अधिक पक्षपात करें, तो मानों कारख़ानेवालों के साथ अन्याय करती हैं। कभी-कभी उन स्त्रियों को कुछ कठोर और उग्र भाव भी धारण करना पड़ता है; क्योंकि जो कारख़ानेदार सहज में नहीं मानते, उनके विरुद्ध उन्हें मुकद्दमा तक चलाना पड़ता है। यदि ऐसे अवसर पर वे कोमलता और दयालुता का व्यवहार करें, तो मानों काम करनेवाली स्त्रियों के साथ अन्याय करती हैं।

हम यह मानते हैं कि भारतवर्ष और इँगलैंड आदि देशों की परिस्थिति में आकाश-पताल का अंतर है। न तो यहाँ उतने अधिक कारख़ाने ही हैं, और न उनमें उतनी अधिक स्त्रियाँ ही काम करती हैं। पर, फिर भी, हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यदि कारख़ानों की स्वास्थ्य-संबंधी बातों का निरीक्षण करने के लिये यहाँ भी कुछ स्त्रियाँ नियुक्त की जाया करें, तो ग़रीब काम करनेवालों का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है, और उनमें से बहुत-से असमय ही मृत्यु-मुख में जाने से बच सकते हैं। सन् १९०६ में भारत-सरकार ने यहाँ की कपड़ों की मिलों में काम करनेवाले लोगों की अवस्था की जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी। उस कमेटी ने यह सिफ़ारिश की थी कि मिलों का निरीक्षण करने के लिये कुछ ऐसे लोगों का नियुक्त किया जाना आवश्यक है, जो चिकित्सा-शास्त्र और स्वास्थ्य-संबंधी नियमों आदि के भी ज्ञाता हों; और उन लोगों को अपना सारा समय इन मिलों और कारखानों आदि के

निरीक्षण में ही लगाना चाहिए। उस कमेटी ने बतलाया था कि ऐसे निरीक्षकों से नीचे लिखे काम लिए जाने चाहिए—

(१) पीने के पानी का निरीक्षण।

(२) स्वच्छ वायु के आने के मार्गों और इस बात का निरीक्षण कि काम करने के स्थानों में धूल या धुआँ आदि तो नहीं आता।

(३) इस बात का निरीक्षण कि वायु शुद्ध रहती है या नहीं, और काम करने की जगह में सीड़ आदि तो नहीं है।

(४) ताप-मान

(५) स्थान का विस्तार

(६) स्वच्छता और दीवालों पर क़लई आदि

(७) फ़र्श पर की मोरियाँ और नालियाँ आदि

(८) रहने के स्थानों की सफ़ाई

(९) कारख़ानों के विशिष्ट निरीक्षकों के साथ मिलकर इस बात का पता लगाना कि यदि कोई दुर्घटना हुई है, तो वह क्यों और कैसे हुई है, और उसके संबंध में अपनी रिपोर्ट देना।

(१०) ऐसे रोगों का ध्यान रखना, जो कुछ विशिष्ट देशों में और सीसा, संखिया, फ़ासफ़ोरस आदि ज़हरों के कारण होते हैं, अथवा शरीर के श्वास-संबंधी अंगों में होनेवाले रोगों का ध्यान रखना।

(११) इस विषय में अपना संतोष कर लेना कि जिन स्त्रियों और बच्चों से काम लिया जाता है, वे शारीरिक दृष्टि से काम करने के योग्य तो हैं।

ऊपर जो कार्य बतलाए गए हैं, वे इँगलैंड के कारख़ानों का निरीक्षण करनेवाली स्त्रियों के कार्यों से बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं। भारत के कारख़ानों में प्रायः स्त्रियाँ और पुरुष साथ-ही-साथ काम करते हैं, इसलिये हम कह सकते हैं कि यदि यहाँ भी कारख़ानों का निरीक्षण करने के लिये पढ़ी-लिखी और शिक्षित स्त्रियाँ रक्खी जायँ, तो यहाँ के कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों को उतना ही लाभ होगा, जितना इँगलैंड में काम करनेवाली स्त्रियों को होता है।

इस समय भारत के कारख़ानों आदि के निरीक्षण की जो व्यवस्था है, वह कदापि संतोषजनक नहीं कही जा सकती। सन् १९०९ में भारत के कारख़ानों में काम करनेवालों की अवस्था की जाँच करने के लिये जो कमीशन नियुक्त हुआ था, उसने अपनी रिपोर्ट में यह बतलाया था कि यहाँ के कारख़ानों में, अनेक बाधक क़ानूनों और नियमों के रहते हुए भी, छोटे-छोटे बच्चों के साथ बहुत अधिक अन्याय किया जाता है। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि जिस कलकत्ते में कारख़ानों का एक विशेष निरीक्षक रहता है, वहीं प्रायः तीस-से-चालीस प्रति-सैकड़े ऐसे बच्चे आधा दिन काम करते हैं, जिनकी अवस्था नव वर्ष से भी कम है, और क़ानून के अनुसार जिनसे कोई काम नहीं लिया जाना चाहिए। पचीस प्रति-सैकड़े ऐसे बालक हैं, जिनसे दिन-भर काम लिया जाता है, और जिनकी अवस्था चौदह वर्ष से भी कम है! क़ानून के अनुसार ऐसे

बच्चों से दिन-भर काम नहीं लिया जाना चाहिए। बंबई-प्रांत के बाहर २९ कारख़ानों में सत्रह ऐसे हैं, जिनमें चौदह वर्ष से भी कम अवस्थावाले बालकों से भी बराबर उतने ही समय तक काम लिया जाता है, जितने समय तक वयस्क पुरुषों से, निरीक्षक लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि कारख़ानों में इस प्रकार क़ानून की अवहेलना की जाती है; पर हमने इसे दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। क़ानून के अनुसार दोपहर के समय कुछ देर के लिये काम बंद हो जाना चाहिए, और रविवार को कोई काम नहीं लिया जाना चाहिए। पर प्रायः कारख़ानेवाले न तो दोपहर के समय काम करनेवालों को छुट्टी देते हैं, और न रविवार के दिन कारख़ाना बंद ही रखते हैं। तात्पर्य यह कि इस समय निरीक्षण की जो प्रथा है, उससे कोई विशेष उपकार नहीं होता—वह प्रायः निरर्थक और विफल सिद्ध होता है। कमीशन ने इसका कारण यही बतलाया था कि सरकार ने इस काम के लिये यथेष्ट निरीक्षक नहीं रक्खे हैं। जो निरीक्षक रक्खे गए हैं, वे और भी बहुत-से काम करते हैं, और अपने अवकाश के समय कभी-कभी कहीं जाकर निरीक्षण कर आया करते हैं। इन सब बातों से यह बात भली भाँति सिद्ध होती है कि हमारे देश में कारख़ानों के निरीक्षण की उपयुक्त व्यवस्था की बहुत अधिक आवश्यकता है। यदि हमारे यहाँ भी यह काम स्त्रियों को ही सौंप दिया जाय, तो इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि उससे हमारे देश की

स्त्रियों और बच्चों आदि का बहुत अधिक लाभ होगा। आजकल यहाँ कारख़ानों के जो निरीक्षक होते हैं उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये विलायत जाना पड़ता है । और, संभवतः स्त्रियों को भी इसके लिये पहले विलायत जाकर ही शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी।

हमारे यहाँ के कारख़ानों आदि में भी, स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से, बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है। प्रायः सभी जानकारों का मत है कि इस दृष्टि से कारख़ानों की इमारतों का बहुत कुछ सुधार होना चाहिए। यदि निरीक्षण करके सुधार के ठीक-ठीक उपाय बतलाए जा सकें, तो बहुत-से कारख़ानेदार बहुत प्रसन्नता से वह सुधार करने के लिये तैयार हो जायँगे, और उन सुधारों के कारण काम करनेवालों का बहुत अधिक लाभ होगा। आजकल भारत के अधिकांश कारख़ानों में, बहुत थोड़ी-सी जगह में, बहुत ज़्यादा आदमी काम करने के लिये रख दिए जाते हैं, जहाँ दूषित वायु निकलने और शुद्ध तथा स्वच्छ वायु आने का कोई उपयुक्त मार्ग नहीं होता । उनमें यथेष्ट प्रकाश भी नहीं होता, और खिड़कियाँ आदि प्रायः बंद रहती हैं। काम करनेवालों पर इन सब बातों का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है । उनका स्वास्थ्य बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। परिणाम यह होता है कि वे दिन-पर-दिन दुर्बल और रोगी होते जाते हैं, और अंत में अकाल-मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह तो हुई कारख़ानों में काम करने की जगह की बात । अब

उन स्थानों को लीजिए, जिनमें काम करनेवाले मज़दूर आदि रहते और रात के समय सोते हैं। उन स्थानों की दशा और भी ज़्यादा ख़राब होती है। कलकत्ता-बंबई आदि नगरों में स्थान की यों ही बहुत संकीर्णता होती है। इसलिये वहाँ काम करनेवाले मज़दूर आदि छोटी-छोटी कोठरियों में भेड़-बकरियों की तरह भरकर रक्खे जाते हैं। उनके रहने के लिये जो मकान बनाए जाते हैं, वे भी सात-सात और आठ-आठ मंज़िल ऊँचे होते हैं, और उनमें वायु अथवा प्रकाश आदि आने की कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं होती।

ऐसे मकानों के बिलकुल निचले खंडों में जो लोग रहते होंगे, उनके कष्ट और दुर्दशा का सहज में ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं हो सकता। यदि इस प्रकार के स्थानों के निरीक्षण आद का कार्य स्त्रियों को सौंप दिया जाय, तो अवश्य ही उससे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। सरकार की ओर से अभी ऐसी व्यवस्था न हो सके, तो भी जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यदि कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ स्वयं अपनी ओर से ही ऐसे स्थानों में जाकर लोगों की दशा अपनी आँखों देखें, और यथासाध्य उनमें सुधार करने का उद्योग करें, तो भी बहुत कुछ शुभ परिणाम निकल सकता है।

निरीक्षण के इसी प्रकार के और भी अनेक काम हैं, जिन्हें स्त्रियाँ बहुत सहज में और बहुत अच्छी तरह कर सकती हैं। विलायत की अनेक संस्थाओं—जैसे पाठशालाओं, छात्रावासों, अस्प-

तालों, पागलख़ानों और जेलख़ानों आदि—में अनेक प्रकार का निरीक्षण करने के लिये कुछ स्त्रियाँ नियुक्त होती हैं, जो मेट्रन कहलाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ वहाँ अनेक प्रकार के उपयोगी कार्य करती हैं, और बहुत ही उत्तमतापूर्वक करती हैं। जिन पाठ-शालाओं या दूसरी संस्थाओं के प्रधान अधिकारी पुरुष हुआ करते हैं, उनमें मेट्रन का काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। छात्रा-वासों में मेट्रन का काम यह होता है कि वे बालकों के निवास-स्थान, भोजन, जलपान और कपड़े-लत्ते आदि की व्यवस्था और निरीक्षण और बालकों को यथासाध्य सुमार्ग पर रखने का प्रयत्न करती हैं। छोटे-छोटे पाजी, दुष्ट या अपराधी बालकों के सुधार के लिये जो संस्थाएँ होती हैं, उनका भी निरीक्षण स्त्रियाँ ही करती हैं। यदि बालकों की किसी संस्था में केवल पुरुष ही निरीक्षक और कार्यकर्ता हों, तो वहाँ उन बालकों को, अध्यापक या पुरुष-निरीक्षक के रूप में पिता तो मिल जाते हैं; पर माता का अभाव उनके लिये बना ही रहता है। पर यदि वहाँ निरीक्षण-कार्य के लिये कोई स्त्री नियुक्त कर दी जाय, तो उनका मातावाला अभाव भी दूर हो जाता है, और वे वहाँ रहकर सहज में अपने घर का-सा सुख अनुभव कर सकते हैं। कुछ बालक ऐसे भी होते हैं, जो दुष्ट और दुश्चरित्र माता-पिता की संतान होने के कारण स्वयं भी दुष्ट और दुश्चरित्र हो जाते हैं। यदि ऐसे बालक कुछ दिनों तक किसी सुयोग्य, सच्चरित्र अध्यापक तथा मेट्रन की अधीनता में रहते हैं, ता उनका चरित्र

अनायास ही सुधर जाता है; क्योंकि उनके चरित्र पर निरीक्षक और मेट्रन के चरित्र का बहुत ही अच्छा परिणाम पड़ता है। पर हाँ, इसके लिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि अध्यापक या निरीक्षक और मेट्रन आदि स्वयं सुशील और सच्चरित्र हों, और बालकों का सुधार और कल्याण हृदय से चाहते हों। मेट्रन को पाक-शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालकों को जो भोजन दिया जाय, वह बहुमूल्य न होने पर भी उत्तम और स्वादिष्ट हो, स्वास्थ्य-वर्द्धक हो, और बराबर उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता रहे। बच्चों के कपड़े-लत्ते आदि की सफ़ाई पर भी उसे विशेष ध्यान रखना चाहिए, और समय-समय पर उनके बदल-वाने और धुलवाने आदि का भी प्रबंध करना चाहिए। उसे चिकित्सा-शास्त्र का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिए, जिसमें किसी बालक को छोटा-मोटा रोग होने या चोट-चपेट आदि लगने पर वह तत्काल उपयुक्त चिकित्सा कर सके। उसे सच्च-रित्र और सुशील होना चाहिए, जिसमें बालकों पर उसके सदा-चार की पूरी-पूरी छाप पड़ सके। उसे दयालु और कोमल-हृदय तो होना ही चाहिए; पर साथ ही दृढ़ भी होना चाहिए। उसमें दृढ़ता होने की इसलिये आवश्यकता है कि जिससे उसकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन होता रहे; और यदि कोई बालक उसकी आज्ञा की अवहेलना करे, तो उसे दंड देने में वह किसी प्रकार का संकोच न करे। कोमलता तथा दयालुता का उसके लिये

यह उपयोग होगा कि बालक उसकी आज्ञा का पालन प्रसन्नता-पूर्वक करेंगे। पाश्चात्य देशों के अनुभव से यह बात भली भाँति सिद्ध हो चुकी है कि सुयोग्य मेट्रनों का बालकों के चरित्र आदि पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो दुष्ट बालक पुरुष-अध्यापक से किसी प्रकार ठीक नहीं होते, उन्हें मेट्रनें बहुत ही सहज में या तो समझा-बुझाकर अथवा डरा-धमकाकर ठीक कर लेती हैं।

इस काम के लिये जो स्त्रियाँ नियुक्त की जायँ, उन्हें पूर्ण शिक्षित भी होना चाहिए। कम शिक्षित मेट्रनों का बालकों पर उतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। जिन स्त्रियों ने कुछ दिनों तक अध्यापन का कुछ अच्छा काम कर लिया हो, वे इसके लिये और भी अधिक उपयुक्त होती हैं। स्वीज़रलैंड की मेट्रनें बालकों को फ़ुरसत के समय बाग़वानी और पशु-पालन आदि की भी शिक्षा देती हैं। वे अनेक भाषाएँ और संगीत आदि की अच्छी जानकार होती हैं, और पाठशाला की साधारण शिक्षा के अतिरिक्त बालकों को और भी अनेक प्रकार की शिक्षा देती रहती हैं।

जेलख़ानों आदि में भी मेट्रनों का काम कम महत्व का नहीं होता। वहाँ भी वे प्रायः भोजन, कपड़े-लत्ते और काम का निरीक्षण करती हैं। वहाँ जो स्त्रियाँ किसी अपराध में जेल जाती हैं, उनका चरित्र सुधारने में तो वे बहुत कुछ सहायक होती ही हैं, साथ ही वे उन्हें कई प्रकार के नए काम और

शिल्प आदि भी सिखला देती हैं, जिनके द्वारा वे जेल से निकलने पर सहज में अपनी जीविका का निर्वाह कर सकती हैं। अपराधिनी स्त्रियों के चरित्र पर मेट्रनों का इतना अच्छा प्रभाव पड़ता है कि उनका कार्यक्षेत्र और अधिकार दिन-पर-दिन बराबर बढ़ते ही जाते हैं। अमेरिका के इंडियानापोलिस-नामक स्थान में एक ऐसा जेलख़ाना है, जिसमें केवल दो वार्डरों या चौकीदारों को छोड़कर बाक़ी और सब काम करने-वाली स्त्रियाँ ही हैं। जेल के जितने कार्य होते हैं, उन्हें स्त्रियाँ ही करती हैं; क्योंकि पुरुष उस जेल में हैं ही नहीं। दो पुरुष-चौकीदार या वार्डर केवल इसलिये रख लिए गए हैं कि यदि कभी कोई कठिन अवसर आ पड़े, तो सहायता दें। पर वहाँ की अधिकारिणी स्त्रियों का कहना है कि इन पुरुष-वार्डरों से सहायता लेने की बहुत ही कम और कदाचित् ही कोई आवश्यकता पड़ती हो; स्त्रियाँ ही सब काम बहुत अच्छी तरह कर लेती हैं। अमेरिका के एक और जेलख़ाने में कुछ दिनों तक प्रधान अधिकारी का काम एक स्त्री ही किया करती थी। उसके चरित्र और सद्व्यवहार का उस जेल के अपराधियों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा था, और उसने अपने कार्य से यह सिद्ध कर दिखलाया था कि दुष्ट और दुश्चरित्र अपराधी भी सद्व्यवहार आदि के कारण बहुत जल्दी और बहुत अधिक सुधर सकते हैं। जब तक उस स्त्री के हाथ में जेल का प्रबंध रहा, तब तक वहाँ कभी किसी प्रकार की कोई शिकायत आदि

नहीं सुनने में आई, और न किसी प्रकार का कोई उपद्रव या अव्यवस्था ही हुई। इससे सिद्ध होता है कि यदि सुयोग्य स्त्रियों को इस प्रकार के काम सौंपे जायँ, तो उससे लाभ ही होगा; हानि की कभी कोई संभावना नहीं हो सकती।

आठवाँ प्रकरण

सहयोग या समवाय-सिद्धांत

एक बहुत बड़े विद्वान् का मत है कि जिस जन-समूह में एकता नहीं होती, उसमें नितांत अव्यवस्था और गड़बड़ी रहती है; और जिस एकता का आधार जन-समूह नहीं, बल्कि जो केवल थोड़े-से आदमियों के मिलने से होती है, वह एकता नहीं, केवल अत्याचार है। हमारे काम के लिये इस कथन का केवल यही तात्पर्य है कि जब सब लोग मिलकर कोई काम करते हैं, तब वह बहुत अच्छी तरह और व्यवस्थित रूप से होता है। परंतु यदि सब लोग एक ही काम अलग-अलग करें, तो पहले तो वह बिलकुल अव्यवस्थित रूप से होगा; और यदि कभी किसी प्रकार व्यवस्थित रूप से हुआ भी, तो उसमें इतना अधिक समय लगेगा, और इतनी अधिक कठिनाइयाँ होंगी कि हम उसे ठीक और व्यवस्थित कह ही न सकेंगे। इसी सिद्धांत को बहुत अच्छी तरह समझकर बुद्धिमानों ने सहयोग या को-आपरेशन की प्रणाली निकाली है।

संसार के अन्यान्य देशों में तो सहयोग की प्रणाली का इतना अधिक प्रचार है, जिसकी पूरी-पूरी कल्पना भी हम लोग

सहज में नहीं कर सकते। पर हमारे देश में भी अब यह प्रणाली धीरे-धीरे जड़ पकड़ती जा रही है। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसका आश्रय प्रायः उन सभी कामों में लिया जा सकता है, जिनका हमने अब तक उल्लेख किया है। सिर्फ़ उन्हीं में क्यों, और सब प्रकार के कामों में भी इससे बहुत अधिक लाभ उठाया जा सकता है। हम इस प्रकरण में यही बतलाना चाहते हैं कि योरप में इस प्रणाली का किस प्रकार आरंभ हुआ, उसमें अब तक कितनी उन्नति हुई, और उससे कितना लाभ हो सकता है। इससे पाठक-पाठिकाएँ इसका स्वरूप भी बहुत कुछ समझ सकेंगी, और इसकी उपयोगिता से भी भली-भाँति परिचित हो जायँगी।

सबसे पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि इस प्रणाली का मूल सिद्धांत यह है कि जो लोग कोई चीज़ बनाकर तैयार करें, वे उसके मुनाफ़े में भी हिस्सा पावें। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि समय पड़ने पर वे यह सलाह भी दे सकें कि यह काम किस तरह चलाना और इसकी किस प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था होगी, वहाँ काम करनेवालों का तो लाभ होगा ही; साथ ही उन कारख़ानेदारों का भी लाभ होगा, जो दूसरे आदमियों को अपने यहाँ रखकर उनसे काम लेते हैं। जब काम करनेवाले यह देखेंगे कि मुनाफ़े में हमें भी हिस्सा मिलता है, और काम चलाने के बारे में हमसे भी राय ली जाती है, तब वे अवश्य ही इस बात का उद्योग करेंगे

कि कारख़ाने का काम बहुत अच्छी तरह चले, और उसमें अधिक मुनाफ़ा हो; क्योंकि उस दशा में वे लोग उस कारख़ाने को अपना समझने लगेंगे। तात्पर्य यह कि इस सहयोग-सिद्धांत का मुख्य अभिप्राय और परिणाम यही होता है कि सब लोग मिलकर कोई काम करने के लिये एक हो जायँ, और आपस में एक दूसरे की पूरी-पूरी सहायता करें। इँगलैंड में इस प्रणाली का आरंभ मि० ओवेन-नामक एक सज्जन ने किया था। उस समय इसके सिद्धांतों का सर्व-साधारण में प्रचार करने के लिये एक पत्रिका भी निकलती थी, जिसका नाम "कोआपरेटिव मैगज़ीन" था। उस मैगज़ीन में, सन् १८२६ में, एक बार उसके संपादक ने लिखा था कि मि० ओवेन का इस आंदोलन से यह अभिप्राय नहीं है कि इस समय अमीरों के पास जो धन है, उसे वे ग़रीबों को दे दें; बल्कि उनका अभिप्राय यह है कि ग़रीबों को ऐसा अवसर दिया जाय, जिससे वे स्वयं अपने लिये कुछ धन उपार्जित कर सकें।

सहयोग-सिद्धांत के मूल में दो मुख्य बातें हैं। पहली बात तो यह कि उसके कारण लोग आपस में एक दूसरे की सहायता करने लगते हैं, और व्यक्तिगत प्रतियोगिता का अंत हो जाता है। मानव-जीवन का श्रेष्ठ तथा सुंदर आदर्श यही है कि सब लोग जहाँ तक हो सके, एक दूसरे की सहायता करें। दूसरी बहुत बड़ी बात यह कि बहुत-से लोगों के अलग-अलग कोई चीज़ बेचने अथवा अपने लिये अलग-अलग ख़रीदने की अपेक्षा

सब लोगों का मिलकर कोई चीज़ बेचना अथवा स्वयं ही तैयार करके ख़रीदना और स्वयं ही बेचना कहीं अधिक लाभदायक है। मान लीजिए, किसी गाँव में घी या मक्खन के चार व्यापारी हैं, जो अलग-अलग गउएँ रखकर मक्खन और घी तैयार करके बेचते हैं। अब उन लोगों में प्रतियोगिता होती है, और वे एक दूसरे से कम मुनाफ़े पर बेचने की चिंता में रहते हैं, मानों वे एक प्रकार से स्वयं घाटा उठाते हैं, और दूसरों को भी घाटा पहुँचाने का उद्योग करते हैं। परंतु यदि वे चारों मिलकर एक हो जायँ, और एक ही जगह अपनी गउएँ-भैंसें रखकर और एक ही जगह मक्खन या घी तैयार करके बेचना आरंभ कर दें, तो उस दशा में क्या परिणाम होगा? यही कि सबसे पहले तो, उन लोगों का ख़र्च कम हो जायगा और तब न केवल आपस की प्रति-योगिता ही बंद हो जायगी, बल्कि वे सब एक दूसरे को पूरी-पूरी सहायता देने लगेंगे। उस समय वे लोग मुनाफ़ा भी पूरा पावेंगे और एक होने के कारण उनका मुनाफ़ा पहले से बहुत कुछ बढ़ भी जायगा। और, फिर बाज़ार में उनकी जो साख बढ़ेगी, वह अलग। इसी प्रकार यदि दस गृहस्थ मिलकर आटे-दाल आदि की एक दूकान खोल लें, और वे सब वहीं से ख़रीदा करें, तो उनको चीज़ भी अच्छी मिले, और किफ़ायत से भी। और, फिर उस दूकान के मुनाफ़े में जो हिस्सा मिलेगा, वह अलग।

योरप के अन्यान्य देशों में तो यह प्रथा कुछ और पहले से

थी, पर इँगलैंड में सन् १८४४ तक इस प्रथा का कोई विशेष-और उल्लेख-योग्य प्रचार नहीं हुआ था। सन् १८४४ में लंका-शायर के पास के एक गाँव के अट्ठाईस जुलाहों ने मिलकर कुछ काम करने का विचार किया। उन लोगों ने हर हफ़्ते अपनी-अपनी कमाई से दो पेंस (लगभग दो आने) बचाकर कुछ दिनों में एक-एक पौंड बचाया। और, तब सबने मिलकर अट्ठाईस पौंड इकट्ठे किए। इस रकम से उन्होंने एक छोटी-सी दूकान खोली, जिसमें वे सब अपना तैयार किया हुआ माल लाकर रखने और बेचने लगे। धीरे-धीरे उनका काम इतना बढ़ा कि कुछ ही दिनों में इधर-उधर उनकी उन्नीस दूकानें हो गईं। केवल यही नहीं, केंद्रों में उनका एक बहुत बड़ा गोदाम होगया, जहाँ से सब जगह माल भेजा जाने लगा। इसके अति-रिक्त उन्होंने अपने सदस्यों या साझीदारों के लिये एक बहुत बड़ा पुस्तकालय भी बनवा लिया, और एक अच्छी-सी वेधशाला भी क़ायम कर ली, जिसमें अनेक प्रकार के बड़े-बड़े यंत्र थे। वे लोगों में ज्ञान का प्रचार करने का भी यथेष्ट उद्योग करते थे, और बालकों को पढ़ाने-लिखाने की भी अच्छी व्यवस्था करते थे। उन्होंने ग़ल्ले का भी बहुत बड़ा काम आरंभ किया, और कताई तथा बुनाई के कारख़ाने भी क़ायम कर लिए। इसके सिवा उन्होंने और भी कई तरह के काम आरंभ किए। वे महा-जनी भी करते थे, और लोगों के मकान आदि भी बनवा दिया करते थे। इस व्यापार के संचालकों का मुख्य सिद्धांत यह था

कि माल बेचने में जो कुछ मुनाफ़ा हो, वह ख़रीदारों को, उनकी ख़रीद के मुताबिक, बाँट दिया जाय। अर्थात् जिसने दस रुपए का माल ख़रीदा हो उसे दस रुपए का मुनाफ़ा दिया जाय, और जो सौ रुपए का माल ख़रीदे, उसे सौ रुपए का। पर ग्राहकों को यह मुनाफ़ा उसी समय नहीं दे दिया जाता था। वह मुनाफ़ा समिति अपने पास जमा रखती थी, और जब वह बढ़कर ५ पौंड हो जाता था, तब उस ख़रीदार का समिति में ५ पौंड का हिस्सा मान लिया जाता था, और उस रक़म पर हिस्सेदार को पाँच रुपए सैकड़े का सूद दिया जाता था। इसके बाद यदि और कुछ रक़म बच रहती थी, तो वह रक़म या तो हिस्सेदार को, उसके माँगने पर, दे दी जाती थी; अथवा यदि वह चाहता था, तो उसके नाम से जमा कर ली जाती थी, और इस प्रकार उसके हिस्से की रक़म बराबर बढ़ती जाती थी। मतलब यह कि जिन लोगों के पास कुछ भी पूँजी नहीं होती थी, वे भी यदि उस समिति से माल ख़रीदकर उसकी सहायता किया करते थे, तो वे भी कुछ समय में पूँजीदार और उस समिति के हिस्सेदार हो जाते थे। ऐसे लोग स्वयं तो अपनी सब आवश्यक चीज़ें उस समिति से ख़रीदा ही करते थे; साथ में वे अपने मित्रों आदि को भी वहाँ ले आया करते थे, और उनसे भी वही माल ख़रिदवाया करते थे। इसमें स्वयं उनका भी लाभ होता था, और उनके उन मित्रों का भी, जो वहाँ से माल ख़रीदा करते थे।

बस, उसी समय से सहयोग के इस सिद्धांत का बराबर प्रचार होने लगा, और दिन-पर-दिन बढ़ता गया। इस समय वहाँ के अनेक प्रकार के छोटे और बड़े, सभी काम इसी सिद्धांत के अनुसार हुआ करते हैं। यदि आप किसी छोटे-से गाँव में भी चले जायँ, तो वहाँ भी आपको छोटी-मोटी दो-चार ऐसी दूकानें मिल जायँगी, जो इसी सहयोग के सिद्धांत के अनुसार चलती होंगी। और, यदि किसी बड़े शहर में जायँ, तो वहाँ तो लाखों और करोड़ों रुपए साल का काम करनेवाली अनेक बहुत बड़ी-बड़ी दूकानें और कंपनियाँ मिलेंगी। ऐसी समितियाँ बड़े-बड़े कल-कारख़ाने और कपड़ों आदि की मिलें चलाती हैं, खाद्य-पदार्थ उत्पन्न करती और बनाती हैं, अपने सदस्यों को किराए पर मकान देती और उनके हाथ बेच भी देती हैं, अथवा मकान आदि बनाने के लिये उन्हें ऋण भी देती हैं। जब लोगों को किसी तरह की चीज़ मिलने में कोई कठिनाई अथवा किसी चीज़ की उन्हें अधिक आवश्यकता होने लगती है, तब वे आपस में मिलकर एक सभा करते हैं, और सब लोग थोड़ा-थोड़ा धन देकर एक अच्छी रक़म खड़ी कर लेते हैं। यह निश्चय कर लिया जाता है कि इसका प्रत्येक हिस्सा इतने रुपयों का होगा। उसी हिसाब से लोगों में हिस्से बँट जाते हैं। इसके बाद मंत्री, ख़जानची और धन एकत्र करनेवाले पदाधिकारी नियुक्त कर दिए जाते हैं, और धड़ाके से काम चलने लगता है। फिर जो कुछ लाभ होता है, वह हर तीसरे महीने हिस्सेदारों में बाँट

दिया जाता है। इस प्रथा से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उसके हिस्सेदारों को मितव्ययी होने की बहुत अच्छी शिक्षा मिलती है, और वे जहाँ तक हो सकता है, धन बचा-बचाकर रखते और हिस्से ख़रीदते हैं। इसके अतिरिक्त वे ऋणी होने से भी बचते हैं; क्योंकि सहयोग-समितियों का यह नियम होता है कि वे किसी को कोई चीज़ कभी उधार नहीं देतीं। जो कुछ वे बेचती हैं, वह सब नक़द दाम लेकर ही।

इसी प्रकार की एक और व्यवस्था होती है, जिसमें कुछ लोग मिलकर कोई कारख़ाना खोलते हैं; और जो लोग उस कारख़ाने में काम करनेवाले होते हैं, केवल वही उसके हिस्सेदार भी होते हैं। जो लोग उस कारख़ाने में किसी प्रकार का काम न करते हों, वे उसके हिस्सेदार भी नहीं हो सकते। साथ ही प्रायः वही लोग उस कारख़ाने का बना हुआ माल ख़रीदते भी हैं। इस प्रकार मानों वे स्वयं ही चीज़ें तैयार करने उनका व्यवहार करने और लाभ उठानेवाले होते हैं। उन कारख़ानों में काम करनेवालों के व्यवहार से जो चीज़ें बचती हैं, वे दूसरों के हाथ भी साधारण नफ़े पर बेची जाती हैं। लंदन में गैस बनानेवाली ऐसी एक बहुत बड़ी कंपनी है, जो बहुत-से लोगों को गैस देती है। जिन गैस-कंपनियों के मालिक अपने कारख़ाने के मज़दूरों को लाभ का अंश नहीं देते, उनके कारख़ानों की अपेक्षा इस कारख़ाने की दर भी बहुत कम पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि कारख़ानों का आदर्श सदा यही होना चाहिए कि लाभ का

कुछ अंश उसमें काम करनेवाले मज़दूरों आदि को भी मिला करे।

अब हम संक्षेप में यह बतलाना चाहते हैं कि साधारणतः स्त्रियाँ, विशेषतः भारतवर्ष की स्त्रियाँ, इस प्रकार के कामों के लिये कहाँ तक उपयुक्त हैं। स्त्रियों के लिये व्यापार में सम्मिलित होना कोई नई बात नहीं है। प्रायः सभी देशों में सदा से कुछ-न-कुछ ऐसी स्त्रियाँ होती आई हैं, जो समय पड़ने पर व्यापार का काम अच्छी तरह कर सकती हैं। व्यापार में सम्मिलित होने से स्त्रियों की नैतिक उन्नति भी होती है, और आर्थिक उन्नति भी। यदि किसी को हमारे इस कथन में संदेह हो, तो उसे उचित है कि वह छोटी जाति की स्त्रियों का ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करे। प्रायः सभी देशों में और हमारे भारतवर्ष में भी छोटी जाति की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के व्यवसाय करती हैं। पुरुष प्रायः मिहनत-मज़दूरी करते हैं, और स्त्रियाँ बाज़ारों में जाकर तरह-तरह की चीज़ें बेचती हैं। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः अपने पुरुषों से अधिक बुद्धिमती होती हैं, और उनकी इस बुद्धिमत्ता का कारण केवल यही है कि उन्हें अपने बुद्धिबल का पुरुषों की अपेक्षा अधिक उपयोग करना पड़ता है। मध्य-युग में योरप में कारीगर-पुरुष और स्त्रियाँ मिलकर संघ स्थापित किया करती थीं। उन दिनों वहाँ पुरुषों के कामों की अपेक्षा स्त्रियों के काम अधिक पसंद किए जाते थे, और उनकी मज़दूरी या दाम भी अधिक मिलता था। कई किंतु ऐसे कारण हैं, जिनसे स्त्रियों को

पुरुषों की अपेक्षा कम दाम या मज़दूरी लेने के लिये विवश होना पड़ता है। परंतु यदि स्त्रियाँ सहयोग-सिद्धांत पर काम करने लगें, तो वे पुरुषों के बराबर ही दाम पा सकती हैं। भारत में इस प्रकार की सहयोग-समितियाँ अकेली स्त्रियाँ भी स्थापित कर सकती हैं, और पुरुषों के साथ मिलकर भी। यदि हमारे देश में यह व्यवस्था हो जाय, तो धन का वितरण अपेक्षा-कृत अधिक समान हो जाय। प्रचलित व्यवस्था में तो यही होता है कि कारख़ाने के मालिकों या कंपनियों के हिस्से-दारों को ही प्रायः सारा मुनाफ़ा मिल जाता है, और बेचारे काम करनेवाले मज़दूर कठिनता से अपने निर्वाह-भर को मज़दूरी पाते हैं। पर सहयोग की व्यवस्था में इस प्रकार केवल थोड़े-से लोगों के लाभ उठाने की गुंजाइश न रह जायगी, और काम करनेवाले लोग अपनी साधारण मज़दूरी के अतिरिक्त लाभ का भी कुछ अंश पा सकेंगे।

योरप के डेनमार्क-नामक प्रदेश में दूध, पनीर और मक्खन आदि के प्रायः जितने कारख़ाने हैं, उन सबका संचालन सह-योग-सिद्धांत पर वहाँ की स्त्रियाँ ही करती हैं। इस काम में वहाँ की स्त्रियों को बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई है, यहाँ तक कि बहुत कुछ स्त्रियों के इसी व्यापार के कारण डेनमार्क-सरीखे छोटे-से देश की भी योरप में, वहाँ की शक्तियों में, गणना होती है। पहले किसी समय डेनमार्क एक बहुत ही दरिद्र और नगण्य देश समझा जाता था। पर अब वह अपेक्षा-कृत

बहुत अधिक संपन्न देश हो गया है । और, सबसे विलक्षण बात यह है कि वहाँ की इतनी अधिक उन्नति बहुत ही थोड़े दिनों में हुई है। सहयोग-सिद्धांत के अनुसार वहाँ दूध, मक्खन और पनीर आदि का सबसे पहला कारख़ाना सन् १८८२ में स्थापित हुआ था। इस विषय में भारतवासी बहुत सहज में और बहुत अच्छी तरह डेनमार्क का अनुकरण कर सकते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष के गाँवों की बिखरी हुई शक्ति बहुत सहज में संगठित की जा सकती है। डेनमार्क के प्रायः सभी गाँवों में सहयोग-सिद्धांतों के आधार पर संचालित दूध और मक्खन आदि का एक कारख़ाना होता है, जिसमें पास-पड़ोस के सभी किसानों की गउओं का दूध जमा होकर बिकता है, और उससे पनीर तथा मक्खन आदि बनाया जाता है। गउओं के मालिक उस कारख़ाने के हिस्सेदार होते हैं और वे जितना दूध या मक्खन आदि उस कारख़ाने को देते हैं, उसी हिसाब से मुनाफ़े में हिस्सा पाते हैं। अंडे आदि जमा करके बेचने के लिये भी इसी तरह के कारख़ाने हैं। बहुत-से कारख़ाने ऐसे भी हैं, जो इसी प्रकार आस-पास के लोगों से शहद या फल आदि लेकर अपने यहाँ से बेचते हैं।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, अतः यह आशा की जाती है कि यदि यहाँ के किसान आदि मिलकर दूध, दही, मक्खन और घी आदि बनाने तथा बेचने के लिये सहयोग-सिद्धांत के आधार पर कारख़ाने क़ायम करें, तो उनको बहुत अधिक लाभ हो

सकता है। इससे यहाँ के ग़रीबों की दशा बहुत अधिक सुधर सकती है, और साथ ही यहाँ की ख़ाली बैठी रहनेवाली स्त्रियों के लिये बहुत अच्छा काम निकल सकता है। डेनमार्क की तरह यहाँ भी प्रत्येक गाँव में एक ऐसा स्थान बनाया जा सकता है, जहाँ स्त्रियों को इन सब कामों के संबंध की शिक्षा भी मिला करे।

इसी प्रकार का एक और काम है, जिसका खेती-बारी से बहुत अधिक संबंध है, और जो सहयोग-सिद्धांत के आधार पर बहुत अच्छी तरह चलाया जा सकता है। वह काम है महाजनी का। हमारे यहाँ के दरिद्र कृषकों को प्रायः हल, बैल या बीज आदि ख़रीदने के लिये महाजनों से ऋण लेने की आवश्यकता पड़ती है। वे लोग इन ग़रीबों से कितना अधिक सूद लेते हैं, और अंत में किस बुरी तरह से अपनी रक़म वसूल करने के लिये उनका घर, खेत, बरतन और यहाँ तक कि पहनने के कपड़े आदि भी बिकवा लेते हैं, यह किसी से छिपा नहीं। यदि ऐसे कामों के लिये तहसीलों और ज़िलों में छोटे-छोटे बंक खोले जायँ, और खेतिहरों को साधारण सूद पर रुपया उधार दिया जाय, तो उससे उनका बहुत अधिक उपकार हो सकता है। इस प्रकार के बंक स्थापित करने का विचार सबसे पहले, सन् १८५० के लगभग, जर्मनी में हुआ था। इन बंकों का मुख्य उद्देश्य यही था कि ग़रीब किसानों को महाजनों के चंगुल से बचाया जाय। अगले महाजनी-शीर्षक प्रकरण में हम यह बतलावेंगे कि भारत-वर्ष की स्त्रियाँ यह काम किस प्रकार कर सकती हैं।

यहाँ हम संक्षेप में केवल यही बतलाते हैं कि जर्मनी के इन बंकों का क्या स्वरूप है। और कैसे संगठन होता है।

(१) इस प्रकार की संस्थाएँ स्थानिक हुआ करती हैं, और उसके सब सदस्य एक दूसरे के परिचित होते हैं। यद्यपि उनमें कुछ बड़े-बड़े और अमीर लोग भी, परोपकार की दृष्टि से, सम्मिलित हो जाते हैं, तथापि उसके अधिकांश सदस्य और हिस्सेदार प्रायः ग़रीब किसान ही हुआ करते हैं।

(२) ऋण लेनेवाले को यह बतलाना पड़ता है कि किस काम के लिये ऋण की आवश्यकता है, और अधिकारी लोग इस बात की जाँच कर लेते हैं कि वास्तव में उसका कहना ठीक है, या नहीं। यदि इस बात का पता लग जाय कि ऋण लेने वाले ने उस काम में रुपए न ख़र्च करके किसी और काम में ख़र्च किया है, तो उससे तुरंत रुपया वापस माँग लिया जाता है।

(३) जो लोग उस संस्था के सदस्य होते हैं, उनके सिवा और किसी को ऋण नहीं दिया जाता।

(४) कुछ निश्चित किस्तों में ऋण की सारी रक़म, मय सूद के, चुका देनी पड़ती है।

(५) ऋण की मज़बूती के लिये एक हैंड-नोट लिख देना पड़ता है।

(६) ये संस्थाएँ सेविंग बंक का काम भी देती हैं। अर्थात् यदि उसके सदस्य खाकर-पीकर कुछ रक़म बचाते हैं, तो वे उसी संस्था में जमा कर देते हैं, और उसका सूद पाते हैं।

(७) प्रत्येक संस्था में दो समितियाँ होती हैं। एक समिति तो सब कार-बार करती है, और दूसरी उसके कार-बार की जाँच और देखरेख रखती है। जो लोग उसमें काम करते हैं, वे किसी प्रकार का वेतन आदि नहीं लेते; मुफ़् और केवल परोपकार की दृष्टि से वे काम करते हैं।

(८) हिस्सों का मूल्य बहुत कम रक्खा जाता है, और हिस्सेदारों को किसी तरह का सूद नहीं दिया जाता। जो कुछ मुनाफ़ा होता है, वह सब स्थायी कोष में जमा कर दिया जाता है।

इस प्रकार के सब बंक आपस में एक दूसरे से संबद्ध भी हुआ करते हैं। यदि भारत में भी इस प्रकार के बंक खुल जायँ, तो यहाँ के गाँवों का बहुत सहज में और बहुत अच्छा संगठन हो सकता है। साथ ही यहाँ के दरिद्र किसानों को बहुत ही थोड़े सूद पर ऋण मिलने की भी व्यवस्था हो सकती है।

नवाँ प्रकरण

महाजनी या लेन-देन

सुप्रसिद्ध विद्वान् बेकन का मत है कि संसार में ऋण लेने और देने का काम कभी रुक नहीं सकता। लोग बराबर ऋण लेते भी रहेंगे, और देते भी रहेंगे। परंतु पुरुषों का हृदय कठोर होता है, और वे ऋण देने अथवा सूद लेने में किसी प्रकार की रियायत नहीं कर सकते। इसलिये वे सदा उचित से अधिक सूद लेते रहेंगे, और उन्हें इस प्रकार अधिक सूद लेने देना चाहिए।

बात बिलकुल ठीक है। जितनी दया स्त्रियाँ कर सकती हैं, उतनी पुरुषों से होना यदि असंभव नहीं, तो कम-से-कम बहुत कठिन अवश्य है। और, इसीलिये महाजनों के द्वारा कर्ज़दारों की वह भीषण दुर्दशा होती है, जो किसी से छिपी नहीं है। यदि स्त्रियाँ किसी प्रकार यह काम अपने हाथ में ले सकें, तो कर्ज़ लेनेवालों का कष्ट बहुत कुछ कम हो सकता है।

समस्त भारत में ४,२०,००० आदमी ऐसे हैं, जो महाजनी या लेन-देन का काम करते और सूद पर रुपया चलाते हैं। इनमें से प्रायः सत्रह या साढ़े सत्रह प्रतिसैकड़े स्त्रियाँ हैं। यही कारण

है कि हमें यह कहना पड़ता है कि अब स्त्रियों को अधिक संख्या में यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए। स्त्रियाँ भी यह काम कर सकती हैं, यह तो इसी से प्रकट है कि अब भी भारत में बहुत-सी स्त्रियाँ यह काम करती हैं। इस कार्य के संबंध में उनकी योग्यता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। योरप में बहुत दिनों तक यही माना जाता था कि जितना मूल हो, सूद उससे अधिक कभी न होना चाहिए, और मूल से अधिक सूद लेना एक नैतिक पाप है। विशेषतः मित्रों से सूद लेना तो वहाँ और भी पाप समझा जाता था। उन दिनों अमीर लोग अपना धन प्रायः गाड़ रखते थे। मुसलमानों में तो सूद लेना ही हराम ठहराया गया है। हमारे यहाँ प्राचीन धर्म-शास्त्रों में सूद के संबंधमें कई उपयोगी नियम दिए हैं, जो कर्ज़ लेनेवालों के पक्ष में बहुत ही अच्छे हैं। पर आजकल लोग उन पुराने और उपयोगी नियमों को बिलकुल भूल-से गए हैं, और अधिक-से-अधिक सूद लेने में भी कभी नहीं हिचकते। यद्यपि इस देश की वर्तमान सरकार ने भी सूद के संबंध में कई उपयोगी नियम बनाए हैं; पर, फिर भी, बहुत-से अवसर ऐसे आते हैं, जिनमें वे नियम एक प्रकार से निरर्थक हो जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन काल की भाँति आजकल भी लोग सूद बिलकुल न लिया करें, अथवा बहुत ही कम या नाम-मात्र के लिये लिया करें; क्योंकि उन दिनों की और आजकल की परिस्थिति में बहुत अधिक अंतर

हो गया है। उन दिनों लोग प्रायः अपनी निज की कोई बहुत बड़ी आवश्यकता आ पड़ने पर ही ऋण लिया करते थे; और इसीलिये उनसे बहुत ही कम सूद लेना अथवा बिलकुल ही सूद न लेना उचित था। पर आजकल लोग बहुधा व्यापार आदि करके किसी-न-किसी प्रकार से लाभ उठाने के लिये ऋण लिया करते हैं। ऐसी दशा में उनसे सूद लेना मानों उनके उस लाभ का ही अंश लेना है, जो किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त आजकल सारे संसार में व्यापार का ढंग ही कुछ ऐसा हो गया है कि उसमें बिना ऋण लिए काम ही नहीं चल सकता। पर, फिर भी, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि महाजन लोग कर्ज़दारों का सर्वस्व हरण न कर सकें।

महाजनी या लेन-देन का काम प्रायः सारे संसार में, बहुत प्राचीन काल से, होता आया है। चीन, मिस्र, बैबिलॉन, भारत, यूनान, रोम आदि, सभी देशों के लोग बराबर यह काम करते आए हैं। इसमें ध्यान देने-योग्य एक बहुत ही विलक्षण बात यह है कि प्रायः सभी देशों में यह काम समाज के एक विशिष्ट वर्ग के लोग ही करते थे। पर अब सब जगह यह काम इतना फैल गया है कि समाज के सभी वर्गों के लोग बेधड़क इसे करते हैं। प्राचीन काल में हमारे यहाँ केवल वैश्य ही महाजनी या लेन-देन का काम किया करते थे। यही नहीं, बल्कि व्यापार, कृषि और पशु-पालन आदि भी केवल उन्हीं का काम था। मनु ने यह सब वैश्यों का ही धर्म बतलाया है। पर साथ ही एक और

बात भी है। मनु की यह भी आज्ञा है कि आपद्-काल में उच्च वर्ण के लोग आवश्यकता पड़ने पर अपने से निम्न वर्णों के काम कर सकते हैं। परंतु, फिर भी, ब्राह्मण या क्षत्रिय को कभी सूद पर ऋण देने का काम नहीं करना चाहिए। पीछे से शूद्रों को भी आवश्यकता पड़ने पर सूद पर ऋण देने और सूद लेने की व्यवस्था हो गई थी। इसके उपरांत यह व्यवस्था हुई कि बहुत अधिक आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण भी ऋण देकर सूद ले सकते हैं। ईसा की छठी शताब्दी में बृहस्पति ने यह व्यवस्था की कि ब्राह्मण लोग स्वयं यह काम न किया करें; हाँ, अपने गुमाश्तों या कारिंदों आदि के द्वारा यह व्यवसाय कर सकते हैं। अर्थात् इस प्रकार धीरे-धीरे सभी वर्णों को यह काम करने की आज्ञा मिल गई।

इसी प्रकार इँगलैंड में भी विजयी विलियम के समय से सन् १२९० तक यह काम केवल यहूदियों के हाथों में रहा। विलियमों ने ही पहले-पहल यहूदियों को अपने देश में प्रवेश करने की आज्ञा दी थी। पर जब सन् १२९० में यहूदी लोग उस देश से निकाल दिए गए, तब यह काम धीरे-धीरे इँगलैंड के लोग करने लगे। जब तक इँगलैंड में यहूदी लोग रहते थे, तब तक वहाँ के सरकारी कर्मचारी और धर्माधिकारी, दोनों मिलकर बराबर इस बात का प्रयत्न किया करते थे कि इँगलैंडवाले यह काम न करने पावें। पर जब यहूदी लोग देश से निकाल बाहर किए गए, तब प्रायः सभी अँगरेज़ स्वतंत्रता-पूर्वक यह व्यवसाय

करने लगे। पर, फिर भी, सूद लेने के संबंध में कुछ कड़े क़ानून बना दिए। जो लोग उन क़ानूनों को तोड़ते थे, उन्हें कठोर दंड दिया जाता था। क्रॉमवेल के समय में यहूदियों को फिर इँगलैंड में आने की आज्ञा मिल गई, और वे फिर उसी पुराने ढंग से लेन-देन का व्यवसाय करने लगे। और, आज दिन तक इँगलैंड में लेन-देन का व्यवसाय करनेवालों की सबसे अधिक संख्या इन्हीं यहूदियों की है। केवल इँगलैंड में ही क्यों, प्रायः सारे संसार में ही यह काम करनेवाले सबसे अधिक यहूदी ही हैं। पर सन् १८५४ में, महारानी विक्टोरिया के समय में, इँगलैंड के सूद-संबंधी पुराने क़ानून तोड़ दिए गए, और महाजनी व्यवसाय में गिनी जाने लगी। यह भी निश्चय हो गया कि सूद की दर महाजन और असामी आपस में तय कर लिया करें; सरकार उसमें कोई हस्तक्षेप न करे। तो भी यदि सूद-ब्याज के संबंध में कोई मुकद्दमा चले, तो वहाँ की अदालतों के हाकिमों को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि यदि सूद की दर बहुत अधिक जान पड़े, तो वे उसे घटाकर ठीक कर दें।

भारतवर्ष में महाजनी और लेन-देन का व्यवसाय बहुत प्राचीन काल से होता आया है। यहाँ के प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि ईसा से प्रायः छः सौ वर्ष पूर्व भी यहाँ इसका अच्छा प्रचार था, और यह जीविका-निर्वाह का एक अच्छा साधन समझा जाता था। परंतु गौतम बुद्ध ने यह आज्ञा प्रचारित कर दी थी कि किसी को १५ सैकड़ा सालाना से

अधिक सूद नहीं लेना चाहिए । साथ ही यह भी कह दिया था कि सूद कुल मिलाकर कभी असल से अधिक न होना चाहिए। इसके उपरांत मनु भगवान् ने यह निर्णय किया कि यह व्यवसाय केवल वैश्यों को ही करना चाहिए । पर इस प्रकार का लेन-देन अपने से उच्च वर्णवाले लोगों के साथ भी किया जा सकता था, और निम्न वर्ण के लोगों के साथ भी । गौतम बुद्ध की भाँति मनु ने भी यही निर्द्धारित किया था कि सूद की दर कभी किसी दशा में १५ सैकड़ा सालाना से अधिक न होनी चाहिए; पर साथ ही यह भी निर्णय कर दिया था कि ब्राह्मणों से सबसे कम सूद लेना चाहिए, क्षत्रियों से उनकी अपेक्षा कुछ अधिक वैश्यों से उनकी अपेक्षा कुछ और अधिक और शूद्रों से सबसे अधिक लेना चाहिए। तात्पर्य यह कि सूद आदि के संबंध में नियम बनाने में योरप की अपेक्षा भारतवर्ष अधिक उन्नत और आगे बढ़ा हुआ था। मनु ने तो इस विषय में यहाँ तक कह दिया था कि जो कर्ज़दार कष्ट में पड़ा हो, उससे किसी प्रकार का सूद ही नहीं लेना चाहिए । यदि किसी कर्ज़दार के पास कर्ज़ चुकाने के लिये रुपया न रह जाता था, और उसका महाजन उससे उच्च वर्ण का होता था, तो कर्ज़दार अपने महाजन की सेवा करके भी उसके ऋण से मुक्त हो सकता था । यदि कोई कर्ज़दार मर जाता था, तो उसका पुत्र या पौत्र वह कर्ज़ चुकाता था। मतलब यह कि उन दिनों किसी के लिये दिवालिया होने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

मुसलमानों के यहाँ तो सूद लेना आरंभ से ही हराम है। जब वे भारतवर्ष में आए, तब भी हिंदू ही महाजनी और लेन-देन का काम करते रहे। धीरे-धीरे उनकी देखा-देखी मुसलमानों ने भी यह काम आरंभ कर दिया। आजकल बहुत-से मुसलमान ऐसे हैं, जो सूद खाते और महाजनी का काम करते हैं। इसके उपरांत भारत में अँगरेज़ों का आगमन हुआ। उन्होंने सूद के संबंध में यहाँ के लिये भी प्रायः वही नियम प्रचलित किए, जो इँगलैंड में प्रचलित थे। अब यहाँ कुछ उपयोगी नियम बन गए हैं। प्राचीन भारत का अब केवल एक ही नियम बच रहा है, और वह यह कि किसी हिंदू को एकबार के लेन-देन में किसी हिंदू से इतना सूद नहीं लेना चाहिए, कि असल से भी बढ़ जाय।

यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का व्यापार आदि करने अथवा और किसी प्रकार से लाभ उठाने के लिये कर्ज़ ले, तो उससे सूद लेना उचित और न्यायसंगत है। और, ऐसे व्यवसाय में स्त्रियाँ भी बहुत अच्छी तरह सम्मिलित हो सकती हैं। नगरों में लोग प्रायः व्यापार आदि के काम के लिये ही कर्ज़ लिया करते हैं। गाँवों और देहातों में बहुधा खेती-बारी के काम के लिये कर्ज़ लिया जाता है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, इसलिये यहाँ के लोगों को अधिकतर खेती-बारी के कामों के लिये ही कर्ज़ लेना पड़ता है। पर यहाँ के लोगों को उचित सूद पर कर्ज़ लेने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हुआ करती हैं। यह बात प्रायः सभी लोग जानते हैं कि भारतवर्ष के

किसान बहुत ग़रीब हैं। वे सदा क़र्ज़दार रहते हैं, और उनका कर्ज़ दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है। जब तक असामी से सूद बराबर मिलता रहता है, तब तक महाजन उससे लेन-देन बराबर जारी रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि लड़के और पोते प्रायः अपने बाप और दादा के कर्ज़ के बोझ से लदे रहते हैं।

यह एक मानी हुई बात है कि धनवानों की अपेक्षा निर्धनों को सदा अधिक सूद पर कर्ज़ मिलता है। इस देश के अधिकांश निवासी गाँवों के रहनेवाले और बहुत ग़रीब हुआ करते हैं। फलतः उन्हें अपेक्षा-कृत बहुत अधिक सूद देना पड़ता है। भारतीय किसानों पर कितना अधिक कर्ज़ है, इसका कोई ठीक-ठीक हिसाब लगाया ही नहीं जा सकता। साधारणतः अच्छी आर्थिक स्थितिवाले लोगों को जितना सूद देना पड़ता है, उसकी अपेक्षा प्रायः २० सैकड़े अधिक सूद इन ग़रीब किसानों को देना पड़ता है। प्राचीन काल में ज़मानत अधिक दृढ़ नहीं हुआ करती थी। कब किसके हाथ से किसकी ज़मीन या मकान निकल जायगा, इसका कोई ठीक-ठिकाना नहीं था। इसके सिवा दिया हुआ कर्ज़ वसूल करने में भी लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ होती थीं। कठिनाइयाँ तो आजकल भी होती हैं, पर उन दिनों आजकल की अपेक्षा ये बहुत अधिक हुआ करती थीं। इसलिये उन दिनों सूद की दर बहुत ज़्यादा हुआ करती थी। गाँव-देहातों में अब तक प्रायः सूद की वही दर चली आती है।

सवाई, ड्योढ़ी और रोज़ाना ही आदि की प्रथा उसी समय से चली आती है, और देहातों में अब तक प्रायः इसी प्रथा से कर्ज़ दिया और सूद लिया जाता है। दूसरी बात यह है कि पहले महाजन लोग बोनी के समय किसानों को बीज आदि के लिये ग़ल्ला दिया करते थे, और फ़सल तैयार होने पर उसका सवाया ले लिया करते थे। बोनी के समय ग़ल्ला महँगा हो जाता है और फ़सल तैयार होने पर सस्ता। इस प्रकार क़र्जदारों को पहले प्रायः उचित सूद ही देना पड़ता था, और वह किसी प्रकार अधिक नहीं कहा जा सकता था; क्योंकि उसकी बहुत कुछ कसर ग़ल्ले के भाव में ही निकल आया करती थी। पर आजकल तो प्रायः बोनी के समय नक़द रुपया ही दिया जाता है, और फ़सल तैयार होने पर उसका सवाया वसूल कर लिया जाता है। रुपए का भाव तो इतने थोड़े समय में घटता-बढ़ता नहीं, इसलिये क़र्जदारों को पहले की अपेक्षा आजकल प्रकारांतर से बहुत अधिक सूद देना पड़ता है। तीसरी बात यह है कि आजकल महाजन लोग जब कर्ज़दार को रुपया देने लगते हैं, उसी समय उससे सूद काट लेते हैं। इस प्रकार सूद की दर पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ जाती है।

किसानों को इस प्रकार के कष्टों से बचाने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि सहयोग-सिद्धांत के अनुसार ऐसे बंक स्थापित किए जायँ, जो उन्हें थोड़े सूद पर क़र्ज दिया करें। भारत-सरकार की अधीनता में यहाँ के कृषि-विभाग ने यह काम अपने

ज़िम्मे लिया था, और सन् १९०४ में भारत-सरकार ने इस प्रकार के बंक स्थापित करने के लिये एक क़ानून भी पास किया था। यद्यपि धीरे-धीरे इस प्रथा का प्रचार हो रहा है, तथापि इसमें जितनी अधिक उन्नति होनी चाहिए, उसकी अपेक्षा अभी तक बहुत ही कम उन्नति हो सकी है। तो भी इसमें संदेह नहीं कि बहुत-से स्थानिक महाजन भी इसमें अपनी पूँजी लगाने और इस प्रथा की उपयोगिता समझने लगे हैं। अब भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारें भी इसके लिये एक विशिष्टविभाग स्थापित करके इस प्रथा का अधिक प्रचार और उन्नति करने का प्रयत्न कर रही हैं। प्रायः सभी प्रांतों के बहुत-से ज़िलों और तहसीलों आदि में ऐसे बंक स्थापित हो गए हैं, जो अच्छा काम कर रहे हैं। उद्योग इस बात का हो रहा है कि प्रत्येक प्रांत में एक बड़ा बंक स्थापित किया जाय, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक ज़िले में हों, और उन बंकों की प्रशाखाएँ तहसीलों तथा क़सबों आदि में स्थापित की जायँ। अभी तो बहुत-से अंशों में यह काम सरकार को ही करना पड़ता है। पर जब इस प्रकार के बंक सब जगह स्थापित हो जायँगे, और अच्छी तरह स्वतंत्रता-पूर्वक अपना काम करने लगेंगे, तो फिर उनको सरकारी सहायता की आवश्यकता न रह जायगी।

यदि भारत की धनवान स्त्रियाँ इस प्रथा का प्रचार और उन्नति करने में आर्थिक सहायता करें, तो उससे ग़रीब किसानों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है, और उनकी दरिद्रता भी

बहुत कुछ दूर हो सकती है। अधिकांश भारतवासी कृषक ही हैं, और इस प्रथा से सबसे अधिक लाभ भी कृषकों का ही होगा। जब उन्हें थोड़े सूद पर रुपया मिलने लगेगा, तो वे अनेक प्रकार के कष्टों और विपत्तियों आदि से बच जायँगे, और खेती-बारी में बहुत कुछ उन्नति कर सकेंगे। इससे उनकी शारीरिक और नैतिक उन्नति भी यथेष्ट मात्रा में होगी, और उनमें आत्मनिर्भरता आवेगी। जिन ज़िलों, तहसीलों या क़सबों आदि में इस प्रकार के बंक स्थापित हो गए हैं, वहाँ खेतिहरों की अवस्था पहले की अपेक्षा कुछ-न-कुछ अवश्य सुधर गई है। इसलिये हम कह सकते हैं कि जो लोग इस काम में अपनी पूँजी लगावेंगे, वे एक प्रकार से ग़रीबों का बहुत बड़ा उपकार करेंगे। शीघ्र ही उन्हें यह जानकर बहुत आनंद और संतोष होगा कि हमने अपना धन एक ऐसे काम में लगाया है, जिससे हमारे देश-भाइयों का अनेक प्रकार से कल्याण हो रहा है।

दसवाँ प्रकरण

परोपकारिणी संस्थाएँ

ग़रीबों की हर तरह से सेवा और सहायता करना धनवान् और संपन्न लोगों का परम कर्तव्य है, और धनवान् पुरुषों की अपेक्षा धनी स्त्रियों का तो यह और भी अधिक कर्तव्य हो जाता है। पर धनी स्त्रियाँ पूछ सकती हैं कि यदि हम ग़रीबों की सेवा और उपकार करना चाहें, तो उसका सबसे अच्छा और सुगम उपाय क्या है? चाहे कोई धन देकर दूसरों की सेवा और उपकार करना चाहता हो और चाहे व्यक्तिशः, दोनों ही अवस्थाओं में काम करने का ढंग जान लेना आवश्यक है। इसलिये हम यहाँ संक्षेप में इँगलैंड की कुछ परोपकारिणी संस्थाओं का विवरण और कार्य-प्रणाली दे देना चाहते हैं, जिससे हमारे पाठकों और पाठिकाओं को अपना कर्तव्य निश्चित करने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। सौभाग्यवश हमें अपने देशवासियों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि परोपकार और लोक-सेवा करने से कितना अधिक पुण्य होता है। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में परोपकार और लोक-सेवा का बहुत अधिक महत्त्व बतलाया गया है, और उसके द्वारा होनेवाले पुण्यफलों का

बहुत कुछ वर्णन किया है। हमारे यहाँ के प्राचीन आचार्य और शास्त्रकार बहुत ही दूरदर्शी एवं सूक्ष्मदर्शी थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि इस प्रकार के कामों में कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसीलिये उन्होंने महाभारत के शांति-पर्व में एक स्थान पर कहा है कि परोपकार या दान करने के समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि हमें दान कभी ऐसे व्यक्ति को न देना चाहिए, जो उसका पात्र न हो; और दूसरी यह कि जो व्यक्ति उस दान का पात्र हो, वह उससे वंचित न रह जाय। यदि संगठित रूप से और संस्थाएँ आदि स्थापित करके इस प्रकार के परोपकार और दान के काम किए जायँ, तो हम ऊपर लिखी दोनों कठिनाइयों से बहुत कुछ बच सकते हैं।

अँगरेज़ स्त्रियों ने अपने देश में परोपकार-संबंधी जो बड़े-बड़े काम किए हैं, उनका वर्णन करने के पहले हम संक्षेप में उनके एक ऐसे काम का वर्णन कर देना चाहते हैं, जिसे उन लोगों ने हमारे देश भारतवर्ष में किया है। सन् १८८५ में भारत के बड़े लाट लार्ड डफ़रिन की धर्मशीला पत्नी श्रीमती लेडी डफ़रिन ने अपने नाम से एक कोष स्थापित किया था। इस कोष के स्थापित करने में उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि भारतवर्ष की स्त्रियों को चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा दी जाय, और उनके द्वारा भारतीय स्त्रियों की चिकित्सा आदि का विशिष्ट रूप से प्रबंध किया जाय। तबसे अब तक भारत में जितने बड़े लाट आए

हैं, प्रायः उन सभी की स्त्रियों ने इस फंड की वृद्धि करने और उसके उद्देश्य की पूर्ति करने में बहुत कुछ सहायता दी है। इसी फंड की बदौलत भारत की बहुत-सी स्त्रियाँ डॉक्टरी और दाई आदि का काम सीखकर भारतीय स्त्रियों की बहुत अच्छी सेवा कर रही हैं। इसी प्रकार की या इससे कुछ मिलती-जुलती संस्थाएँ लेडी कर्ज़न और लेडी मिंटो भी स्थापित कर गई हैं, और वे संस्थाएँ भी बहुत अच्छा काम कर रही हैं। पहले परदे में रहनेवाली अनेक भारतीय स्त्रियाँ चिकित्सा आदि की उचित व्यवस्था न होने के कारण प्रसूतिकागार में ही मर जाया करती थीं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के और भी अनेक ऐसे रोग होते हैं, जिनमें वे पुरुष-डॉक्टरों से परामर्श नहीं ले सकतीं, और उनकी चिकित्सा नहीं कर सकतीं। ऐसे रोगों के कारण भी बहुत-सी स्त्रियों की अकाल-मृत्यु हो जाया करती थी। पर अब इन कतिपय फंडों के स्थापित हो जाने से बहुत-सी स्त्रियाँ डॉक्टरी और दाई का काम सीखकर भारतीय स्त्रियों की बहुत अच्छी सहायता कर रही हैं। क्या यह कुछ कम या साधारण उपकार का काम है?

इँगलैंड में वहाँ की स्त्रियों ने अनेक ऐसी बड़ी-बड़ी परोपकारिणी संस्थाएँ खोल रक्खी हैं, जिनसे सर्व-साधारण का सदा बहुत अधिक उपकार होता रहता है। उनमें जो सबसे बड़ी संस्था है, उसका नाम है "चैरिटी आर्गेनिज़ेशन सोसाइटी"। यद्यपि इस संस्था के संचालकों में स्त्रियाँ और पुरुष,

दोना ही हैं, तथापि स्त्रियों की संस्था अपेक्षा-कृत बहुत अधिक है। यदि यह कहा जाय कि उस संस्था का संचालन मुख्यतः स्त्रियों के ही द्वारा होता है, तो कुछ अनुचित न होगा। इस संस्था के द्वारा अनेक प्रकार के परोपकार के काम होते हैं। इसका केंद्र लंदन में है, और शाखाएँ प्रायः सभी बड़े-बड़े नगरों में स्थापित हैं। इन शाखाओं की व्यवस्था स्थानिक सभाएँ या कमेटियाँ करती हैं और उन सबका निरीक्षण करने के लिये एक प्रधान कौंसिल है। यही कौंसिल इस बात का निर्णय करती है कि परोपकार के कौन-कौन से काम हाथ में लिए जायँ, और किन-किन रूपों में दान आदि किया जाय। जो परोपकारिणी संस्थाएँ इस सोसाइटी से संबद्ध नहीं होतीं, उन्हें भी यह यथासाध्य अपने में सम्मिलित करने का उद्योग करती है। जब कभी कोई विशिष्ट प्रश्न सोसाइटी के सम्मुख उपस्थित होता है, तब वह उस पर विचार करने के लिये चुने हुए लोगों की ख़ास-ख़ास कमेटियाँ नियुक्त करती है, जो उन विषयों पर विचार करके, अपनी सूचनाएँ सोसाइटी के सम्मुख उपस्थित करती हैं। वह अंधों, बहरों और गूँगों आदि की शिक्षा तथा निर्वाह आदि की व्यवस्था करती है, ग़रीबों के रहने के लिये मकान आदि बनवाती और पहले के बने हुए मकानों में अनेक प्रकार के उपयोगी सुधार करती है, तथा सर्व-साधारण को समय-समय पर यह बतलाती रहती है कि वे इस सोसाइटी के कामों और दानों से किस प्रकार लाभ

उठा सकते हैं। बहुत-से ग़रीब ऐसे हुआ करते हैं, जो अनेक कारणों से इस सोसाइटी के ख़ैरातख़ानों में नहीं जा सकते और दानशील बड़े आदमियों के पास पत्र आदि लिखकर अथवा और किसी प्रकार से प्रार्थनाएँ करके भिक्षा-स्वरूप उनसे धन या और किसी प्रकार की सहायता माँगा करते हैं। यह सोसाइटी ऐसे लोगों की भी ख़बर रक्खा करती है, और उनकी परिस्थिति आदि का विचार करके, उनकी उचित सहायता करती है। जो लोग निजी रूप से कुछ दान करना चाहते हैं, उनके दान की भी यह सोसाइटी यथोचित व्यवस्था करती है। यह सोसाइटी इस बात का सदा पूरा-पूरा ध्यान रखती है कि दान केवल सत्पात्रों को ही मिले, और उससे आलसी या निकम्मे लोग लाभ न उठा सकें। जो दीन-दुःखी किसी प्रकार का काम करने के योग्य होते हैं, उनकी अच्छी और स्थायी जीविका लगा देने का भी यह सोसाइटी प्रबंध करती है। तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति जिस योग्य होता है, उसकी वैसी ही सहायता की जाती है। जो धन इस संस्था के द्वारा दान किया जाता है, उसका सदा बहुत ही अच्छा उपयोग होता है, और उसकी एक कौड़ी भी अयोग्य या कुपात्र के हाथ में नहीं जाने पाती। जिन लोगों का चालचलन ख़राब होता है, उन्हें इस सोसाइटी से कभी कोई सहायता नहीं दी जाती। बहुत-से लोगों को थोड़ी-थोड़ी और अधूरी सहायता देने की अपेक्षा थोड़े लोगों को पूरी-पूरी सहायता देने की ओर

इस सोसाइटी का विशेष ध्यान रहता है। एक ओर सोसाइटी निर्धनों की निर्धनता और कष्ट दूर करने का उपाय करती है, और दूसरी ओर धनवानों को मितव्ययी तथा दानी बनाती है।

भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ आए दिन अकाल, बाढ़ और महामारी आदि का प्रकोप होता ही रहता है। इन सबके कारण ज़िले-के-ज़िले और कभी-कभी प्रांत-के-प्रांत पीड़ित होते हैं। ऐसे देश में इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि कोई ऐसी सार्वजनिक संस्था हो, जो कठिन अवसर पड़ने पर लोगों की सहायता किया करे। यद्यपि इस समय देश में अनेक ऐसी संस्थाएँ बन गई हैं, जो सर्व-साधारण से दान लेकर अकाल और बाढ़ आदि से पीड़ित प्रजा की सहायता करती अथवा प्लेग या हैज़ा आदि फैलने पर लोगों को सहायता पहुँचाती हैं, तथापि हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वे इतनी थोड़ी हैं कि दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित करके लोक-सेवा करने का रवाज़ अभी बहुत हाल में इस देश के लोगों में फैला है; दूसरे, अभी तक लोगों ने ऐसी संस्थाओं को मुक्तहस्त होकर दान देना नहीं सीखा है। और तीसरे, अभी हमारे यहाँ इस प्रकार के काम करनेवालों की संख्या भी बहुत थोड़ी है। इस देश के निवासी दान देना तो जानते हैं, पर ठीक तरह से दान देना नहीं जानते। वे प्रायः धार्मिक दृष्टि से ही दान देते हैं, शुद्ध परोपकार दृष्टि से दान देना नहीं जानते। जिस समय माननीय

पंडित मदनमोहनजी मालवीय हिंदू-विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिये चारों ओर घूम-घूमकर चंदा एकत्र कर रहे थे, उस समय वह एक बार एक रानी के पास पहुँचे, जो अपनी दानशीलता के लिये बहुत कुछ प्रसिद्ध थीं। जब रानी साहबा को पंडितजी के आने का उद्देश्य मालूम हुआ, तब उन्होंने अपने यहाँ के पंडितों से पूछा कि क्या हमारे यहाँ के शास्त्रों में इस प्रकार के दान की कोई व्यवस्था या माहात्म्य आदि मिलता है? स्वार्थी पंडितों ने सोच-विचारकर साफ़ कह दिया कि इस प्रकार के दान की हमारे शास्त्रों में कोई व्यवस्था नहीं है। परिणाम यह हुआ कि मालवीयजी को वहाँ से कुछ भी न मिला। कहने का मतलब यह कि हमारे यहाँ के लोग दान का वास्तविक उद्देश्य और स्वरूप बिलकुल भूल गए हैं, और केवल पुरानी लकीर पीटने में ही लगे हुए हैं। स्वर्गीय महात्मा रामकृष्ण परमहंस का स्थापित किया हुआ रामकृष्ण-मिशन कितने स्थानों में और कितना अधिक उपयोगी काम कर रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। परंतु फिर भी उसे क्या उतनी सहायता मिलती है, जितनी इतने बड़े देश में इतनी अच्छी संस्था को मिलनी चाहिए? कदापि नहीं। हमारे यहाँ दान तो इतना अधिक होता है कि यदि सब एकत्र किया जाय, तो सैकड़ों-हज़ारों रामकृष्ण-मिशन बहुत अच्छी तरह से चल सकते हैं, और इस समय जितना काम एक मिशन कर रहा है, उससे कहीं अधिक काम प्रत्येक मिशन कर सकता है। पर अवस्था यह है

कि धन के अभाव के कारण यह एक ही मिशन ठीक-ठीक और पूरा-पूरा काम नहीं करने पाता। यह हमारे देश के पुरुषों और स्त्रियों, दोनों के लिये कितनी अधिक लज्जा की बात है!

हमारे यहाँ के दान का बहुत बड़ा अंश हमारे यहाँ की स्त्रियों के ही हाथ में है। पर जब पुरुष ही दान का ठीक-ठीक स्वरूप और महत्व नहीं समझते, तो फिर स्त्रियों को इसके लिये दोषी ठहराना तो एक प्रकार से अन्याय ही है। हाँ, इस ओर उन लोगों का ध्यान आकृष्ट करना प्रत्येक समझदार का परम कर्तव्य है। हमारे यहाँ की व्यवस्था ही ऐसी है कि प्रत्येक गृहस्थ सदा कुछ-न-कुछ दान करता ही रहता है। पर वह दान प्रायः आँखें बंद करके किया जाता है, और उसके बहुत बड़े अंश का प्रायः दुरुपयोग ही होता है। इस दान का बहुत बड़ा अंश स्त्रियों के हाथ से भी निकलता है। इसलिये हम चाहते हैं कि हमारे देश की स्त्रियाँ इस विषय में सतर्क हो जायँ, और इस ढंग से दान करें कि उसका अधिक-से-अधिक सदुपयोग हो, उससे सचमुच दीनों और दुखियों का कष्ट दूर हो। दाता के कर्तव्य की इतिश्री दान देने-मात्र से ही नहीं हो जाती। दान तो सभी लोग कर सकते और करते ही हैं; पर यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो उसका अधिकांश ऐसा ही होता है, जिसे हम दान नहीं कह सकते। वास्तव में दान वह तभी कहलावेगा, जब उसके द्वारा किसी दीन-दुःखी या पीड़ित का कोई कष्ट दूर होगा, अथवा उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति होगी। जिस समय हम

दान करें, उस समय हमें यह भी अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि उसका ठीक-ठीक उपयोग होता है, या नहीं। बहुत-सी स्त्रियाँ लाख-दो लाख या दस लाख बत्तियाँ जलाया करती हैं, और समझती हैं कि हमने बड़ा भारी दान किया, और बहुत पुण्य लूटा। उन बत्तियों के तैयार करने में उन्हें महीनों का समय गलता है, सेरों रूई ख़र्च होती है, और उन्हें जलाने के समय सेरों घी लगता है। पर यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो इसमें समय, रूई, घी और परिश्रम, सभी का दुरुपयोग और नाश ही होता है। जितने समय में ये बत्तियाँ तैयार होती हैं, उतने समय में दूसरे बहुत-से अच्छे और उपयोगी काम किए जा सकते हैं। जितनी रूई इन बत्तियों के तैयार करने में लगती है, उतनी रूई से और उतने ही समय में अच्छा सूत काता जा सकता है। और, जितने का घी उन बत्तियों के जलाने में लगता होता है, उतने में उस सूत से एक अच्छा वस्त्र बुनवाया जा सकता है। बरसात के दिनों में इस प्रकार का परिश्रम और धन व्यय करके प्रत्येक स्त्री एक या दो अच्छी चादरें तैयार कर सकती है, और जाड़ा आने पर किसी दीन विधवा या अनाथ को देकर अपने परिश्रम और धन का बहुत अच्छा उपयोग कर सकती है। जितनी देर तक बैठकर शालग्राम पर या गंगा में चढ़ाने के लिये तुलसी की लाख-दो-लाख पत्तियाँ गिनी जाती हैं, उतनी देर में पास-पड़ोस का वृद्धा और रोगी स्त्रियों की अच्छी सेवा-सुश्रूषा की जा सकती है। यदि हम कोई अच्छी

रक़म नहीं दान कर सकते, तो कम-से-कम अपने शरीर से तो दूसरों को अनेक प्रकार के लाभ पहुँचा सकते हैं। लोगों को हम यह तो बतला सकते हैं कि अमुक कार्य करने से तुम्हारा अमुक कष्ट दूर होगा, अमुक प्रकार रहने से तुम्हें यह सुख होगा। इत्यादि। और, हमारा यह कार्य हमारे दस-पाँच रुपए दान करने की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम एवं उपयोगी होगा। जो स्त्रियाँ अपने घर में खाने-पहनने से सुखी हों, वे अपने गाँव या महल्ले में घूमकर दुःखी गृहस्थों की अनेक प्रकार से सेवा और सहायता कर सकती हैं। जो स्त्रियाँ घर-गृहस्थी का ठीक-ठीक प्रबंध करना न जानती हों, उन्हें वे गृह-प्रबंध की शिक्षा दे सकती हैं: जो स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से अपरिचित हों, उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा के नियम बतला सकती हैं; और जो स्त्रियाँ अप-व्यय करती हों, उन्हें मितव्ययी होने की शिक्षा दे सकती हैं। यदि वे किसी प्रकार प्रारंभिक चिकित्सा की कुछ मोटी-मोटी बातें सीख लें, तो समय पर रोगियों की भी बहुत कुछ सेवा और उपकार कर सकती हैं।

दो-चार मोटी बातें ही लीजिए। शहरों में प्रायः स्त्रियाँ अपने घर की खिड़कियों से ही बाहर गली या सड़क में कूड़ा फेंक देती हैं; और गाँवों में प्रायः अपने आँगन में ही अथवा ठीक दरवाज़े पर ही कूड़े का ढेर लगा देती हैं। समझदार स्त्रियों का यह कर्तव्य है कि जाकर उन्हें यह बात समझावें कि इस प्रकार कूड़ा फेंकने से एक तो बदबू और उसके परिणाम-

स्वरूप अनेक प्रकार के रोग फैलते हैं। दूसरे उसके कारण बाहर से चूहे आदि आकर घर में एकत्र होते हैं, जो बहुत-सी चीज़ों का नुक़सान करते हैं। जितनी उत्तमता से समझदार स्त्रियाँ यह काम कर सकती हैं, उतनी उत्तमता से और कोई कर ही नहीं सकता। इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो अपना अधिकांश समय या तो व्यर्थ की बकबक-झकझक में और या लड़ाई-झगड़े में बिताया करती हैं। उन्हें लोक-सेवा के कार्यों का महत्व बतलाना चाहिए, और जहाँ तक हो सके, उनसे थोड़ा बहुत काम लेना चाहिए। जब एक बार उन्हें यह विदित हो जायगा कि परोपकार से कितना अधिक और कैसा अच्छा सुख मिलता है, तब वे आप-से-आप उस काम में लग जायँगी, और दूसरी अनेक स्त्रियों को भी लगा देंगी। यदि कोई समझदार और चतुर स्त्री नित्य घंटे-दो घंटे का समय लगाकर पास-पड़ोस की स्त्रियों को बच्चों के कपड़े सीना या मोज़े, गुलूबंद आदि बुनना सिखलाया करे, तो उससे दूसरों का कितना अधिक उपकार और बचत हो। इस देश में शिशुओं की मृत्यु बहुत अधिक हुआ करती है, और अनेक अवस्थाओं में प्रायः माताओं की अज्ञानता के ही कारण। अतः कुछ उपयोगी बातें बतलाकर और उनकी वह अज्ञानता दूर करके समाज का जितना अधिक उपकार किया जा सकता है, उतना आँखें बंद करके सैकड़ों-हज़ारों रुपए दान करने से भी नहीं हो सकता। दस-पाँच निकम्मे, आलसी और पेट-भरे लोगों को

भोजन कराने की अपेक्षा एक-दो दीनों की जीविका की व्यवस्था कर देना अथवा रोगियों को नीरोग कर देना कहीं अधिक पुण्य का काम है।

इँगलैंड में इसी प्रकार सैकड़ों-हज़ारों मादक-द्रव्य-निवारिणी सभाएँ हैं, जिनका अधिकांश कार्य वहाँ की स्त्रियाँ ही करती हैं। वे प्रायः अनेक प्रकार के छोटे-छोटे विज्ञापन और पुस्तिकाएँ आदि प्रकाशित करके लोगों को मादक-द्रव्यों के अवगुण और दोष बतलाती हैं, और उनके सेवन का निषेध करती हैं। वे समाचारपत्रों में इस संबंध के लेख लिखती हैं, और सभाएँ करके उनमें व्याख्यान देती हैं। विशेषतः स्कूलों आदि में जाकर वे वहाँ छोटे-छोटे बच्चों को मद्य-पान आदि के दोष बतलाती हैं, जिसके कारण वे बड़े होने पर इस प्रकार के दुर्व्यसनों से बचे रहते हैं। वे स्त्रियों को शराबख़ानों में नौकरी करने से भी रोकती हैं। मादक-द्रव्यों का निषेध करनेवाली वहाँ की सबसे बड़ी संस्था का नाम बैंड आफ़् होप (Band of Hope) है, और उसका संस्थापन वहाँ की एक महिला ही ने किया था। इस समय उस संस्था की सैकड़ों शाखाएँ सारे इँगलैंड में फैली हुई हैं। यद्यपि हमारे देश में इस प्रकार के कामों में स्त्रियों के लिये बहुत कम गुंजाइश है, तथापि ये बातें हम यहाँ इसलिये कहते हैं, जिससे लोगों को यह बात मालूम हो जाय कि स्त्रियों के करने-योग्य परोपकार के कितने प्रकार के काम हो सकते हैं, और हैं।

आजकल इँगलैंड की स्त्रियों ने एक और प्रकार के काम की ओर विशेष ध्यान दिया है। वे ग़रीब मज़दूरों और विशेषतः मज़दूरनियों के रहने के मकानों में बहुत कुछ सुधार कर रही हैं। यह एक ऐसा काम है, जिसमें भारतवर्ष की स्त्रियाँ भी बहुत कुछ सहायता कर सकती हैं। वहाँ बहुत-सी ऐसी ग़रीब स्त्रियाँ होती हैं, जिनके पास रहने के लिये कोई मकान नहीं होता, और जो केवल इसी कारण अनाचार में प्रवृत्त हो जाती हैं। इसलिये वहाँ की स्त्रियों ने एक बहुत बड़ी संस्था स्थापित की है, जो ग़रीब मज़दूरनियों आदि के लिये अच्छे-अच्छे मकान बनवा देती और उन्हें बहुत ही थोड़े किराए पर रहने के लिये देती है। उस संस्था में काम करनेवाली स्त्रियों ने यह बात बहुत अच्छी तरह समझ ली है कि स्त्रियों को पापाचार में प्रवृत्त होने से पहले ही बचाने का पूरा-पूरा उद्योग कर लेना बहुत अच्छा है; क्योंकि जब एक बार वे पाप-कर्म में प्रवृत होे जाती हैं, तब फिर उनका सुधार करना बहुत ही कठिन हो जाता है। अब वहाँ प्रायः सभी नगरों में बहुत-से ऐसे मकान बन गए हैं, जिनमें ग़रीब स्त्रियाँ अकेली और बहुत ही थोड़े किराए में रह सकती हैं। बहुत-से मकान तो ऐसे भी हैं, जिनका कोई किराया ही नहीं लिया जाता। और, कुछ मकानों में तो उन्हें भोजन तक मुफ़्त मिलता है। इसी प्रकार कुछ मकान ऐसे भी हैं, जिनमें केवल अपाहिज स्त्रियाँ भरती की जाती हैं, और यथासाध्य उनकी चिकित्सा आदि की भी व्यवस्था की

जाती है। कुछ मकान ऐसे हैं, जिनमें केवल असाध्य रोगों से पीड़ित स्त्रियाँ जाती हैं। उनमें प्रायः मरणासन्न दरिद्र स्त्रियाँ जाकर रहती हैं। वहाँ मरते दम तक उनकी बहुत अच्छी चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा होती है। परिणाम इसका यह होता है कि बहुत-सी स्त्रियाँ मृत्यु-मुख में जाने से बच जाती हैं। सुंदरलैंड की डचेज़ की स्थापित की हुई एक संस्था ऐसी है, जिसमें लँगड़े, लूले और अपाहिज लोग भरती किए जाते हैं। और, मज़ा यह कि उनसे भी उनकी शक्ति तथा योग्यता के अनुसार ऐसे-ऐसे काम लिए जाते हैं, जिन्हें वे बहुत सहज में और प्रसन्नता-पूर्वक करते हैं। बहुत-से अपाहिज लोग, जो पहले कोई काम नहीं कर सकते थे, वहाँ रहकर कई प्रकार के शिल्प सीख लेते हैं, और वहाँ से निकलकर अपने घर चले जाते और अपना काम करके निर्वाह करते हैं। ये अपाहिज अच्छी और सुंदर चीज़ें तैयार करते हैं, जिन्हें देखकर लोग दंग रह जाते हैं, और उनकी तथा उनके शिक्षकों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उनके द्वारा लोगों को हाथ की बनी हुई बहुत बढ़िया-बढ़िया चीज़ें किफ़ायत से मिलती हैं। बहुत-से लोग उन चीज़ों को यह समझकर बड़े शौक़ से खरीदते हैं कि इसमें कुछ परोपकार भी होता है। इसी प्रकार अपाहिज बच्चों के लिये अलग संस्थाएँ हैं, जिनमें रहनेवाले बालकों की शिल्प-निपुणता देखकर चकित रह जाना पड़ता है, और उन संस्थाओं के संचालकों के प्रति कृतज्ञता से हृदय गद्गद हो जाता है।

इसी प्रकार की एक और संस्था है, जो उन छोटे-छोटे शिशुओं की देखरेख करती है, जिनकी माताएँ रोटी कमाने के लिये दूसरे स्थानों में चली जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जिनकी गोद में साल-छः महीने का बच्चा होता है। यदि वे उस बच्चे के कारण काम पर न जायँ, तो उनके भूखों मरने की नौबत आती है। इसलिये वहाँ कारख़ानों आदि के पास कुछ ऐसे मकान बने होते हैं, जिनमें ऐसी स्त्रियाँ काम पर जाने के समय गोद के बालक को छोड़ जाती हैं, और जब काम पर से लौटती हैं, तब उसे लेकर घर चली आती हैं। वहाँ उन बच्चों के खेलने, सोने और खाने-पीने की ऐसी सुंदर व्यवस्था रहती है, जैसी अच्छे-अच्छे घरों में भी नहीं होती। बहुत छोटे और दूध-पीते बच्चों के लिये एक अलग विभाग होता है, और कुछ सयाने बच्चों के लिये अलग। पर ऐसे स्थानों में केवल काम पर जानेवाली ग़रीब मज़दूरनियाँ आदि ही अपने बच्चे छोड़ सकती हैं। निकम्मी, आलसी और सुस्त स्त्रियाँ, बच्चों से जान छुड़ाने के लिये, उन्हें वहाँ जाकर नहीं छोड़ सकतीं। इनमें रहनेवाले बच्चों को ऐसी अच्छी शिक्षा मिलती है कि उनका जीवन बहुत अच्छा बन जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्त्रियों को यहाँ दायागीरी और बच्चे खेलाने का काम भी सिखलाया जाता है। तात्पर्य यह कि ऐसी संस्थाएँ एक नहीं, अनेक प्रकार से देश और समाज की सेवा करती हैं। और, ये सब काम केवल स्त्रियों के ही धन, परिश्रम और मस्तिष्क से होते हैं।

इसी प्रकार की एक और संस्था है, जिसमें अपाहिजों, क़ैदियों और पागलों आदि के बालक रक्खे और सिखाए-पढ़ाए जाते हैं। ऐसी संस्थाएँ अपने मकान बनवाकर तो उनमें ऐसे बालक रखती ही हैं; साथ ही उनमें काम करनेवाली स्त्रियों में कुछ ऐसी भी होती हैं, जो भले आदमियों के घरों में जाकर उनसे एक-दो बालकों को अपने यहाँ रख लेने की प्रार्थना करती हैं। बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जिनके यहाँ कोई बाल-बच्चा नहीं होता, और जो बहुत प्रसन्नता से एक-दो बालकों को अपने यहाँ रखने के लिये तैयार हो जाते हैं। यदि कोई आदमी एक-दो बालक रखने के लिये तैयार होता है, पर धनाभाव से उसका ख़र्च नहीं उठा सकता, तो संस्था उसे साप्ताहिक या मासिक थोड़ी बहुत सहायता भी देती है। संस्था में काम करनेवाली स्त्रियाँ घर-घर घूमकर इस बात का भी पता लगाया करती हैं कि कौन-सा बालक ऐसा है, जिसका किसी कारण-वश उसके माता-पिता के यहाँ निर्वाह नहीं हो सकता; और तब उन बालकों को ढूँढ़-ढूँढ़कर उनके खाने-पीने और रहने आदि की व्यवस्था करती हैं। किंतु यह संस्था अनाथ बालकों को एक बार किसी गृहस्थ के सिपुर्द करके ही अपने कर्तव्य का अंत नहीं मान बैठती। वह निरीक्षण-कार्य के लिये कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी नियुक्त करती है, जो समय-समय पर लोगों के घर जाकर यह देखती हैं कि बालक अच्छी तरह रक्खा तो जाता है, उसकी शिक्षा आदि की ठीक-ठाक व्यवस्था तो होती है, वह रोगी तो नहीं है,

उसे किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं पहुँचाया जाता। इत्यादि। मतलब यह कि यह संस्था लड़कों को बहुत अच्छी तरह रखने के लिये पूरी तरह से ज़िम्मेदार होती है। इसी तरह कुछ संस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनका बहुत कुछ काम इसी तरह के सयाने अनाथ बालकों से लिया जाता है। वे अपनी संस्था के लिये घूम-घूमकर चंदा एकत्र करती हैं, बालकों को ढूँढ़ती हैं, उन्हें अपनी संस्था में लाकर उनके रहने-सहने की व्यवस्था करती हैं, और इस प्रकार आरंभ से परोपकार की शिक्षा पाती हैं। इसी प्रकार के बालकों की कुछ संस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जो बालकों पर होनेवाले अत्याचारों को रोकती और उन्हें सन्मार्ग पर लाने का यत्न करती हैं। जो लड़कियाँ या लड़के बहुत अधिक दुष्ट और पाजी हुआ करते हैं, और जो दिन-रात अपने पाजीपन के कारण मार खाया करते हैं, उन्हें मार-पीट से बचाकर, ठीक मार्ग पर लाने में भी ये संस्थाएँ बहुत सहायक हुआ करती हैं।

प्रायः सभी देशों में भले घर की कुछ स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी, जो किसी कारण-वश बहुत ही दरिद्रावस्था को पहुँची हुई होंगी, और जिनकी जीविका का कोई ठिकाना न होगा। विशेषतः हमारे भारतवर्ष में तो इस प्रकार की स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है। एक तो हमारा देश यों ही बहुत अधिक दरिद्र है, दूसरे हमारे यहाँ की स्त्रियों को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती। इसी के परिणाम-स्वरूप हमारे यहाँ असहाय और दीन विधवाओं

की संख्या बहुत अधिक है। बहुत-से घर ऐसे होते हैं, जिनमें कमानेवाला तो एक ही होता है, पर खानेवाली स्त्रियाँ तीन-तीन चार-चार हुआ करती हैं। यदि दुर्भाग्य-वश वह कमानेवाला मर गया, तो उस भले घरकी उन अनाथा स्त्रियों की जो दुर्दशा होती है, उसका सहज में वर्णन नहीं हो सकता। वे बेचारी न तो कोई काम जानती हैं, जिससे किसी प्रकार अपना निर्वाह कर सकें, न किसी के यहाँ जाकर मिहनत-मज़दूरी कर सकती हैं, और न किसी के सामने भीख माँगने के लिये हाथ ही फैला सकती हैं। यदि वे कोई छोटा-मोटा काम करती भी हैं, तो उससे उन्हें इतनी थोड़ी आय होती है कि किसी प्रकार निर्वाह ही नहीं हो सकता। यदि ऐसी स्त्रियों में एक-दो स्त्रियाँ वृद्धा हुईं, जैसा कि प्रायः हुआ ही करता है, तो उनकी दुर्दशा और भी बढ़ जाती है। यदि हमारे पाठक और पाठिकाएँ ध्यान-पूर्वक देखें, तो उन्हें अपने पास-पड़ोस और मुहल्ले-टोले में ही ऐसे कई घर मिलेंगे, जिनमें कमानेवाला एक भी नहीं होगा, और जिनकी स्त्रियाँ अपनी प्रतिष्ठा के विचार से किसी से अपना भीषण कष्ट कह तक न सकेंगी। इसमें संदेह नहीं कि हमारे देश में कुछ संपन्न लोग ऐसे होते हैं, जो भले घर की अनाथ स्त्रियों को बहुत ही छिपे तौर से थोड़ा बहुत आर्थिक सहायता दिया करते हैं; पर ऐसे परोपकारियों और दानियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। और, इस प्रकार की सहायता करने के लिये कोई संगठित उद्योग तो कहीं देखने में ही नहीं आता।

पर यह परोपकार का काम इतने अधिक महत्व का है कि इसके सामने परोपकार के और बहुत-से काम दब जाते हैं। अतः हम लोगों को ऐसे कामों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक बिरादरी के धनी-मानी लोगों को मिलकर अपनी-अपनी बिरादरी के लिये एक ऐसी संस्था स्थापित करनी चाहिए, जो प्रतिष्ठित कुटुंब की अनाथ स्त्रियों की उचित सहायता किया करे। बिरादरी की संस्था हम इसलिये नहीं बतलाते कि एक बिरादरी के लोगों को दूसरी बिरादरी की स्त्रियों की सहायता नहीं करनी चाहिए, बल्कि इसलिये कि एक तो अपनी बिरादरी की ऐसी स्त्रियों का लोगों को सहज में पता चल सकता है, और दूसरे ऐसी अनाथ स्त्रियाँ ग़ैर-बिरादरीवालों से सहायता लेने के लिये जल्दी तैयार भी नहीं होंगी। ऐसे कामों की व्यवस्था स्त्रियों के द्वारा बहुत अच्छी तरह हो सकती है। पुरुषों को इसमें केवल धन की सहायता करनी चाहिए, और थोड़ा बहुत ऊपरी प्रबंध कर देना चाहिए। शेष सब काम स्त्रियों पर ही छोड़ देना चाहिए। वे सत्पात्र अनाथ स्त्रियों को भली भाँति जानती भी होंगी ; उन्हें ढूँढ भी सकेंगी, और उनसे मिलकर उनके कष्ट भी बहुत अच्छी तरह जान सकेंगी। स्त्रियों के सामने ही स्त्रियाँ अपने हृदय की व्यथा अच्छी तरह कह सकती हैं, और स्त्रियाँ ही अच्छी तरह उस व्यथा को समझ भी सकती हैं। पुरुषों के सामने तो जल्दी आना भी वे पसंद न करेंगी।

पाश्चात्य देशों में भी, जहाँ परदे की प्रथा नहीं है, इस प्रकार के काम बहुधा स्त्रियाँ ही करती हैं। वहाँ स्त्रियों ारा स्थापित तथा संचालित अनेक ऐसी संस्थाएँ हैं, जो दीन और अनाथ स्त्रियों के निर्वाह का अनेक प्रकार से उपाय करती हैं। उनमें जो बहुत ही वृद्धा होती हैं, और कोई काम नहीं कर सकतीं, उन्हें एक स्थान पर रख दिया जाता है, और उनके भोजन-वस्त्र आदि की उपयुक्त व्यवस्था कर दी जाती है। जो स्त्रियाँ उन सार्वजनिक आश्रमों में जाकर रहना नहीं पसंद करतीं, उनके व्यय के लिये कुछ धन, निश्चित समय पर, उनके घर भेज दिया जाता है। और, जो स्त्रियाँ सशक्त तथा काम करने में समर्थ होती हैं, उन्हें ऐसे शिल्पों में लगा दिया जाता है, जिनसे उनका निर्वाह बहुत अच्छी तरह होता रहता है। ऐसी स्त्रियों के लिये जो आश्रम खोले जाते हैं, उनमें भोजन, वस्त्र और रहने आदि की व्यवस्था इसलिये बहुत अच्छी होती है कि उनमें भले, पर बिगड़े हुए, घरों की स्त्रियाँ ही आकर रहती हैं; क्योंकि जो स्त्रियाँ अपने जीवन का कुछ अथवा बहुत बड़ा अंश बहुत अच्छी तरह और सुख-पूर्वक बिता चुकी होती हैं, उनके लिये कष्टपूर्ण जीवन-निर्वाह करना बहुत ही कठिन हुआ करता है। ये संस्थाएँ अपने आश्रमों का जो कुछ प्रबंध करती हैं, वह इन सब बातों का अच्छी तरह विचार करके ही; क्योंकि यदि इन सब बातों का विचार न किया जाय, तो संस्था किसी प्रकार चल ही नहीं सकती। हमारे देश में आश्रमवाली व्यवस्था में तो कम सफ-

लता की संभावना है। हाँ, यदि भले घर को स्त्रियों को घर-बैठे ही अच्छा और उपयुक्त काम अथवा सहायता पहुँचाई जा सके, तो अवश्य ही उसमें अच्छी सफलता हो सकती है, और वास्तविक अर्थ में बहुत अच्छा उपकार भी हो सकता है।

अंधों के लिये भी इँगलैंड की स्त्रियाँ बहुत अधिक और बहुत अच्छा काम करती हैं। वहाँ एक ऐसी संस्था है, जो अंधों को पेंशन देती है, अंधों की शिक्षा के लिये स्कूल आदि स्थापित करनेवालों को बड़ी रक़में सहायता रूप में देती है, उन्हें अनेक प्रकार के शिल्पों की शिक्षा देती और उनके तैयार किए हुए माल को ख़रीदकर बेचती है। कुछ कार्य, पेशे और बीमारियाँ आदि ऐसी होती हैं, जिनमें लोगों के जल्दी अंधे होने की संभावना रहती है। यह संस्था ऐसा साहित्य भी प्रकाशित करती है, जो लोगों को ऐसे कामों और बीमारियों आदि से सचेत कर देता है, और इस प्रकार उनके अंधे होने की संभावना भी कम कर देता है। उभरे हुए अक्षरों की सहायता से अंधों को पढ़ना भी सिखलाया जाता है, और ऐसे पुस्तकालय स्थापित किए जाते हैं, जिनमें केवल अंधों के पढ़ने-योग्य पुस्तकें संगृहीत होती हैं। इन पुस्तकालयों से दूसरे भी लाभ उठाते हैं। अंधों की सभाएँ भी की जाती हैं, और उनके मनोरंजन की भी व्यवस्था की जाती है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो अंधी स्त्रियों के घर जाकर उन्हें मोज़े, गुलूबंद आदि बुनना सिखलाती हैं, और उनकी तैयार की हुई चीज़ों की बिक्री का प्रबंध कर

देती हैं। इसी प्रकार की संस्थाएँ गूँगों और बहरों के लिये भी होती हैं, जो उन्हें शिक्षा देकर जीविका उपार्जित करने के योग्य बनाती हैं। इस प्रकार की प्रायः सभी संस्थाओं का अधिकांश कार्य प्रायः वहाँ की स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुषों से उन्हें केवल धन की सहायता और परामर्श ही मिलता है। तो भी बहुत-सी अवस्थाओं में तो वे धन भी स्वयं ही एकत्र कर लेती हैं, और व्यवस्था भी प्रायः अपने ही विचार से करती हैं।

ग्यारहवाँ प्रकरण

मितव्यय

एक बहुत बड़े विद्वान् का मत है कि जो आदमी अपनी आमदनी से कम ख़र्च करना जानता है वह मानों पारस-पत्थर पा लेता है। बात भी बिलकुल ठीक है। यदि हमारा ख़र्च हमारी आमदनी से एक पैसा भी अधिक है, तो हम सदा दुःखी रहेंगे; और यदि हम अपनी आमदनी में से एक पैसा भी बचाते और ख़र्च को आमदनी से बढ़ने नहीं देते, तो अवश्य ही हम सदा सुखी रहेंगे। और, आर्थिक विषय में सुखी रहना ही मानों हाथ में पारस-पत्थर रखना है। लेकिन मितव्ययी होना और अपनी आमदनी से ख़र्च कम करना सहज काम नहीं है। इसका एक ही उपाय है, और वह यह कि जहाँ तक हो सके, हम अपनी आवश्यकताएँ कम करें, और अनावश्यक रूप से कभी कुछ व्यय न करें। यदि हम अपना ख़र्च आमदनी से हमेशा कम रक्खेंगे, और सदा कुछ-न-कुछ बचाते रहेंगे, तो वह हमारे नाज़ुक वक्त में काम आवेगा। और, जब हमारे पास सदा थोड़ी बहुत पूँजी बनी रहेगी, तो हर तरह से हमारी उन्नति भी होती रहेगी। हम बराबर सुखी और प्रसन्न रहेंगे,

और अवसर पड़ने पर अपनी आय भी बढ़ा सकेंगे। लेकिन यदि हमारे पास कुछ भी धन न रहे, और हम सदा दरिद्र बने रहें, तो हमें लाचार होकर योग्यता और आवश्यकता से कम वेतन पर भी काम करना पड़ेगा। यों अगर हम रुपए रोज़ की मज़दूरी करते हों, तो ग़रीबी और लाचारी की हालत में हमें आठ-दस या बारह आने रोज़ पर भी काम करने के लिये विवश होना पड़ेगा। अतः आर्थिक दृष्टि से हमारा मितव्ययी होना बहुत ही आवश्यक और साथ ही हमारे लिये परम लाभदायक है।

सन् १६०८ में यहाँ एक फ़ैक्टरी-लेबर-कमीशन (Factory Labour Commission) बैठा था, जिसने यहाँ के कल-कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों की अवस्था पर बहुत अच्छी तरह विचार करके, उनकी उन्नति के कुछ उपाय बतलाए थे। उस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में एक स्थान पर लिखा था—"भारतीय मज़दूरों के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें व्यवस्था-पूर्वक और ठीक ढंग से रहने की शिक्षा दी जाय।......................उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अच्छी तरह यह समझ लें कि किफ़ायत से रहने में क्या-क्या लाभ होते हैं।............भारतवर्ष में और तरह की मज़दूरी करनेवालों की अपेक्षा कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों की आयु भी अधिक होती है, और जीवन भी अधिक सुख-पूर्ण होता है। उन्हें और सब प्रकार के मज़-

दूरों की अपेक्षा कहीं ज़्यादा मज़दूरी मिलती है। पर कुछ तो शराब-ख़ोरी और कुछ तनख़्वाह मिलने के दिन और तरह की फ़िज़ूल-ख़र्ची करने के कारण वे अपने आपको बर्बाद कर देते हैं। यदि ये दोनों बातें न हों, तो भारतवर्ष के मज़दूर औसत दरजे के दूसरे आदमियों की अपेक्षा अधिक संपन्न, अधिक स्वस्थ और अधिक प्रसन्न रहें।"

जो लोग गाँवों में खेती-बारी करते हैं, प्रायः उन्हीं में से कुछ लोग निकलकर कल-कारख़ानों में मज़दूरी करने चले जाते हैं। इन खेती-बारी करनेवालों की दशा पर अँगरेज़ तथा भारतीय, दोनों श्रेणी के विचारशीलों ने बहुत कुछ विचार किया है। स्व० श्रीयुत रमेशचंद्र दत्त ने, सन् १८७४ में, अपने व्यक्ति-गत अनुभव से, अपनी 'पीज़ेंटरी आफ़् बंगाल' (Peasantry of Bengal)-नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा था—

"यह बात एक प्रकार से निश्चित रूप से कही जा सकती है कि बंगाल के कृषक कभी कुछ धन बचाने के उद्देश्य से किसी प्रकार के सुख का त्याग नहीं करते; और इसीलिये जो कुछ वे पाते हैं, तुरंत खा-पका डालते हैं।...............वे लोग सदा दरिद्र बने रहते हैं; उनके पास कुछ भी नहीं रहता। .... यदि ऐसी दशा में वे सदा निर्बल और अकर्मण्य बने रहें, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।"

श्रीयुक्त रमेशचंद्र दत्त के इस कथन का फ़ैक्टरी-कमीशन की

रिपोर्ट के उस अंश से भी समर्थन होता है, जिसे हमने ऊपर उद्धृत किया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अभी तक भारतवासियों ने मितव्ययी बनना नहीं सीखा है। इसलिये इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि लोगों को मितव्ययी होने और कम ख़र्च में अपना निर्वाह करने की शिक्षा दी जाय। और, इस काम के लिये स्त्रियाँ ही अधिक उपयुक्त हो सकती हैं कि वे घर-घर जाकर वहाँ की स्त्रियों को मितव्ययी होने के लाभ बतलावें, और जिन-जिन कामों में साधारणतः स्त्रियाँ धन का बहुत अधिक अपव्यय या दुरुपयोग करती हैं, उन-उन कामों में किफ़ायत करने के ढंग बतलावें। अब तक लोगों को मितव्ययी बनाने के जितने उपाय किए गए हैं, उन सब उपायों में कदाचित् यही उपाय सबसे अच्छा और लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

यह बात ठीक है कि अधिकांश भारतवासी बहुत दरिद्र हैं, और बड़ी कठिनाई से अपना निर्वाह करते हैं। यदि इतने पर भी वे अपने बाल-बच्चों के खाने-पीने में किफ़ायत करें, तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा, और वे तथा बड़े होने पर उनके बाल-बच्चे कमाने-खाने-योग्य भी न रह जायँगे। हम यह बात मानते हैं; पर साथ ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि बहुत-से लोग अवश्य ऐसे होते हैं, जो अच्छी तरह खा-पहनकर भी कुछ-न-कुछ बचा ही सकते हैं; लेकिन वे फिर भी अनेक प्रकार का अपव्यय करते हैं, और जो कुछ वे सहज में बचा सकते हैं,

उसे यों ही नष्ट कर देते हैं, और कठिन समय के लिये कुछ भी नहीं बचा रखते। जिन लोगों को पेट-भर खाने को भी न मिलता हो, उनको मितव्यय का उपदेश देना तो मानों उन्हें चिढ़ाना ही है। पर हाँ, जो लोग सहज में कुछ बचा सकते हैं; पर, फिर भी, अपव्यय के कारण नहीं बचाते, उन्हें मितव्ययी होने की शिक्षा देना बहुत ही आवश्यक और उपयोगी है। धनवान और दरिद्र तो सभी देशों में होते हैं, बल्कि जो देश अधिक संपन्न और धन-वान हैं, उनमें दरिद्रता भी उतनी ही अधिक होती है। इसलिये पाश्चात्य देशों में भी ग़रीबों को मितव्ययी बनाने के अनेक उपाय किए जाते हैं, और उन उपायों से बहुत कुछ लाभ भी होता है। उन उपायों में से कुछ का यहाँ वर्णन करना अनुपयुक्त न होगा।

इँगलैंड में एक प्रकार के बंक स्थापित हैं, जो पेनी-बंक कह-लाते हैं। इन बंकों में बहुत ही ग़रीब लोगों के आने और पैसे तक जमा किए जाते हैं। आने-पैसे जमा करने के लिये जल्दी कोई बंक नहीं जाता। बेचारा ग़रीब यही सोचता है कि ये पैसे घर में पड़े रहेंगे, तो कुछ काम ही आवेंगे। पर ज़रूरी काम आने से पहले ही बिना ज़रूरी कामों में वे ख़र्च हो जाते हैं, और ज़रूरत के वक्त उन लोगों के पास कुछ भी नहीं बच रहता। यही सोचकर इन बंकों के अधिकारियों ने एक ऐसा उपाय निकाला है, जिससे ग़रीबों को अपनी कमाई में से कुछ बचाने का अच्छा अवसर मिले। उन बंकों की ओर से कुछ

ऐसे लोग नियुक्त होते हैं, जो घर-घर जाकर लोगों से कहते हैं कि अगर तुम्हारे पास कुछ पैसे बचे हों, और तुम अपने हिसाब में जमा करना चाहते हो, तो लाओ, हमें दे दो। लोग ख़ुद तो दो-चार पैसे जमा करने के लिये दौड़कर बंक तक जाना पसंद नहीं करते ; पर जब बंक के कर्मचारी स्वयं लेने के लिये आते हैं, तब वे सहर्ष उन्हें कुछ-न-कुछ जमा करने के लिये दे देते हैं, यहाँ तक कि ख़र्च के लिये, आवश्यकता होने पर भी, वे उसमें से कुछ-न-कुछ निकालकर उन्हें दे ही देते हैं, और आप जैसे-तैसे अपना काम चलाते हैं। ग़रीबों के पास जाकर उनसे बंक में जमा करने के लिये पैसे माँगने का काम बहुत-सी भले घर की स्त्रियाँ भी विना कुछ पुरस्कार लिए, केवल परोपकार की दृष्टि से और लोगों को मितव्ययी बनाने के उद्देश्य से, स्वेच्छापूर्वक किया करती हैं।

यदि कोई भले घर की विश्वसनीय और संभावित स्त्री चाहे, तो वह बहुत ही सहज में यह काम अपने पास-पड़ोस में खोलकर ग़रीबों का बहुत कुछ उपकार कर सकती है। उसे उचित है कि पहले तो वह घर-घर जाकर ग़रीब स्त्रियों को मितव्यय के लाभ समझावे, और तब उन्हें यह बतलावे कि तुम्हारे भले के लिये कुछ धन एकत्र करने की यह व्यवस्था की जा रही है। इसके बाद वह प्रतिसप्ताह एक दिन निश्चित कर दे, और उस दिन जाकर उनके यहाँ से पैसे-आने, जो कुछ मिले, सब ले आवे, और उनके खाते में जमा कर ले। इसके

लिये सबसे अधिक उपयुक्त दिन वही हो सकता है, जिस दिन घर के मालिक को तनख़्वाह या मज़दूरी आदि मिलती हो। इसके सिवा घर-घर जाकर धन एकत्र करने का काम बिलकुल निश्चित और नियमित रूप से होना चाहिए। साथ ही जिन लोगों का धन जमा किया जाय, उन्हें इस बात का पूरा-पूरा विश्वास भी दिला दिया जाना चाहिए कि तुम जब चाहोगे, आवश्यकतानुसार इसमें से अपनी रक़म ले भी सकोगे।

इँगलैंड में इस संबंध की एक संस्था है, जिसका नाम चैरिटी-आर्गैनिज़ेशन-सोसाइटी (Charity Organization Society) है। जो लोग अपनी बचत का थोड़ा बहुत अंश जमा करना चाहते हैं, उन्हें एक कार्ड दे दिया जाता है, जिसमें कुछ ख़ाने बने होते हैं। जब धन संग्रह करनेवाला उसके मकान पर जाता है, तब जो कुछ उसे मिलता है, वह उस कार्ड पर लिख देता है, और उसी समय उसे अपनी बंक की किताब पर भी चढ़ा लेता है। सप्ताह-भर में जितना धन एकत्र होता है, वह सब इस संस्था के द्वारा डाकख़ाने के सेविंग बंक में जमा कर दिया जाता है। डाकख़ाने के सेविंग बंक से ढाई रुपए सैकड़े सालाना सूद मिलता है। उसी सूद से इस संस्था का व्यय चलता है। जिन लोगों के पैसे जमा किए जाते हैं, उन्हें अवश्य ही कोई सूद नहीं दिया जाता। उनका लाभ केवल यही होता है कि उन्हें मितव्ययी होने की शिक्षा मिलती है,

और अनायास ही उनकी थोड़ी बहुत रक़म जमा हो जाती है, जो विपत्ति के समय उनके काम आती है।

इस संस्था ने एक और प्रकार की व्यवस्था की है, जो कई बातों में इससे भी बढ़कर उपयोगी है। उसने डाकख़ाने से लिखा-पढ़ी करके एक व्यवस्था कर रक्खी है। उस व्यवस्था के अनुसार डाकख़ाने से उसे कुछ फ़ार्म मिल जाते हैं, जिसमें बारह ख़ाने बने होते हैं। यही फ़ार्म उन लोगों में बाँट दिए जाते हैं, जो धन जमा करना चाहते हैं। प्रतिसप्ताह संस्था का कर्मचारी लोगों के पास जाता है, और वे उससे एक या दो टिकट ख़रीदकर उस फ़ार्म पर चिपका लेते हैं। जब उस फ़ार्म पर बारह टिकट लग जाते हैं, तब वह उनसे लेकर डाकख़ाने में भेज दिया जाता है, और डाकख़ाना उन बारह टिकटों का मूल्य अपने सेविंग बंक में, उस आदमी के नाम से, जमा कर लेता है। इसके उपरांत उसे दूसरा फ़ार्म मिल जाता है, जिसे वह फिर उसी तरह टिकट ख़रीद-ख़रीदकर भरता जाता है, और इस प्रकार थोड़े ही दिनों में अच्छी रक़म जमा कर लेता है। इस व्यवस्था में सुभीता यह है कि लिखने-पढ़ने या रक़म भरने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती; क्योंकि स्वयं स्टांप या टिकट ही जमा की जानेवाली रक़म के रूप में लगे रहते हैं। इसमें रक़म जमा करनेवाले को भी किसी तरह का संदेह करने की जगह नहीं रह जाती। इस प्रकार की व्यवस्थाओं का दरिद्रों की आर्थिक अवस्था पर बहुत ही शुभ परिणाम होता

है। एक की देखादेखी दूसरा भी जमा करने लग जाता है। जहाँ एक गाँव में किसी एक आदमी ने इस ढंग से धन जमा करना आरंभ किया, वहाँ चट और लोग भी उसका अनुकरण करने लग जाते हैं, और इस प्रकार धीरे-धीरे सब लोगों की आर्थिक अवस्था बहुत कुछ सुधर जाती है। इससे उन लोगों के मन में एक प्रकार का बहुत बड़ा संतोष इस बात का बना रहता है कि हमारा इतना रुपया डाकख़ाने में जमा है, और जब हमें आवश्यकता होगी, हम उसे निकाल सकेंगे। इससे उन ग़रीबों का एक और लाभ यह भी होता है कि जब उन्हें अधिक धन की आवश्यकता होती है, और वे किसी महाजन के पास कर्ज़ लेने के लिये जाते हैं, तब वह प्रायः ऐसे ही लोगों को जल्दी और सहज में ऋण दे देता है, जिनका डाकख़ाने में रुपया जमा होता है, और जिन्हें अपनी कमाई में से कुछ बचाकर जमा करने की आदत पड़ी हुई होती है; क्योंकि उसे इस बात का विश्वास होता है कि ऐसे व्यक्ति को जो कर्ज़ दिया जायगा, वह सहज में और जल्दी वसूल हो जायगा।

इसी प्रकार इँगलैंड के बड़े-बड़े नगरों में कुछ ऐसे बंक भी हैं, जिनमें केवल स्त्रियाँ ही रुपया जमा कर सकती हैं। ऐसे बंकों का सारा प्रबंध भी केवल स्त्रियों के ही द्वारा होता है। यों तो जितना रुपया आता है, वह सब ख़र्च हो जाता है, और जल्दी किसी को याद भी नहीं रहता कि कितनी आय हुई, और कितना व्यय। पर जब बंक में रुपया जमा हो जाता है, तब एक तो वह उतने

सहज में ख़र्च नहीं किया जा सकता; और दूसरे यदि ख़र्च भी हो, तो उसका एक हिसाब अपने पास बना रहता है, जिसे देखकर सहज में यह बात जानी जा सकती है कि इस महीने अथवा वर्ष में कितनी आय हुई, और कितना व्यय। इस बात का ज्ञान भी लोगों को अपव्ययी होने से बहुत कुछ रोकता है। अतः इस व्यवस्था से उन स्त्रियों का बहुत अधिक लाभ होता है, जिनकी आय अपेक्षा-कृत कुछ अधिक होती है। इसके सिवा एक और व्यवस्था होती है, जिसके अनुसार लोगों के घर में काठ या लोहे के छोटे-छोटे संदूक़ रख दिए जाते हैं। घरवालों को जब जितना सुबीता होता है, तब उसमें उतनी रक़म छोड़ देते हैं। आठवें दिन बंक का आदमी आकर उनके सामने ही वह संदूक़ खोलता है, और उसमें जितना धन होता है, वह सब अपनी किताब पर जमा करके ले जाता है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं से विशेषतः स्त्रियों का बहुत अधिक उपकार होता है।

ऐसे बंकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका सब कार-बार केवल स्त्रियों के ही द्वारा होता है, और सब काम भी स्त्रियों का ही होता है। जो स्त्रियाँ किसी तरह का रोज़गार करती हैं, उनका सब बही-खाता भी एक प्रकार से ये बंक ही रखते हैं, और प्रति-वर्ष अथवा छठे महीने उनके नफ़े-नुकसान का चिट्ठा भी बना देते हैं। यदि कुछ रोज़गार करनेवाली कतिपय स्त्रियाँ अपना कार-बार मिलाकर एक करना चाहें, तो यही बंक उनके कार-बार को लिमिटेड कंपनी का भी रूप दे देते हैं।

आवश्यकता पड़ने पर उन्हें इन्हीं बंकों से, आर्थिक विषयों में, क़ानूनी सलाह भी मिल जाती है। यदि स्त्रियाँ चाहें, तो यही बंक उनकी संपत्ति आदि की, उनकी इच्छा अथवा उनके दानपत्र आदि के अनुसार, पूरी-पूरी व्यवस्था भी कर देते हैं। यदि वे कोई ज़मीन ख़रीदना या मकान बनवाना चाहें, तो उसकी व्यवस्था भी बंक के अधिकारी कर देते हैं, अथवा आवश्यकतानुसार उन्हें उचित परामर्श देते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसे बंकों से स्त्रियों के सैकड़ों प्रकार के लाभ होते हैं।

अभी थोड़े दिनों से जर्मनी में एक ऐसा बंक खुला है, जिसकी सारी व्यवस्था स्त्रियों के ही हाथों में है, और जिसमें केवल स्त्रियाँ ही रक़म जमा कर सकती हैं। जो स्त्रियाँ थोड़ा-थोड़ा जमा करके किसी रोज़गार के लिये कुछ पूँजी इकट्ठा करना चाहती हैं, वे इसकी सदस्य हो जाती हैं; क्योंकि यह बंक सहयोग-सिद्धांत पर चलता है। सदस्य होने के लिये उन्हें कुछ प्रवेश-शुल्क देना पड़ता और कम-से-कम एक हिस्सा ख़रीदना पड़ता है। फिर वे धीरे-धीरे और हिस्से ख़रीदती रहती हैं, जिससे थोड़े समय में उनके पास एक अच्छी पूँजी जमा हो जाती है, और फिर उसी की ज़मानत पर वे बंक से कुछ रक़म लेकर अपना रोज़गार कर सकती हैं। बंक सदस्यों को ऋण देने के समय कई बातों का ध्यान रखता है, जिसके कारण स्त्रियाँ प्रायः अपने जमा किए हुए धन का दुरुपयोग नहीं करने पातीं।

इसी प्रकार बालक-बालिकाओं और युवक-युवतियों को

मितव्यय की शिक्षा देने के लिये इँगलैंड में स्कूलों तक में बंक स्थापित हुए हैं। बालकों अथवा बालिकाओं को हाथ-ख़र्च के लिये जो रक़म मिलती है, उसमें से कुछ तो वे ख़र्च करते और कुछ अपने स्कूल के बंक में जमा कर देते हैं, जो बाद में आवश्यकता पड़ने पर उनके काम आती है। इससे दूसरा बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें सहज में मितव्ययी होने और धन एकत्र करने की शिक्षा आरंभ से ही मिलने लगती है। वहाँ कुछ ऐसी सभाएँ और संस्थाएँ और भी हैं, जो अपने सदस्यों और अपने यहाँ रुपया जमा करनेवालों को उनकी बीमारी या बेकारी आदि के समय अच्छी सहायता करती हैं। अथवा, यदि कोई सदस्य मर जाता है, और उसके पास कुछ धन नहीं निकलता, तो वह संस्था उसकी अंत्येष्टि-क्रिया आदि का भी प्रबंध कर देती है। यदि कोई सदस्य बेकार हो जाता है, तो वह उसे किसी काम पर लगा देती है; और यदि उसे कम वेतन मिलता है, तो अनेक प्रकार के उद्योग करके उसका वेतन भी बढ़वा देती है। इनमें से कुछ संस्थाएँ ऐसी होती हैं, जिनके सदस्यों को कुछ साप्ताहिक या मासिक चंदा देना होता है। ऐसी संस्थाओं के सदस्यों को सब बातों में क़ानूनी सलाह मुफ़्त मिला करती है। जब कहीं इनके सदस्यों के साथ किसी प्रकार का अन्याय होता है, तब ये संस्थाएँ उसका प्रतिकार कराने के लिये पूरा-पूरा उद्योग करती हैं। कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जिनके यहाँ का यह नियम है कि यदि कोई स्त्री-सदस्य विवाह करना चाहे, तो

जितनी रक़म उसने चंदे के रूप में दी हो, उसका आधा वह उसे विवाह के व्यय तथा घर-गृहस्थी की व्यवस्था के लिये लौटा भी देती है। कुछ ऐसी सभाएँ होती हैं, जिनमें चंदे की रक़म सदस्यों की बीमारी में लगाई जाती है ; और साल-भर में हिसाब करने पर जो रक़म बचत में निकलती है, वह सब सदस्यों में बाँट दी जाती है। नए वर्ष से मानों फिर नई संस्था चलती है। कुछ संस्थाएँ ऐसी होती हैं, जो केवल अपने सदस्यों की बीमारी आदि में ही नहीं ख़र्च करतीं, बल्कि यदि उनका पति या संतान रोगी हो अथवा मर जाय, तो उसके लिये भी कुछ ख़र्च देती हैं। साथ ही वे कई तरह के बीमे भी करती हैं, जिनसे उनके सदस्यों को सदा सब प्रकार से कुछ-न-कुछ लाभ ही होता रहता है। कुछ ऐसी संस्थाएँ भी होती हैं, जो अपने कर्मचारियों को अपने सदस्यों के घर भेजकर उनसे चंदा भी मँगवा लेती हैं ; और यदि वे कुछ रक़म जमा करना चाहें, तो वह रक़म भी मँगवा लेती हैं। इस प्रकार उनके सदस्यों के सब काम प्रायः घर-बैठे ही हो जाते हैं। उन्हें केवल निश्चित समय पर कुछ निश्चित धन-भर दे देना पड़ता है। ऐसी संस्थाओं से प्रायः वे ही स्त्रियाँ लाभ उठाती हैं, जो शहरों से दूर देहातों आदि में रहती हैं, और जिनके लिये यों साधारणतः बंक में रुपया जमा करना अथवा अपनी जान आदि का बीमा कराना कठिन होता है। इन सब संस्थाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इनका संचालन और सारा कार-बार

किसी प्रकार के लाभ के विचार से नहीं होता। सब काम केवल परोपकार के विचार से और दूसरों को कष्ट के समय आर्थिक चिंताओं से मुक्त करने के लिये होता है।

इस प्रकार के परोपकार के कामों में लोगों को वहाँ की सरकार से भी यथेष्ट सहायता मिलती है। सन् १६०६ में इँगलैंड में एक क़ानून पास हुआ था, जिससे वहाँ के निवासियों का बहुत अधिक लाभ हुआ है। उस क़ानून के अनुसार लोग ज़मीन ख़रीदने और उस पर मकान बनवाने के लिये सहयोग-समितियाँ स्थापित करके धन एकत्र कर सकते हैं, और उस धन से ज़मीन ख़रीदकर उस पर मकान बनवा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें म्यूनिसिपैल्टी आदि से ऋण के रूप में आर्थिक सहायता भी मिला करती है, और यदि ऐसी सहयोग-समितियाँ दूसरों से ऋण लेती हैं, तो म्यूनिसिपैल्टियाँ आदि उनकी ज़मानत भी कर देती हैं। इससे यह लाभ होता है कि थोड़े-से ग़रीब लोग मिलकर, थोड़ी-थोड़ी रक़म जमा करके, ज़मीन ख़रीद लेते हैं, और तब कुछ ऋण आदि लेकर उस ज़मीन पर अपने रहने के लिये मकान बनवा लेते हैं। फिर धीरे-धीरे मकान बनवाने के लिये ऋण-स्वरूप लिया हुआ धन चुका देते हैं। हमारे देश में ग़रीबों के पास रहने के लिये बिलकुल मकान नहीं होते; अथवा जो होते भी हैं, वे बहुत ही छोटे, अँधेरे और टूटे-फूटे। यदि हमारे यहाँ इस प्रकार सहयोग-समितियाँ स्थापित करके ग़रीबों के लिये

इसी प्रकार मकान बनवाने के लिये कोई व्यवस्था की जा सके, तो उससे ग़रीबों का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है। इससे उनकी आर्थिक अवस्था भी बहुत सहज में सुधर सकती है, और वे अनेक प्रकार के रोगों आदि से भी अनायास ही बच सकते हैं।

इसी प्रकार की एक और व्यवस्था है, जिसके अनुसार कुछ अस्पताल खोल दिए जाते हैं। जो लोग उन अस्पतालों के व्यय के लिये कुछ साप्ताहिक सहायता देते हैं, उनकी और उनके परिवार के लोगों की, आवश्यकता पड़ने पर, सब प्रकार की चिकित्सा बिना कुछ लिए और मुफ़्त की जाती है। डॉक्टर जाकर उनके घर पर उन्हें देख आता और दवा भी दे आता है। जो लोग बहुत ग़रीब होते हैं, और बीमार पड़ने पर डॉक्टरों की बड़ी-बड़ी फ़ीस और दवाओं के भारी-भारी दाम नहीं दे सकते, वे अपनी अल्प आय में से बहुत ही थोड़ी रक़म प्रतिसप्ताह किसी ऐसे अस्पताल को देते रहते हैं। उस अवस्था में उन्हें इस बात की चिंता नहीं रह जाती कि जब हम बीमार पड़ेंगे, तब हमारी चिकित्सा आदि कैसे होगी।

इँगलैंड तथा दूसरे पाश्चात्य देशों में ये सब व्यवस्थाएँ तथा इसी प्रकार की और अनेक व्यवस्थाएँ लोगों को मितव्ययी बनाने और उन्हें दरिद्रता से बचाने के लिये की जाती हैं। अब हम इसी प्रकार की एक और व्यवस्था का थोड़ा-सा वर्णन करके यह प्रकरण समाप्त करेंगे। पाश्चात्य देशों में जान का बीमा

कराने का बहुत अधिक रिवाज़ है । साधारणतः प्रायः आधी प्रजा किसी-न-किसी प्रकार का बीमा करा ही लेती है । बीमा कराने से क्या-क्या लाभ होते हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप में हम केवल यही कह देना चाहते हैं कि ग़रीबों और मध्यम-श्रेणी के लोगों को जान का बीमा करा लेने पर इस बात की चिंता नहीं रह जाती कि वृद्धावस्था में हमारा निर्वाह किस प्रकार होगा, अथवा हमारे न रहने पर हमारे बाल-बच्चों का कैसे काम चलेगा। परंतु बीमे में बराबर कुछ निश्चित समय तक कुछ निश्चित रक़म देनी पड़ती है। और, सब लोग इस प्रकार रुपया नहीं दे सकते, इसलिये बहुत-से लोगों को अपनी अंतिम अवस्था में अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं अथवा वे बहुत अंशों में समाज के लिये भार-स्वरूप रहकर निर्वाह करते हैं। सर्व-साधारण और विशेषतः सरकार को उनके निर्वाह की व्यवस्था करनी पड़ती है । इसीलिये पाश्चात्य देशों में ऐसी व्यवस्था हो रही है कि जिन लोगों की अवस्था सत्तर या पचहत्तर वर्ष से अधिक की हो जाय, और जिनकी आमदनी कुछ निश्चित रक़म से कम हुआ करे, उन्हें सरकार की ओर से मासिक मा साप्ताहिक इतनी सहायता मिला करे। इसके लिये अलग कोष बनाए जाते हैं, और उस कोष में कुछ तो साधारण कोटि के लोगों को देना पड़ता है, और कुछ सरकार अपने पास से देती है। इस प्रकार मानों देश में दरिद्रता का बहुत कुछ अंत हो जाता है । कुछ लोग इस

व्यवस्था का इस आधार पर विरोध करते हैं कि इससे लोग निश्चिंत हो जाते हैं, और स्वतंत्रता-पूर्वक मितव्ययी होकर धन एकत्र करना नहीं सीख सकते। पर यदि यह मान लिया जाय कि इस व्यवस्था से इतनी हानि होती है, तो भी इससे साथ ही इतना लाभ भी अवश्य होता है कि जो लोग वृद्धावस्था में किसी प्रकार अपना निर्वाह नहीं कर सकते, उनका काम तो चल जाता है। मतलब यह कि यदि इस व्यवस्था से एक ओर कुछ हानि भी होती है, तो दूसरी ओर कुछ लाभ भी अवश्य होता है; और वह लाभ ऐसा होता है, जिसके लिये थोड़ी बहुत हानि भी सही जा सकती है। पर ये सब प्रश्न उन्नत, सभ्य और स्वतंत्र राष्ट्रों के विचार करने-योग्य हैं। भारत-सरीखे दरिद्र और परतंत्र देश के लिये इस प्रकार की बातें सोचना और इनके हानि-लाभ पर विचार करना तो मानों एक प्रकार से व्यर्थ-सा है। अपने देशवासियों के लिये तो हम अभी केवल यही कह सकते हैं कि उन्हें जहाँ तक हो सके, मितव्ययी होना चाहिए, और ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि उन्हें अंतिम अवस्था में किसी प्रकार का कष्ट न हो। और, साथ ही जो लोग अपनी मूर्खता, दरिद्रता अथवा इसी प्रकार के और किसी कारण से कष्ट भोगते हों, उनके कष्टों को जहाँ तक हो सके, दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बारहवाँ प्रकरण

परिश्रम और पारिश्रमिक

आज तक संसार के प्रायः सभी बड़े-बड़े विचारशीलों का ध्यान इस बात की ओर गया है कि जहाँ तक हो सकता है, लोग स्त्रियों से अधिक काम कराते हैं, और उनके परिश्रम से समाज अनुचित लाभ उठाता है। बात तो यह अवश्य ही ठीक है, पर इसका कारण यह नहीं कि पुरुषों को स्त्रियों के परिश्रम या लाभ आदि का कोई ध्यान नहीं रहता; क्योंकि स्वयं पुरुषों के साथ भी वे इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। पुरुष जिन पुरुषों से काम कराते हैं, उन्हें भी वे जहाँ तक हो सकता है, उनके परिश्रम से कम ही पारिश्रमिक देना चाहते हैं। स्त्रियाँ भी जहाँ दूसरी स्त्रियों से काम कराती हैं, वहाँ उनकी यही नियत रहती है कि पारिश्रमिक जहाँ तक हो सके, कम दिया जाय। अतः इसके लिये पुरुषों अथवा स्त्रियों को दोषी ठहराना ठीक नहीं। इसमें यदि दोष है, तो या तो वह मनुष्य की प्रकृति का, अथवा उनकी शिक्षा और संस्कार आदि का। आजकल की सभ्यता और सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि लोग दूसरों के परिश्रम से लाभ उठाना चाहते हैं,

उठाते हैं, और परिश्रम करनेवालों को जहाँ तक हो सके, कम पारिश्रमिक देकर शेष अपने पास रखना चाहते हैं। जिस देश में आधुनिक सभ्यता की जितनी ही वृद्धि और कल-कारख़ानों आदि की जितनी ही अधिकता है, वहाँ यह भीषण दृश्य उतना ही अधिक देखने में आता है। इस अनुचित व्यवस्था का जितना परिणाम पुरुषों को भोगना पड़ता है, उससे कहीं अधिक स्त्रियों को। हमारे देश में तो अभी तक कल-कारख़ानों का उतना अधिक प्रचार नहीं हुआ है; पर योरप, अमेरिका आदि देशों में इन कल-कारख़ानों के प्रचार का, समाज की आर्थिक अवस्था पर, इतना बुरा परिणाम हुआ है कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि एक ओर वहाँ अतुलनीय संपन्नता है, तो दूसरी ओर वैसी ही बल्कि उससे भी कुछ बढ़कर भीषण दरिद्रता है। और, इसका मुख्य कारण यही है कि लोग दूसरों के परिश्रम से स्वयं बहुत अधिक लाभ उठाना चाहते और स्वयं परिश्रम करनेवालों को उनके परिश्रम का बहुत ही कम पारिश्रमिक देना चाहते हैं। इस समय प्रायः सारे संसार में साम्यवाद का जो आंदोलन फैल रहा है, वह इसी निंदनीय व्यवस्था का परिणाम है।

हमारे देश में सरकार का यह नियम-सा है कि जिस पद पर काम करनेवाले अँगरेज़ या दूसरे योरपियन को दो हज़ार रुपए मासिक वेतन मिलता है, उसी पद पर काम करनेवाले हिंदोस्तानी को डेढ़ हज़ार या उससे भी कम। ठीक यही बात

पाश्चात्य देशों के कारखानों आदि में भी होती है। पर वहाँ यह भेद स्त्रियों और पुरुषों में देखा जाता है। वहाँ जो काम करने के लिये पुरुषों को एक रुपया मज़दूरी मिलती है, ठीक वही काम करनेवाली स्त्री को आठ या दस आने ही। स्वयं हमारे देश में भी यही बात देखने में आती है। केवल कल-कारखानों में ही नहीं, बल्कि घर-गृहस्थी में भी काम करनेवाले नौकरों आदि की अपेक्षा मज़दूरनियों को कम वेतन या मज़दूरी दी जाती है। साधारणतः लोग यही समझते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ दुर्बल होती हैं, और कम काम करती हैं। पर इस समझ के अंदर एक और भाव छिपा रहता है। वह यह कि स्त्रियाँ साधारणतः बहुत ही बेबस और लाचार समझी जाती हैं। सोचा यह जाता है कि यह तो स्त्री ही है, चलो, इसे इतना ही दो; यह करेगी क्या? इस प्रकार समाज मानों स्त्रियों को दिन-पर-दिन और भी अधिक बेबस और लाचार बनाता जाता और जहाँ तक हो सकता है उनके परिश्रम से स्वयं लाभ उठाता जाता है। परंतु अब पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ इन सब बातों से शिक्षा ग्रहण करने और इस बात का प्रयत्न करने लगी हैं कि हमारे परिश्रम से समाज अनुचित लाभ न उठावे। अब वे अपने अधिकारों की रक्षा करने पर उतारू हो रही हैं। अब तक स्त्रियाँ जो चुपचाप सब बातें सहती चली आती थीं, उसके कनेक कारण थे। पहला कारण तो यही था कि अब तक की उनकी शिक्षा और

सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी थी कि वे स्वतंत्रता-पूर्वक कुछ प्रतिकार करना तो दूर रहा, अपने मन का भाव भी नहीं प्रकट कर सकती थीं। दूसरी बात यह कि वे जहाँ तक हो सकता था, सब कामों से बहुत दूर रक्खी जाती थीं; वे किसी काम में कोई दख़ल नहीं दे सकती थीं। उनका क्षेत्र बहुत ही संकुचित रक्खा गया था, और इसीलिये उन्हें जो कुछ मिल जाता था, उसी पर संतोष करना पड़ता था। एक और बात यह भी है वे घर में मुख्य कमानेवाली नहीं होती थीं। घर में मुख्य कमानेवाले तो पुरुष ही होते थे, और स्त्रियों के संबंध में यह समझा जाता था कि इन्हें विशेष आय होने की आवश्यकता नहीं। स्त्रियाँ भी समझती थीं कि चलो, जो कुछ थोड़ा बहुत मिले, वही सही; और उसी पर वे संतोष कर बैठती थीं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का वेतन या पारिश्रमिक बहुत ही थोड़ा रह गया। अब तक पाश्चात्य देशों में प्रायः यही व्यवस्था रही है। वकालत, डॉक्टरी आदि कुछ थोड़े-से पेशों को छोड़कर शेष और सब कामों में उन्हें अब तक पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही कम वेतन या पारिश्रमिक मिलता रहा है, बल्कि अब तक बराबर कम ही मिलता जाता है। पर अब पाश्चात्य देशों में स्त्रियों की वह अवस्था नहीं रह गई है। सबसे पहले तो वहाँ शिक्षा का यथेष्ट प्रचार हो गया है, जिससे स्त्रियों में बहुत कुछ स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का भाव आ गया है। अब वे अपने अधिकारों के साथ-साथ यह भी समझने

लगी हैं कि अमुक विषय में हमारे साथ यह अन्याय हो रहा है। इसके अतिरिक्त अब वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी भी निकल आई हैं, जिनका विवाह नहीं हुआ है, और जो स्वयं ही अपने घर में मुख्य कमानेवाली हैं। ऐसी स्त्रियाँ जब यह देखती हैं कि हम काम तो पुरुषों के बराबर ही करती हैं, पर हमें वेतन अपेक्षाकृत बहुत ही कम मिलता है, तो भला वे कैसे शांत और संतुष्ट रह सकती हैं। इसलिये अब उन्होंने पाश्चात्य देशों में जहाँ और बातों में पुरुषों के समान अधिकार पाने के लिये आंदोलन करना प्रारंभ किया है, वहाँ अब वे पुरुषों के समान ही वेतन या पारिश्रमिक पाने के लिये अनेक प्रकार के उद्योग भी करने लगी हैं। यद्यपि हमारे देश से वह आंदोलन अभी बहुत दूर है, तथापि स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के विचार से इस संबंध की कुछ बातें यहाँ दे देना उपयुक्त जान पड़ता है। आशा है, इससे हमारे देश की स्त्रियों का भी कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होगा।

यदि वास्तव में जाय, तो मुख्य विचार इस बात का होना चाहिए कि पुरुषों के मुक़ाबले में स्त्रियों का काम कैसा होता है। यदि स्त्रियों का भी काम ठीक उतना ही अधिक और वैसा ही अच्छा हो, जितना अधिक और जितना अच्छा पुरुषों का, तो कोई कारण नहीं कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम वेतन या पारिश्रमिक दिया जाय। यदि कोई स्त्री भी पुरुषों की ही तरह ठीक और पूरा काम करती हो, तो उसे उतना पारिश्र-

मिक अवश्य मिलना चाहिए, जितने में उसका अच्छी तरह निर्वाह हो सके। प्रायः जब किसी स्त्री के वेतन या पारिश्रमिक का प्रश्न उठता है, तब लोग यही कह देते हैं कि अजी, उसका काम तो इतने में ही अच्छी तरह चल जायगा, या वह तो इतने में मज़े में गुज़ारा कर लेगी। यह बात ठीक है कि स्त्रियाँ जैसे-तैसे थोड़े में भी अपना गुज़ारा कर लेती हैं। पर प्रश्न उनके गुज़ारे-भर का ही नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या उतने में उसका अच्छी तरह गुज़ारा हो सकता है, और क्या उतने में वह अपनी यथेष्ट उन्नति भी कर सकती है? क्या वह उतने में अपनी योग्यता और मर्यादा के अनुसार निर्वाह कर सकती है? क्या उतने में वह दिन-पर-दिन बढ़ती हुई कठिनाइयों और ख़र्चों का सामना कर सकती है? क्या वह उतने में कुछ विश्राम और आराम पा सकती है? क्या अपनी रुग्णावस्था और वृद्धावस्था आदि के लिये भी कुछ बचा सकती है? मतलब यह कि जब किसी स्त्री के वेतन या पारिश्रमिक आदि का प्रश्न उठता है, तब हम लोग इस बात का कभी विचार नहीं करते कि वह कितना काम करती है, और न इसी बात पर कि कितने में उसका ठीक-ठीक और अच्छी तरह निर्वाह होगा। हम केवल इसी बात का विचार करते हैं कि वह कम-से-कम कितना पाने पर काम करने के लिये तैयार हो जायगी। अर्थात् वह कम-से-कम जितने वेतन या पारिश्रमिक में काम करने के लिये तैयार हो जाय, हम उसे केवल उतना ही देना चाहते हैं; उससे

अधिक उसे और कुछ भी नहीं देना चाहते, चाहे उसका काम कितने ही अधिक मूल्य का क्यों न हो, और पुरुष से उतना ही काम कराने के लिये हमें कितना ही अधिक क्यों न देना पड़े। इसी को कहते हैं किसी की लाचारी और बेबसी से अनुचित लाभ उठाना। और, आजकल पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ इसी के विरुद्ध आंदोलन कर रही हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम वेतन या पारिश्रमिक देना कई कारणों से बहुत ही अनुचित और निंदनीय है। उन्हें कम वेतन या पारिश्रमिक देने का परिणाम यह होता है कि बहुत ही दरिद्रता-पूर्वक बहुत ही कठिनता से उन्हें अपना जीवन-निर्वाह करना पड़ता है, और दिन-रात इस प्रकार परिश्रम करना पड़ता है, मानों उनमें जान है ही नहीं—मानों वे प्राणी नहीं, केवल कोई कल या मशीन हैं। जितनी कठिनता से उन्हें जीवन-निर्वाह करना पड़ता है, कदाचित् ही कोई पुरुष उतनी कठिनता से जीवन-निर्वाह कर सकता हो। स्त्रियों की सहिष्णुता ही मानो यहाँ उनके लिये घातक प्रमाणित होती है। हमारे देश में बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो कसीदे काढ़कर, टिकुलिएँ बनाकर, गुड़िएँ सजाकर, तरह-तरह की गुरिएँ पिरोकर और इसी प्रकार के अनेक दूसरे काम करके अपना निर्वाह करती हैं। यदि आप घंटे-दो घंटे किसी ऐसी स्त्री के पास बैठकर उसका काम करना देखें, तो आपको तुरंत पता चल जायगा कि वह काम कितने परिश्रम और दीदारेज़ी का है। और, यदि आप उससे पूछें

कि दिन-भर इसी प्रकार का काम करने पर तुम कितने की मज़दूरी करती हो, तो उसका उत्तर सुनकर आपको चकित रह जाना पड़ेगा। ऐसे कामों की दिन-भर की मज़दूरी कदाचित् ही चार या छः पैसे से अधिक होती हो। सो भी किसी बहुत अच्छा काम करनेवाली स्त्री को ही इतनी मज़दूरी मिलती होगी; नहीं तो साधारणतः दो-ही तीन पैसे। ऐसे काम करनेवाली स्त्रियाँ प्रायः ऐसे घर की होती हैं, जिनमें कमानेवाले एक-दो पुरुष भी हुआ करते हैं। वे सोचती हैं कि चलो, दिन-भर ख़ाली बैठने से यही अच्छा है कि दो-ही चार पैसे का काम कर लें। पर कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनकी जीविका का निर्वाह ही इसी प्रकार की मिहनत-मज़दूरी से होता है। अब आप ही सोचें कि इतनी थोड़ी आमदनी में वे किस प्रकार अपना निर्वाह करती होंगी। हमारा तो ख़याल है कि छोटी जाति की जो स्त्रियाँ बाहर निकलकर टोकरी ढोती अथवा इसी प्रकार के और काम करती हैं, वे घर में बैठकर इस प्रकार का काम करनेवाली भली स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक की मज़दूरी कर लेती हैं। यह कैसे अन्याय की बात है कि प्रतिष्ठित कुल-बधुओं को इतनी थोड़ी मज़दूरी पर इतना अधिक और कठिन काम करना पड़ता है! उनके घर में एक-दो कमाने वाले मर्द होते हैं, और इस बात का अनुचित लाभ उनसे काम लेनेवाले उठाते हैं। छोटी जाति की जो स्त्रियाँ बाहर निकलकर टोकरी आदि ढोती अथवा इसी प्रकार के और काम करती हैं,

उन्हें भी जो मज़दूरी मिलती है, वह पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ करती है। जहाँ कहीं इमारत का काम होता है, वहाँ चूना, सुरख़ी और ईंटें आदि अथवा फ़ालतू मिट्टी ढोने का काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। इमारत बनवानेवाले लोग जान-बूझकर इस काम में पुरुष-मज़दूरों को नहीं लगाते। वे समझते हैं कि पुरुषों को अधिक मज़दूरी देनी पड़ेगी, और इसीलिये वे ऐसे कामों पर स्त्रियों को बुलवाकर नियुक्त करते हैं। बेचारी मज़दूरनियाँ दिन-भर बोझा ढोती रहती हैं, और हर खेप उन्हें प्रायः कुछ कौड़ियाँ ही मिलती हैं। दिन भर में सब मिलाकर उन्हें मुश्किल से दो आने, दस पैसे या अधिक से अधिक तीन आने तक मिल पाते हैं। वह भी उसी दशा में, जब वे सवेरे से संध्या तक उसी काम में लगी रहें। वे ज़रा भी विश्राम नहीं करतीं; पैसे-दो पैसे के चने भुनवा लेती हैं, और रास्ते में चलते हुए खाती चलती हैं। वे सोचती हैं कि यदि हम किसी जगह बैठकर खायँ और आधा घंटे विश्राम करें, तो हमारा दमड़ी या धेले का नुकसान हो जायगा। सिर्फ़ दमड़ी या धेले की लालच से वे क्षण-भर विश्राम भी नहीं कर सकतीं। उनका शरीर बिलकुल पीला पड़ जाता है, उनमें बल बिलकुल नहीं रह जाता, और वे देखने में मृतक-सी जान पड़ती हैं। पर, फिर भी, उन्हें अपना पेट पालने के लिये इस प्रकार सारा दिन परिश्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार की और बहुत-सी बातें बतलाई जा सकती हैं। पाश्चात्य देशों में

भी कल-कारख़ानों में प्रायः इसी प्रकार स्त्रियों से बहुत अधिक काम लेकर उन्हें बहुत ही कम पारिश्रमिक दिया जाता है। पर अब वहाँ स्त्री-निरीक्षकाएँ नियुक्त होने लगी हैं, जो कारख़ानों में घूम-घूमकर इन सब बातों की जाँच करती हैं, और जहाँ तक हो सकता है, स्त्रियों पर होनेवाले इस प्रकार के अत्याचारों को रोकने का प्रयत्न करती हैं।

कम पारिश्रमिक मिलने के कारण स्त्रियों के शारीरिक बल में जो कुछ ह्रास होता है, वह तो होता ही है; साथ ही उनके मानसिक बल का भी बहुत अधिक क्षय होता है। भला जिसे इतना अधिक परिश्रम करना पड़े और इतना कम पारिश्रमिक मिले, उसका शारीरिक और मानसिक ह्रास न हो, तो और क्या हो? जिन परिस्थितियों में उन्हें काम करने के लिये विवश होना पड़ता है, उनका इसके सिवा और कोई परिणाम हो ही नहीं सकता। स्त्री हो चाहे पुरुष, यदि उसे दिन-भर कठिन परिश्रम करना पड़े और बहुत थोड़ा वेतन या पारिश्रमिक मिले, तो इसका परिणाम यही होगा कि न तो वह पेट-भर और अच्छा भोजन और विश्राम कर सकेगा, न किसी तरह अपना मन बहला सकेगा, और न किसी प्रकार की उन्नति ही कर सकेगा। उसे दिन-रात या तो काम करना पड़ेगा, या अपने निर्वाह की चिंता करनी पड़ेगी। परिणाम यही होगा कि वह दिन-पर-दिन शारीरिक और मानसिक, दोनों ही प्रकार से दुर्बल और हीन होता जायगा। और, इस प्रकार समाज में हीन श्रेणी के लोग

बढ़ते जायँगे। मानसिक क्षेत्र में स्त्रियाँ जो अभी तक कुछ भी उन्नति नहीं कर सकी हैं, उसके अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि उनसे सदा बहुत अधिक काम लिया जाता रहा है, और उन्हें विश्राम करने अथवा मानसिक क्षेत्र में उन्नति करने का अवसर ही नहीं दिया गया। मानसिक उन्नति प्रायः निश्चिंतता के समय ही होती है। जहाँ दिन-रात एक-न-एक चिंता लगी रहती हो, भर-पेट खाने तक को न मिले, वहाँ भला क्या मानसिक उन्नति हो सकेगी! इस बात में तो बहुत-से पुरुषों की दशा भी ऐसी स्त्रियों की दशा के समान ही है। पर, फिर भी, पुरुषों की दशा कुछ-न-कुछ अच्छी कही जा सकती है। किंतु स्त्रियों की दशा प्रायः बहुत ही शोचनीय है।

स्त्रियाँ विवश होकर बहुत ही थोड़े वेतन या पारिश्रमिक पर काम करने लग जाती हैं। इसका एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि वे बहुत ही छोटे और तुच्छ कामों में लगा दी जाती हैं। उन्हें प्रायः ऐसे ही काम मिलते हैं, जिनमें कुछ भी सिद्धि नहीं होती, और जिन्हें करने के लिये पुरुष जल्दी तैयार नहीं होते। इससे स्त्रियों की दशा और भी ख़राब होती जाती है। यदि स्त्रियों को अच्छा वेतन या पारिश्रमिक देकर ऊँचे दरजे के कामों में लगाया जाय, तो वे उनमें भी अच्छी तरह चल सकती और अच्छी उन्नति करके दिखला सकती हैं। कारख़ानेदार अपना नफ़ा तो बिलकुल कम नहीं करना चाहते, और फिर भी, बाज़ार में सस्ती चीज़ें बेचना चाहते हैं। इसका दुष्परिणाम

काम करनेवाले मज़दूरों आदि को भोगना पड़ता है; क्योंकि उन्हीं का वेतन कम किया जाता और उन्हीं से अधिक काम लिया जाता है। इस व्यवस्था में जहाँ तक हो सके, सुधार होना चाहिए; क्योंकि इसमें स्त्रियों और पुरुषों, दोनों का लाभ है।

योरप और अमेरिका आदि में, जहाँ कल-कारख़ानों आदि की बहुत अधिकता है, इस व्यवस्था के कारण घोर अनर्थ हो रहा है। भारतवर्ष भी उन्हीं के अनुकरण पर चल रहा है, इसलिये यहाँ के लोगों को अभी से सावधान हो जाना चाहिए, और ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे उस घोर अनर्थ की यहाँ पुनरावृत्ति न हो। वहाँ के कारख़ानों में बहुत अधिक स्त्रियाँ काम करती हैं, और उन स्त्रियों को बहुत ही कम वेतन या पारिश्रमिक मिलता है। यह वेतन या पारिश्रमिक इतना कम होता है कि बहुतेरी स्त्रियों को बहुत ही बुरी तरह से अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उन्हें पेट-भर भोजन तो मिलता ही नहीं, फिर रहने के लिये मकान या सामान वे कहाँ से लावें? परिणाम यह होता है कि बहुतेरी स्त्रियों को रात का समय सड़कों आदि पर ही बिताना पड़ता है, अथवा उन्हें दूसरे मज़दूर आदि पकड़कर अपने घर ले जाते और अपने यहाँ आश्रय देते हैं। इस तरह वे आज यहाँ और कल वहाँ रहकर रात बिताती हैं। उनका चरित्र बिलकुल भ्रष्ट हो जाता और उनमें अनाचार बहुत बढ़ जाता है। इस प्रकार कारख़ानेदार अपने लाभ के लिये समाज के एक बहुत बड़े अंश का चरित्र भी नष्ट कर

देते हैं। इस कुव्यवस्था का यह परिणाम होता है कि बहुत थोड़े-से लोग तो बहुत अधिक मालदार हो जाते हैं, कुछ थोड़े-से लोग साधारण रूप से अपना निर्वाह करते हैं, और समाज के बहुत अधिक लोगों को घोर दरिद्रता में अपना जीवन बिताना पड़ता है। यह कितना बड़ा अन्याय और कितना बड़ा अत्याचार है। फिर भी लोग इसे सभ्यता कहते हैं!

आज से प्रायः पचास-साठ वर्ष पूर्व अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और विचार-शील लेखक रस्किन ने एक अवसर पर, स्त्रियों को संबोधन करके, लिखा था—"इस समय सारे योरप में युद्ध के परिणाम-स्वरूप भीषण दरिद्रता और कष्ट फैला हुआ है। कुल-ललनाओ, चाहे तुम में कितनी ही धार्मिकता और कितना ही स्वार्थ-त्याग क्यों न हो; पर, फिर भी, योरप को इस दरिद्रता और कष्ट का उत्तरदायित्व तुम्हीं पर है। तुम लोग जिनसे प्रेम करती हो, उनके लिये भले ही स्वार्थ-त्याग कर सकती हो; पर जो लोग तुम्हारे क्षेत्र से बाहर हैं, उनके लिये तुम बिलकुल स्वार्थी और अविचारी हो, तुम उनके लिये ज़रा भी कष्ट सहने को तैयार नहीं होती हो।.........
बल्कि मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि यदि तुम युद्ध बंद करना चाहो, तो उसके लिये तुम्हें उतना भी परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, जितना भोजन करने के लिये उठकर जाने में करना पड़ता है।.......................जिस स्त्री के मन में ईश्वर का कुछ भी ध्यान या भय हो, उसे इस बात की प्रतिज्ञा करनी

चाहिए कि यदि हृदय से नहीं, तो कम-से-कम ऊपरी तौर पर, केवल लोगों को दिखलाने के लिये, मैं उन लोगों के वास्ते शोक प्रकट करूँगी, जो युद्ध में मारे गए हैं।.................. सभ्य योरप के ऊँचे दरजे की प्रत्येक स्त्री को इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जब कभी कोई निर्दयता-पूर्वक युद्ध आरंभ होगा, तब मैं शोक प्रकट करनेवाले केवल काले वस्त्र धारण करूँगी, और कभी किसी प्रकार के जवाहरात या गहने आदि न पहनूँगी। यदि सब स्त्रियाँ इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर लें, तो मैं कह सकता हूँ कि कोई युद्ध एक सप्ताह भी नहीं चल सकता।"

यदि स्त्रियों में युद्ध रोकने का उतना ही बल हो, जितना कि ऊपर उद्धृत किए हुए रस्किन के वाक्यों से प्रकट होता है, तो वे इस युद्ध को रोकने में तो और भी अधिक सहायक हो सकती हैं, जो स्वयं उन्हीं के वर्ग को बुरी तरह पीसे डाल रहा है। आजकल शिक्षा और संस्कृति आदि के कारण इस प्रकार के प्रश्न बहुत कुछ सर्व-साधारण के सामने आ चुके हैं। क्या इस अवसर पर सभी देशों की स्त्रियाँ मिलकर कोई ऐसा उद्योग नहीं कर सकतीं, जिससे समाज का यह भारी कलंक दूर हो, और मानव-जाति सुख-पूर्वक उन्नति करती हुई शांति के मार्ग में अग्रसर हो सके? और कुछ नहीं, यदि सब देशों की स्त्रियाँ इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि हम कोई ऐसी चीज़ नहीं ख़रीदेंगीं, जो बहुत अधिक परिश्रम कराकर और

बहुत कम पारिश्रमिक देकर तैयार कराई गई हो, तो भी इस अन्याय और अत्याचार का बहुत सहज में अंत हो सकता है। पर हाँ, इसके लिये थोड़ा साहस, थोड़ा स्वार्थत्याग और थोड़ी कष्ट-सहिष्णुता की आवश्यकता होगी।

योरप, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में पुरुषों की देखा-देखी स्त्रियों में भी बहुत कुछ जागृति हो चली है, और वे भी अब अपने स्वार्थों तथा हितों की रक्षा करने के लिये बहुत कुछ परिश्रम और आंदोलन करने लगी हैं। हमारे देश में तो ऐसी बातों के विरुद्ध और भी अधिक आंदोलन होना चाहिए; क्योंकि एक तो हमारे यहाँ जनता बहुत अधिक अशिक्षित है, और दूसरे, हमारे यहाँ दरिद्रता भी बहुत अधिक है। पाश्चात्य देशों में कल-कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों आदि का बहुत अच्छा संगठन है। उसी संगठन के बल पर वे अनेक अवसरों पर अपने मालिकों को अनेक प्रकार के अन्याय और अत्याचार आदि करने से रोक सकते हैं। पर हमारे यहाँ किसी प्रकार का कोई संगठन ही नहीं है। यदि हमारे यहाँ पूँजीपति या कारख़ानों के मालिक यह चाहते हैं कि मज़दूर लोग आठ घंटों की जगह ९ या १० घंटे काम किया करें, तो मज़दूरों को विवश होकर उनकी आज्ञा मान लेनी पड़ती है। यदि वे उनका वेतन या पारिश्रमिक कम करना चाहते हैं, तो सहज में कर सकते हैं। बेचारे मज़दूर और मज़दूरनियाँ कुछ भी नहीं कर सकतीं। यद्यपि अब मज़दूरों का कुछ-कुछ ध्यान

इस ओर जाने लगा है, पर, फिर भी, उसे नहीं के बराबर समझना चाहिए; क्योंकि अभी तक उनके संगठन का क्षेत्र विस्तृत नहीं है। विशेषतः स्त्रियों की दशा तो और भी शोचनीय है। वे तो अभी तक संगठन का नाम भी नहीं जानतीं, और सब प्रकार के अत्याचार चुपचाप सह लिया करती हैं। यदि कोई आसाम के चा के बग़ीचों में जाकर वहाँ काम करनेवाली स्त्रियों की दुर्दशा का निरीक्षण करे, तो शायद दुःख के मारे उसकी आँखों में आँसू भर आवेंगे। पर, फिर भी, उनकी दशा सुधारने का कोई उपाय नहीं हो रहा है। उन्हें वेतन भी बहुत कम मिलता है, उन पर कोड़े भी पड़ते हैं, जुरमाने भी होते हैं, और उनका सतीत्व भी नष्ट किया जाता है; फिर भी कोई उनकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। किंतु अब वह समय आ गया है कि ऐसे अत्याचारों को रोकने के लिये संगठित उद्योग किया जाय, और जहाँ तक शीघ्र हो सके, इस प्रकार के अन्यायों का अंत किया जाय।

यह तो हुई कल-कारख़ाने आदि ऐसे स्थानों में काम करने-वाली स्त्रियों की बात, जहाँ समय आदि की बहुत कुछ पाबंदी होती है, और जहाँ उन्हें केवल कुछ निश्चित समय तक ही काम करना पड़ता है। पर ऐसे स्थानों में तो अपेक्षा-कृत बहुत ही कम स्त्रियाँ काम करती हैं। स्त्रियों के काम करने के बहुत अधिक स्थान ऐसे ही हैं, जहाँ काम का कोई निश्चित समय नहीं होता, और उन्हें प्रायः सारा दिन काम करना पड़ता है।

सबसे पहले घरों में काम करनेवाली मज़दूरनियों को ही लीजिए। दिन-रात काम करनेवाली मज़दूरनियों को प्रायः दो या तीन रुपए मासिक वेतन दिया जाता है, और साथ में भोजन भी मिलता है। अब उनके परिश्रम का हाल सुनिए। वे घर के लोगों के सोकर उठने से पहले ही अपने काम पर मुस्तैद हो जाती हैं। सबसे पहले उन्हें झाड़ू देना पड़ता है, और तब रात के जूठे बरतन माँजने पड़ते हैं। इसके बाद पानी भरना और बाज़ार से सौदा-सुल्फ़ लाना पड़ता है। फिर रसोई-घर का सब प्रबंध करना पड़ता है। इसके उपरांत घर के लोगों के खा-पी चुकने पर फिर बरतन माँजने पड़ते हैं। तब कहीं उन्हें भोजन नसीब होता है। वह भी प्रायः बहुत मध्यम-श्रेणी का, अथवा कहीं-कहीं बहुत ही निकृष्ट श्रेणी का भी, तीसरे पहर फिर वही सवेरेवाली व्यवस्था चलती है, और रात को ९ या १० बजे तक उसे दम मारने की फ़ुरसत नहीं होती, जो स्त्रियाँ गाँव-देहातों में घरों में काम करती हैं, उन्हें इन सब कामों के अतिरिक्त कूटने-पीसने का भी बहुत कुछ काम करना पड़ता है। विशेषतः फसल के दिनों में तो उन्हें बहुत कठिनता से सोने और खाने-पीने-भर का ही अवकाश मिलता है। इसके सिवा शहरों में और भी बहुत-से काम करनेवाली स्त्रियाँ होती हैं। जैसे, खिलौने टिकुली और गुड़िया बनानेवाली स्त्रियाँ, इन सबकी दशा भी बहुत ही शोचनीय होती है। उन्हें बहुत ही थोड़ा वेतन या पुरस्कार लेकर बहुत अधिक काम करना पड़ता

है, जिसका परिणाम यह होता है कि उनका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन नष्ट होता जाता है, और फलतः वे अच्छा और बढ़िया काम करने के योग्य नहीं रह जातीं। यदि आर्थिक दृष्टि से ही देखा जाय, तो भी इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि वे स्वस्थ रहें, ताकि वे अच्छा और अधिक काम कर सकें। ऐसा न हो कि वे बेचारी काम करती-करती इतनी दुर्दशा को पहुँच जायँ कि फिर काम करने-योग्य ही न रह जायँ। पर हमारे यहाँ इन सब बातों का कोई विचार नहीं किया जाता। इसी का यह परिणाम होता है कि देश में दिन-पर-दिन दरिद्रता की वृद्धि होती जाती है, और लोग स्वस्थ रहने के बदले अस्वस्थ और प्रसन्न रहने के बदले बहुत ही दुःखी दिखाई देते हैं।

पाश्चात्य देशों के मज़दूरों और मज़दूरनियों आदि से भारत के मज़दूरों और मज़दूरनियों आदि की दशा बहुत ही भिन्न है। इसलिये उन दोनों में किसी तरह का मुक़ाबला नहीं हो सकता। भारत के कल-कारख़ानों में स्त्रियों की रक्षा के लिये जो नियम बने हैं, वे प्रायः इँगलैंड के नियमों के अनुकरण पर हैं; और वे उतने अधिक तथा उतने अच्छे भी नहीं हैं, जितने अधिक और जितने अच्छे इँगलैंड के हैं। इँगलैंड में कई ऐसी बातों का ध्यान रक्खा जाता है, जिनका भारत में कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता। मज़दूरों और मज़दूरनियों आदि से काम लेते समय तीन बातों का विशेष ध्यान रक्खा जाना चाहिए। पहले तो यह कि उनसे जितना काम लिया जाय, उतनी ही मज़दूरी दी जानी

चाहिए। ऐसा न होना चाहिए कि काम तो लिया जाय बहुत अधिक, और मज़दूरी दी जाय बहुत थोड़ी। दूसरे इस बात का ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि उनसे बहुत अधिक समय तक काम न लिया जाय; उतने ही समय तक काम लिया जाय, जितने समय में उनका स्वास्थ्य न बिगड़ने पावे। तीसरी बात यह है कि जिस स्थान पर उनसे काम लिया जाय, वह ऐसा गंदा, अँधेरा या संकीर्ण न हो कि काम करनेवालों का स्वस्थ्य ही नष्ट हो जाय। इन तीनों में पहली बात ही सबसे मुख्य है। जहाँ पारिश्रमिक पूरा मिलेगा, वहाँ लोगों को बहुत अधिक समय तक काम करने की आवश्यकता ही न होगी। और, जो पूरा पारिश्रमिक दे सकेगा, वह काम करनेवालों के लिये अच्छे स्थान की भी व्यवस्था कर सकेगा। इसके अतिरिक्त जिसे अच्छा वेतन या पारिश्रमिक मिलेगा, वह स्वयं भी अपने रहने के लिये अच्छा ही स्थान चुनेगा। इसलिये सारी ख़राबियों की जड़ कम मज़दूरी ही मानी जा सकती है। पाश्चात्य देशों में निरीक्षिकाएँ नियुक्त की जाती हैं, जो कारख़ानों आदि में जा-जाकर इन सब बातों का निरीक्षण करती हैं। उनके निरीक्षण का यह परिणाम हो चला है कि मज़दूरनियों की हालत बहुत कुछ सुधर चली है। शिक्षा के प्रचार से भी ये बातें आप-से-आप बहुत कुछ दूर हो रही हैं। जिन्हें किसी प्रकार की शिक्षा मिली होती है, वे सहसा गंदे और अँधेरे स्थानों में नहीं रहते। कल-कारख़ानों के संबंध में जो क़ानून

होते हैं, उनसे भी इन सब बातों की बहुत कुछ बचत होती है। उन क़ानूनों के कारण कारख़ानेदार न तो अधिक समय तक काम ले सकते हैं, और न अपने कारख़ानों को ही ऐसी हालत में रख सकते हैं, जिससे काम करनेवालों का स्वास्थ्य नष्ट हो। पर ये सब क़ानून केवल कारख़ानों के लिये ही प्रयुक्त हो सकते हैं; और अधिकांश काम करनेवाले कारख़ानों के बाहर और ऐसे ही स्थानों में काम करते हैं, जहाँ ऐसे क़ानूनों की पहुँच नहीं हो सकती। इस प्रकार की मज़दूरनियों में बहुत-सी ऐसी ही होती हैं, जिनके पति कोई काम न मिलने के कारण ख़ाली रहते अथवा बहुत ही सुस्त, अकर्मण्य या अपाहिज होते हैं, या जो विधवा होती और जिनकी गोद में छोटे बच्चे होते हैं, या जिन्हें घर के लोग अपने यहाँ से निकाल देते हैं। इस प्रकार की स्त्रियों से, कम मज़दूरी देकर, अधिक काम लेने की प्रथा रोकने लिये इँगलैंड में कुछ ख़ास क़ानून बने हुए हैं, जिनसे स्त्रियों की बहुत अधिक रक्षा होती है। अब तो इस देश में भी इसी प्रकार के क़ानून बनाने की बहुत बड़ी आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। वहाँ कुछ ऐसी सरकारी संस्थाएँ भी हैं, जो मज़दूरों और मज़दूरनियों के वेतन और पारिश्रमिक आदि भी निश्चित करती हैं। इन संस्थाओं से भी ग़रीबों की बहुत कुछ रक्षा होती है।

आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में सन् १८९६ से ही इस संबंध के कई अच्छे क़ानून बने हुए हैं, जिनका फल भी बहुत अच्छा

देखने में आता है। सबसे पहला शुभ परिणाम तो यह होता है कि वहाँ अपेक्षाकृत बहुत अच्छी चीज़ें बनती हैं। जहाँ कारख़ानेदार अधिक वेतन देने के लिये विवश किए जायँगे, वहाँ उन्हें अच्छी और बढ़िया नई-नई मशीनें भी मँगवानी पड़ेंगी, तथा दूसरे ऐसे साधन एकत्र करने पड़ेंगे, जिनसे उनके यहाँ अच्छी और अधिक चीज़ें बनें। यदि ऐसा न होगा, तो वे काम करनेवालों को अधिक मज़दूरी या पारिश्रमिक भी न दे सकेंगे। दूसरा शुभ परिणाम यह होता है कि मज़दूर सदा प्रसन्न, स्वस्थ और निश्चिंत रहते हैं। उन्हें थोड़े वेतन के लिये मर-मरकर काम नहीं करना पड़ता। देश के स्वास्थ्य पर भी इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। तीसरा परिणाम यह देखने में आता है कि मज़दूर बढ़ जाने पर भी चीज़ें महँगी नहीं पड़तीं। अच्छी-अच्छी मशीनों और स्वस्थ तथा प्रसन्न-चित्त मज़दूरों के द्वारा अच्छी, अधिक और सस्ती चीज़ें तैयार होती हैं।

पाश्चात्य देशों में सरकारी क़ानूनों से मज़दूरों आदि का जो कुछ लाभ होता है, वह तो होता ही है; पर साथ ही मज़दूर लोग भी अपना ऐसा अच्छा संगठन कर लेते और ऐसी संस्थाएँ बना लेते हैं, जिनके कारण कारख़ानेदार सहज में उनकी दरिद्रता से अनुचित लाभ नहीं उठा सकते। वे संगठित उद्योग और आंदोलन करके काम करने का समय भी कम करा लेते और अपना वेतन या पारिश्रमिक भी बढ़वा लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन संस्थाओं से उनके सदस्य मज़दूरों को और भी अनेक प्रकार

के लाभ होते हैं। उनकी जान का एक प्रकार से बीमा हो जाता है; और यदि कभी किसी कारण से वे काम से अलग हो जाते या अलग कर दिए जाते हैं, तो उस दशा में भी उन्हें उस संस्था से कुछ सहायता मिलती है, जिससे उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पाता। यदि कभी कारख़ानेदार किसी कारण से कुछ लोगों को अपने यहाँ से अलग कर देता है, तो संस्था की सहायता मिलती रहने के कारण उन्हें कम वेतन पर काम करने के लिये विवश नहीं होना पड़ता। यदि कारख़ानेदार उन्हें फिर नौकर रखना चाहता है, तो उसे उस संस्था से शर्तें तय करनी पड़ती हैं। जब तक वह संस्था उन शर्तों को मंज़ूर नहीं कर लेती, तब तक मज़दूर वहाँ काम करने के लिये नहीं जा सकते, और संस्था से बराबर सहायता पाते रहते हैं।

मज़दूरों के इस प्रकार के संघों के कारण इँगलैंड के मज़दूरों की अवस्था भी बहुत कुछ सुधर गई है, और सरकार तथा कारख़ानेदारों के व्यवहार में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। पहलेपहल जब इस प्रकार के संघ स्थापित होने लगे, तब सरकार ने उन्हें ग़ैर-क़ानूनी ठहराया; क्योंकि कहा यह जाता था कि ऐसी संस्थाएँ षड्यंत्र करके व्यापार के काम में बाधा पहुँचाती हैं। और, तर्क यह उपस्थित किया जाता था कि व्यक्तिशः तो प्रत्येक मज़दूर को इस बात का अधिकार है कि यदि उसे कम वेतन मिलता हो, या वह और किसी कारण से असंतुष्ट हो, तो किसी कारख़ाने में काम करने से इनकार कर

सकता है। पर जब एक से अधिक आदमी मिलकर काम करने से इनकार करें, तो वह षड्यंत्र है, और इसलिये वे लोग दंड के पात्र हैं। अठारहवीं शताब्दी के अंत में बहुत-सी नई-नई कलों का आविष्कार हुआ था, और कारख़ानों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। इसलिये फलतः कारख़ाने में काम करनेवालों की संख्या भी बहुत अधिक हो गई थी। कारख़ानों में मज़दूरों को अनेक प्रकार के कष्ट होते थे, और कोई उन कष्टों को सुननेवाला नहीं था। इसलिये मज़दूरों ने गुप्त रूप से मिलकर अपने कुछ संघ बनाए थे। उन्हीं संघों में वे अपने कष्टों पर विचार करते और उन कष्टों को दूर करने के भी उपाय सोचा करते थे। सन् १८०० ई० में इँगलैंड में एक क़ानून बना, जिसके द्वारा यह निश्चित हुआ कि यदि मज़दूर लोग मिलकर अपना वेतन बढ़ाने या काम करने का समय घटाने का कोई उद्योग करेंगे, तो उन्हें तीन महीने तक की सज़ा दी जा सकेगी। पर सन् १८२५ में एक नया क़ानून बना, जिसके द्वारा यह निश्चित हुआ कि मज़दूरों को एकत्र होकर अपने वेतन और काम करने के समय आदि पर विचार करने का अधिकार प्राप्त है। सन् १८५६ में ऐसी संस्थाओं को कुछ और भी अधिकार प्राप्त हुए। इसके उपरांत बीच में समय-समय पर उनके अधिकार और बढ़ते गए, और अब तो स्वयं सरकार भी बहुत-से अंशों में उन्हें तथा उनकी बातों को मानती है। अब षड्यंत्र की व्याख्या बिलकुल बदल गई है, और संस्थाओं या संघों की बहुत-सी बातों पर स्वतंत्रता-

पूर्वक विचार करने और सरकार तथा कारख़ानेदारों के सामने अपने मंतव्य उपस्थित करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त है।

इन संघों का संगठन भी बहुत ही विलक्षण और मनोरंजक है। जहाँ एक स्थान पर थोड़े-से भी आदमी काम करते हैं, वहाँ वे अपनी एक छोटी सभा बना लेते हैं, और सब लोग उसमें अपने-अपने वेतन के अनुसार थोड़ा बहुत चंदा देते हैं। जब उनमें कोई बीमार होता या अपने काम से अलग कर दिया जाता है, तब उस संस्था से उसे सहायता मिलती है। इसी प्रकार की छोटी-छोटी स्थानीय संस्थाओं के संयोग से उस पेशे के बड़े-बड़े संघ बनते हैं। जैसे, कोयले की खानों, रूई की कलों, रेलवे तथा डाकख़ाने में काम करनेवालों और कपड़ा बनानेवालों के संघ। हरएक पेशे के छोटे-छोटे संघ का भी उस पेशे के बड़े-से-बड़े संघ के साथ संबंध होता है। इस प्रकार एक पेशे के काम करनेवाले देश-भर के लोग एक ही संघ द्वारा संबद्ध होते हैं। इसके बाद भिन्न-भिन्न पेशों के संघों का भी आपस में संबंध रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि कहीं किसी एक पेशे के आदमियों के साथ किसी प्रकार का अन्याय होता है, तो उस पेशे का संघ उस अन्याय के दूर कराने का प्रयत्न करता है। कदाचित् वह अन्याय किसी प्रकार दूर न हुआ, तो वह निश्चय करता है कि इसके लिये अमुक उपाय किया जाना चाहिए, अथवा अमुक समय से सब लोगों को काम करना छोड़ देना चाहिए। संघ का निश्चय

इस संबंध में अटल होता है। उसे पेशे का कोई आदमी तोड़ नहीं सकता। फल यह होता है कि कारख़ानेवालों को बातचीत करके तय करना पड़ता है कि आगे से इस प्रकार का अन्याय न होगा, और इस प्रकार काम होगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि किसी एक पेशेवाले के साथ किसी प्रकार का अन्याय होता है, और वह किसी प्रकार दूर नहीं होता, तो उस पेशे के लोगों के साथ सहानुभूति दिखलाने के लिये और-और पेशे के लोग भी हड़ताल कर देते हैं। ये हड़तालें ऐसी ज़बरदस्त होती हैं कि एक ही समय में एक साथ दस-दस और बीस-बीस लाख आदमी काम छोड़ देते हैं, जिससे देश का सारा काम ही बंद हो जाता है। उस समय लाचार होकर कारख़ानेवालों को तो दबना ही पड़ता है; पर कभी-कभी ऐसी भी नौबत आ जाती है कि सरकार को भी उसमें हस्तक्षेप करना पड़ता है। इस प्रकार पाश्चात्य देशों के मज़दूर अपने संगठित उद्योग और बल से अपने साथ होनेवाले बहुत-से अन्यायों को रोक देते और अपने अधिकारों की बहुत कुछ रक्षा कर लेते हैं। अब तक तो ये संघ केवल पुरुषों के ही थे, पर अब स्त्रियाँ भी अपने स्वतंत्र संघ स्थापित करने लग गई हैं। आशा है, थोड़े ही समय में वे भी अपने ऐसे ही बलिष्ठ और विस्तृत संघ स्थापित कर लेंगी; और इस प्रकार उनके प्रति होनेवाले अन्यायों का बहुत कुछ प्रतिकार हो जायगा।

इँगलैंड की स्त्रियों ने अपनी रक्षा के लिये कुछ और भी

उपाय किए हैं, जिनका थोड़ासा वर्णन कर देना बहुत ही आवश्यक है। उन्होंने अपनी कई सभाएँ स्थापित की हैं, जिनमें से एक का नाम स्त्रियों की शिल्प-परिषद् (Women's Industrial Association) है। यह परिषद् कल-कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों की सामाजिक शिक्षा और उनकी अवस्था के सुधार के उद्देश्य से स्थापित की गई है। इस परिषद् का न तो राजनीति से कोई संबंध है, और न धर्म से ही कोई सम्पर्क है। जहाँ कहीं काम-धंधे के संबंध में कारख़ानेदारों के साथ स्त्रियों का कोई झगड़ा होता है, वहाँ यह परिषद् स्त्रियों को क़ानूनी सलाह देती है; और जहाँ कहीं कारख़ानों आदि के संबंध के क़ानूनों का दुरुपयोग होता है, वहाँ यह हर प्रकार से सुधार करने और दोष दूर करने का प्रबंध करती है। यह परिषद् अपना एक त्रैमासिक पत्र भी निकालती है, जिसमें शिल्प और व्यापार-संबंधी अनेक प्रश्नों का बहुत अच्छा विवेचन होता है। यह समय-समय पर अनेक आवश्यक विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ और लेख आदि भी प्रकाशित करती रहती है, जिनके कारण सर्व-साधारण का ध्यान स्त्रियों और बच्चों के साथ होने वाले अन्याय की ओर आकृष्ट होता रहता है, और उनका बहुत कुछ प्रतिकार भी हो जाता है। यह अपने सदस्यों की अनेक छोटी-छोटी उपसमितियाँ भी बना देती है, जिनके सिपुर्द शिक्षा-प्रचार आदि अनेक प्रकार के काम कर देती है। यदि इसे कहीं पता चलता है कि अमुक स्थान पर कारख़ाने में काम करने

वाली स्त्रियों को अमुक कठिनता का सामना करना पड़ता है, उन्हें अमुक बात का सुबीता नहीं है, या वहाँ अमुक प्रकार से कारख़ाने-संबंधी नियमों की अवहेलना होती है, तो वह उनकी जाँच के लिये तुरंत एक कमेटी बैठाती है। और, यदि कमेटी की जाँच से वह शिकायत ठीक ठहरी, तो उसे दूर कराने का भी तुरंत प्रबंध करती है। जाँच का इसका एक अलग विभाग होता है, जो बराबर किसी-न-किसी पेशे में काम करनेवाली स्त्रियों की अवस्था और उनके साथ होनेवाले व्यवहार आदि की जाँच करता रहता है। इस विभाग के आदमी जाकर कारख़ानों को देखते हैं, उनके मालिकों और उनमें काम करनेवाली स्त्रियों से मिलते हैं, और सब शिकायतें दूर करते हैं। यदि इस प्रकार वह शिकायत दूर नहीं होती, तो वे सरकारी अधिकारियों से मिलकर उनका ध्यान उस ओर आकृष्ट करते हैं, और इस प्रकार वह शिकायत दूर करते हैं। लंदन में अधिकांश दूकानों पर बिक्री के काम के लिये स्त्रियाँ ही नियुक्त की जाती हैं। इस संस्था के अधिकारियों ने सब बड़ी-बड़ी दूकानों पर घूम-घूमकर और उनमें काम करनेवाली स्त्रियों की अवस्था का पता लगाकर, कुछ विशेष नियम और सिद्धांत बनाकर प्रकाशित कर दिए हैं। दूकान के मालकों को अपने यहाँ काम करनेवाली स्त्रियों के साथ उन्हीं नियमों और सिद्धांतों के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। बहुत-सी स्त्रियाँ अपने घर में ही रहकर अनेक प्रकार के शिल्पों द्वारा निर्वाह करती हैं। उन स्त्रियों के लाभ

के लिये भी इस संस्था ने अनेक नियम बनाए हैं, जिनसे उन्हें बहुत लाभ होता है। स्त्रियों को अनेक प्रकार के शिल्पों और दूसरे कार्यों की शिक्षा देने की भी यह संस्था बहुत अच्छी व्यवस्था करती है। जब कभी आवश्यकता होती है, यह संस्था स्त्रियों की अवस्था के सुधार के संबंध में पार्लियामेंट के सदस्यों से प्रश्न आदि भी कराती है, उनकी ओर से आवेदनपत्र तैयार कराती और बड़े-बड़े अधिकारियों के पास डेपुटेशन भेजती है। यदि इतने से भी काम नहीं चलता दिखाई देता, तो समाचार-पत्रों में आंदोलन करती है। अभी यह संस्था इसी प्रकार के और भी अनेक बड़े-बड़े काम करने का विचार कर रही है, और इसका कार्यक्षेत्र तथा प्रभाव दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है।

इसी प्रकार की वहाँ और भी अनेक प्रकार की बड़ी-बड़ी संस्थाएँ हैं, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के काम करती हैं। एक संस्था का काम केवल यही है कि वह कारख़ाने में काम करनेवाली स्त्रियों को यह बतलावे कि उनके हित के लिये कौन-कौन-से क़ानून बने हुए हैं। इन क़ानूनों से परिचित होकर वे स्त्रियाँ अपने अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ होती हैं। यदि कारख़ानेदार उन क़ानूनों की अवहेलना करना चाहते हैं, तो वे तुरंत उसका विरोध करती हैं, और उस बात की सूचना अपनी संस्था को देती हैं, जो उसकी समुचित व्यवस्था करती है। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं, जो लोगों को नागरिकता के कर्तव्य और अधिकार बतलाती हैं, और शिल्प या समाज से संबंध

रखनेवाले आवश्यक और उपयोगी विषयों पर सार्वजनिक व्याख्यान कराती हैं। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं, जो कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों के वेतन आदि बढ़ाने का ही प्रयत्न करती हैं। प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न स्थानों में इसके बड़े-बड़े अधिवेशन भी होते हैं, जिनमें अनेक विषयों पर विचार और भाषण होते हैं। जो स्त्रियाँ छोटे दरजे के काम करती हैं, उन्हें यह संस्था ऊँचे दरजे के काम सिखलाती है, और इस प्रकार उन्हें अधिक वेतन या पारिश्रमिक उपार्जित करने के योग्य बनाती है। यह ऐसे शिक्षालय स्थापित करती है, जिनमें युवकों और युवतियों को यह सिखलाया जाता है कि अमुक पेशे में इस प्रकार काम करना पड़ता है, और अमुक विभाग में इस प्रकार रहना पड़ता है। इस प्रकार वह लोगों को सब तरह के काम करने के लिये तैयार करती है। प्रत्येक विषय या विभाग की शिक्षा के लिये उस विषय या विभाग के अच्छे-अच्छे दक्ष लोग नियुक्त किए जाते हैं, और उन्हीं विषयों के और भी अधिक दक्षों की समिति उनकी सारी व्यवस्था करती है। इस संस्था के द्वारा जो लोग किसी विषय की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें जल्दी और अच्छे वेतन पर अच्छा काम मिल जाता है।

इँगलैंड में आरंभिक शिक्षा बिलकुल अनिवार्य है। प्रत्येक बालक को स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। पर सभी बालकों के माता-पिता ऐसे नहीं हो सकते, जो उन्हें

बराबर पढ़ाया ही करें, और उनसे किसी प्रकार का काम न लिया करें। इसीलिये वहाँ बहुत-से ऐसे बालक भी होते हैं, जो स्कूल से छुट्टी पाने पर अनेक प्रकार के छोटे-मोटे फुटकल काम किया करते हैं। उदाहरणार्थ, वे घर-घर जाकर दूध पहुँचा आते हैं, अख़बार बाँट आते हैं, और फल-फलहरी तथा खिलौने आदि बेच लाते हैं। इस प्रकार के कामों से उन्हें जो कुछ मिलता है, उससे उनका थोड़ा बहुत निर्वाह हो जाता है। पर अधिकांश बड़े-बड़े अँगरेज़ोंका यही मत है कि बालकों से, इस छोटी उमर में और पढ़ाई की अवस्था में, काम लेने का उनके भावी जीवन पर बहुत ही बुरा परिणाम होता है। इसका मुख्य कारण वे यह बतलाते हैं कि इस प्रकार के काम आर्थिक दृष्टि से विशेष लाभदायक तो होते ही नहीं, और न ऐसे कामों में लगकर बालक कोई ख़ास काम या पेशा ही सीख सकते हैं। इसीलिये बड़े होने पर वे कोई अच्छा या भारी काम नहीं कर सकते, और जन्म-भर उन्हीं छोटे-मोटे कामों में लगे रहते हैं। जो हो; पर हमारे यहाँ की अवस्था इससे बहुत भिन्न है। हमारे देश में शिक्षा अनिवार्य नहीं है। अतः यहाँ यदि देहात के लोग अपने बालकों को खेती-बारी आदि के कामों में लगावें, तो किसी को विशेष आपत्ति नहीं हो सकती। पर, फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं कि छोटी अवस्था के बालकों को जहाँ तक हो सके, शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए, और उसी के साथ-साथ उन्हें ऐसे कामों की भी शिक्षा मिलनी चाहिए,

जिससे वे बड़े होने पर स्वतंत्रता-पूर्वक अपना निर्वाह कर सकें। ऐसी कोरी पढ़ाई, जिसके साथ किसी शिल्प या व्यवसाय आदि की शिक्षा न हो, कभी लाभदायक नहीं हो सकती। उससे तो बालक और भी चौपट हो जाते हैं, और आजन्म अकर्मण्य ही बने रहते हैं। अतः हमारे देश में सबसे पहले इस बात की व्यवस्था होनी चाहिए कि बालकों को साधारण शिक्षा के साथ-साथ किसी शिल्प या व्यवसाय आदि की भी शिक्षा मिले। हमारे देश को इस समय सबसे अधिक दो ही बातों की आवश्यकता है—एक शिक्षा की और दूसरे संगठन की। और, जब इन दोनों बातों की यथेष्ट व्यवस्था हो जायगी, तब आज-कल का होनेवाला धन-क्षय और जन-क्षय बिलकुल रुक जायगा। उस समय हमारा देश न तो इतना दुर्बल और हीन रहेगा, और न इतना धनहीन तथा दरिद्र ही। इसके लिये हमारे देश की स्त्रियों और पुरुषों को मिलकर पूरा-पूरा उद्योग करना चाहिए।

———————

तेरहवाँ प्रकरण

उद्धार-कार्य

एक विद्वान् का मत है कि जिस व्यक्ति में पश्चात्ताप करने का गुण और सुधार करने की शक्ति होती है, उसके लिये भविष्य सदा खुला रहता है। इसका मतलब यही है कि जो लोग अपने पुराने दुष्कर्मों के लिये दुःखी होते हैं, और आगे अपने-आपको सुधारना चाहते हैं, वे चाहे कितने ही बुरे क्यों न हों; पर, फिर भी, यदि चाहें तो भविष्य में अपना सुधार करके अच्छी उन्नति कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध वीर नेपोलियन ने एकबार कहा था—"जब बहुत-से पापी और दुराचारी एक स्थान पर एकत्र होते हैं, तब वे आपस में एक दूसरे को और भी अधिक चौपट कर देते हैं; और जब वे सजा भोगकर, जेल से निकालने के बाद, फिर समाज में प्रवेश करते हैं, तब वे पहले से और भी अधिक ख़राब हो जाते हैं।"

आजकल समाज के सामने यह एक बहुत बड़ा प्रश्न उपस्थित है कि जो लोग एक बार कोई अपराध करके सज़ा पावें, वे जब सज़ा भोग चुकें, तब उनके सुधार का क्या उपाय होना

चाहिए ? हमारे देश में अभी इस प्रश्न की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया है ; क्योंकि हमारे यहाँ की परिस्थिति और देशों से कुछ विलक्षण है। यहाँ जो व्यक्ति एक बार जेल हो आता है, वह मानों एक प्रकार से सदा के लिये पतित हो जाता या कम-से-कम सदा के लिये पतित समझा जाता है। उसके इस पतित होने का चाहे और कोई कारण हो या न हो, पर उसके लिये यही एक कारण यथेष्ट होता है कि वह जेल की रोटी खा आता है। पर पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के कोई विचार नहीं हैं। वहाँ जो लोग एक बार कोई अपराध करने के कारण सज़ा पाते और सज़ा भोगने के बाद फिर समाज में आते हैं, वे इस दृष्टि से तो पतित नहीं समझे जाते कि वे जेल की रोटी खा आए हैं; पर हाँ, केवल इसी दृष्टि से अवश्य नीच और घृणित समझे जाते हैं कि वे जेल हो आए हैं। अब तो बहुत-से लोग यह बात बहुत अच्छी तरह समझने लगे हैं कि जेल जाने के कारण अपराधियों का कोई सुधार नहीं होता, उलटे वे वहाँ से और भी बिगड़कर और ख़राब होकर वापस आते हैं। पहले यही समझा जाता था कि जेल जाने से लोग सुधर जाते हैं, और इसीलिये वे जेल भेजे भी जाते हैं। पर अब इस बात के अनेक प्रमाण मिले हैं कि चाहे जेल जाने के डर से भले ही कुछ लोग अपराधों से बचे रहें, किंतु जेल जाने के उपरांत उनमें किसी प्रकार का सुधार नहीं होता, उलटे उनमें और भी अनेक दुर्गुण आ जाते हैं, और वे समाज

के लिये पहले से और भी भीषण हो जाते हैं। ऊपर महावीर नेपोलियन का जो कथन उद्धृत किया गया है, वह अक्षरशः सत्य है। नेपोलियन ने अपने समय में जो कुछ कहा था, वह केवल अपने अनुभव और निरीक्षण के आधार पर कहा था। पर आजकल, जब कि सभी बातों के बड़े-बड़े लेखे तैयार किए जाते हैं, नेपोलियन के उक्त कथन की सत्यता बराबर प्रमाणित होती जाती है। एक अवसर पर इँगलैंड के होम-सेक्रेटरी मि० चर्चिल ने कहा था कि सन् १९०० से १९०३ तक इँगलैंड में जितने क़ैदी जेलों से सज़ा भोगकर छूटे थे, उनमें तीन-चौथाई फिर पहले से भी अधिक लंबी-लंबी सज़ाएँ भोगने के लिये जेलों में चले गए। ऐसी दशा में यह कैसे माना जा सकता है कि जेल जाने पर लोगों का सुधार होता है? हाँ, उनके और भी अधिक पतित होने का अवश्य प्रमाण मिलता है, जिससे सिद्ध होता है कि जेलों में जाकर लोगों की अपराध करने की प्रवृत्ति और भी बढ़ जाती है। इँगलैंड के क़ैदियों का सन् १९०८ का जो लेखा तैयार हुआ था, उसे देखने से मालूम होता है कि उस साल वहाँ के जेलों में ११,६२८ क़ैदी गए थे, जिनमें ८,२२२ क़ैदी ऐसे थे, जो पहले भी सज़ा भुगत चुके थे। इस प्रकार मानों सैकड़े ७०-७१ का अनुपात पड़ता है। यही दशा प्रायः सब देशों की है। जो जेल अपराधियों के सुधार के लिये बनाए जाते हैं, वे ही प्रकारांतर से उन्हें और भी अधिक अपराधी बनाने में सहायक होते हैं।

ऐसी दशा में समाज के दो ही कर्तव्य हो सकते हैं। एक तो यह कि वह जेलों के सुधार का आंदोलन करे; और दूसरा यह कि जो लोग एक बार जेल होकर लौट आए हों, उनके सुधार का प्रयत्न करे, और जहाँ तक हो सके, उन्हें किसी अच्छे और उपयोगी काम में लगावे। और, यदि इतने पर भी वे फिर दुबारा कोई भीषण अपराध करें, तो यह बात अच्छी तरह समझ ले ी चाहिए कि अब तक जेलों का जो उद्देश्य माना और समझा जाता है, वह इन जेलों से न कभी पूरा होता और न हो सकता है।

हमारे देश में अपराध करनेवाली स्त्रियों की संख्या अनेक कारणों से बहुत ही कम हुआ करती है। कुछ तो शिक्षा का अभाव, कुछ स्वतंत्रता का अभाव, कुछ परदे की प्रथा, कुछ धर्मभीरुता और कुछ इसी प्रकार के और अनेक कारण हैं, जो यहाँ की स्त्रियों से अधिक अपराध नहीं होने देते। पर पाश्चात्य देशों में, जहाँ शिक्षा का भी बहुत अधिक प्रचार है, स्त्रियों को स्वतंत्रता भी बहुत अधिक प्राप्त है, परदे की भी कोई प्रथा नहीं है, और जहाँ स्त्रियों के कार्य-क्षेत्र भी बहुत अधिक हैं, वहाँ अपराधिनी स्त्रियों की संख्या भी स्वभावतः बहुत अधिक होती है। वहाँ प्रायः ऐसा होता है कि छोटे-छोटे अपराधों के लिये भी स्त्रियों को प्रायः छोटी-मोटी सज़ाएँ हो जाया करती हैं। और, फिर जब ऐसी स्त्रियाँ सज़ा भोगकर जेलख़ाने से निकलती हैं, तब उन्हें कोई अपने यहाँ घुसने नहीं देता। सब लोग यही

कहते हैं कि यह तो जेल हो आई है, इसे अपने यहाँ कौन रक्खेगा। इस प्रकार फिर वह कोई काम करने के योग्य नहीं रह जाती, और उसे लाचार होकर अपने उदर-निर्वाह के लिये कोई-न-कोई ऐसा काम करना पड़ता है, जो क़ानून की दृष्टि से अपराध हो, और उसके कारण उसे पहले से भी अधिक लंबी सज़ा भोगनी पड़े। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में स्त्री-अपराधियों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। इँगलैंड में सबसे पहले, सन् १८६७ में, श्रीमती मेरिडेथ नाम की एक भद्र महिला का ध्यान इस ओर गया था। उसने देखा कि एक बार जेल हो आने पर स्त्रियाँ प्रायः कोई काम करने के योग्य नहीं रह जातीं; बल्कि यों कहना चाहिए वे तो बहुत कुछ काम करने के योग्य रहती हैं, पर समाज उन्हें कोई काम करने के योग्य नहीं रहने देती। वह उन्हें इतना नीच और पतित समझती है कि उनके सुधार से बिलकुल निराश हो जाती है, और उन्हें अपने पास से दूर ही रखना चाहती है। श्रीमती मेरिडेथ ने ऐसी स्त्रियों को काम देने के लिये कपड़े की धुलाई का एक कारख़ाना खोला। तब से इस संबंध में इँगलैंड में बहुत कुछ काम हुआ है। अब तो वहाँ कई ऐसे आश्रम बन गए हैं, जिनमें जेलों से सज़ा भोगकर निकलनेवाली स्त्रियाँ भरती की जाती हैं, और उन्हें अनेक प्रकार के उपयोगी कामों की शिक्षा दी जाती है। कुछ स्थानों में वे कृषि-कार्यों में भी लगाई जाने लगी हैं। इन व्यवस्थाओं का परिणाम भी बहुत अच्छा देखने में आता है;

क्योंकि उनमें बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो दुबारा कोई अपराध करके जेल जाती हैं। साधारणतः अधिकांश स्त्रियाँ अपना काम-धंधा करके अच्छी तरह जीवन व्यतीत करती हुई ही देखी जाती हैं।

हमारे देशवासी मुक्तिदायिनी सेना (Salvation Army) के नाम और कामों से बहुत भली भाँति परिचित होंगे। इस सेना के सैनिक प्रायः सारे संसार में समाज-सुधार और लोकोपकार के बहुत बड़े-बड़े और उपयोगी काम कर रहे हैं। जेल से निकले हुए कैदियों के सुधार के लिये इस सेना ने जो कुछ काम किया है, वह भी बहुत ही प्रशंसनीय और विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य है। अनुभव और परीक्षा से विदित हुआ है कि क़ैद भोग-कर छूटे हुए लोगों के जीवन पर खेतों में रहकर शारीरिक परिश्रम करने का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है, और उनके जीवन में बहुत जल्दी और बहुत अधिक सुधार हो जाता है। ऐसे लोग जब फिर एक बार अच्छी तरह खाने-कमाने लग जाते हैं, तो फिर किसी अपराध करने की ओर उनकी सहसा प्रवृत्ति ही नहीं होती, और वे बहुत अच्छी तरह शुद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। यदि भारतवर्ष में भी जेल से लौटनेवाले पुरुषों और स्त्रियों के सुधार के लिये इसी प्रकार के उद्योग किए जायँ, तो उनसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है, और समाज के माथे से एक बहुत बड़ा कलंक मिटाया जा सकता है।

कोई बीस-पचीस वर्ष हुए, इँगलैंड के हैड्ले-नामक स्थान

में मुक्तिदायिनी सेना ने तीन हज़ार एकड़ ज़मीन ख़रीदी थी। जिस समय वह ज़मीन ख़रीदी गई थी, उस समय वह बिलकुल बेकार पड़ी हुई थी। उससे एक पैसे की भी आमदनी नहीं होती थी, वह बिलकुल निरर्थक समझी जाती थी। मुक्तिदायिनी सेना ने जेल से निकलनेवाले लोगों को, सुधारने और काम देने के उद्देश्य से, वहीं रखना और उनसे अनेक प्रकार के काम लेना आरंभ किया। परिणाम यह हुआ है कि आज वही ज़मीन बिलकुल चमन और हरी-भरी हो रही है। वहाँ चारों ओर बग़ीचे लगे हुए हैं, जिनमें बहुत अच्छी-अच्छी तरकारियाँ और फल-फूल होते हैं। वहाँ बहुत-से मुरग़े और मुरग़ियाँ पाली जाती हैं, जिनके अंडों और बच्चों का बहुत अच्छा रोज़गार होता है। वहाँ बैल और घोड़े आदि भी तैयार किए जाते हैं। एक ओर ईंटों का भट्ठा भी बना हुआ है। वहाँ बहुत-से लोग नियुक्त हैं, जो जेल से छूटकर आए हुए अपराधियों को तरह-तरह के बहुत अच्छे-अच्छे काम सिखलाते हैं, और वे लोग काम सीखकर भली भाँति जीविका-निर्वाह करने लग जाते हैं। जो लोग एक बार शराब, जुए और ऐयाशी आदि में अपना सर्वस्व खोकर किसी अपराध में जेल हो आते हैं, वे कुछ दिनों तक इस स्थान में रहकर इतने सच्चरित्र और योग्य हो जाते हैं कि बहुधा वे धीरे-धीरे फिर अपनी पूर्व-स्थिति पर पहुँच जाते और सुख-पूर्वक जीवन बिताने लगते हैं। जब वे आश्रमों में प्रवेश करने लगते हैं, उस समय उनसे यह प्रतिज्ञा करा ली जाती है कि हम

आश्रम के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करेंगे, और कभी मदिरा और किसी मादक-द्रव्य का सेवन न करेंगे। जो लोग आश्रम में प्रवेश करते हैं, वे प्रायः खेती-बारी के कामों से बिलकुल ही अनभिज्ञ हुआ करते हैं; और इसलिये पाठक तथा पाठिकाएँ सहज में ही इस बात का अनुमान कर सकेंगी कि वे आरंभ में बहुत समय तक कोई ऐसा काम नहीं कर सकते, जो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो। उन्हें प्रायः सभी बातें बिलकुल आरंभ से सिखानी पड़ती हैं। आश्रम में उन्हें भोजन और रहने के लिये स्थान तो मिलता ही है, पर साथ में कुछ मज़दूरी भी मिलती है। यह मज़दूरी परिश्रम और कार्य के अनुसार हुआ करती है। जो जितना ही अधिक परिश्रम और उत्तम काम करता है, उसे उतनी ही अधिक मज़दूरी मिलती है। इसलिये लोग कुछ तो देखादेखी और कुछ अधिक मज़दूरी की लालच से अच्छा और अधिक काम करने लगते और मन लगाकर अच्छे-अच्छे काम सीखते हैं। जो लोग परिश्रमी और चतुर होते हैं, वे दो-ही चार महीने में बहुत-सा काम सीख लेते और अच्छी मज़दूरी पाने लगते हैं। उन्हें जो कुछ मज़दूरी मिलती है, उसे वे अपने पास जमा रखते हैं; क्योंकि वहाँ ख़र्च करने का तो कोई साधन होता ही नहीं। इस प्रकार उन्हें मितव्ययी होने की भी अच्छी शिक्षा मिलती है, और थोड़े ही समय में वे कुछ पूँजी भी जमा कर लेते हैं। पीछे जब वे आश्रम छोड़कर निकलते हैं, तब उनके पास कोई काम आरंभ करने के लिये कुछ पूँजी भी

रहती है। इसलिये उन्हें जीवन-निर्वाह में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। जो लोग अधिक परिश्रम-पूर्वक और अच्छा काम करते हैं, उनका दरजा भी बराबर बढ़ता जाता है, और उन्हें अधिक मज़दूरी के अतिरिक्त अच्छा भोजन और रहने के लिये अच्छा स्थान भी मिलने लगता है। इस प्रकार के अनेक प्रलोभनों तथा सात्विक जीवन व्यतीत करने के कारण, थोड़े ही समय में, वे बहुत अधिक उन्नति कर लेते हैं। आश्रम में एक पुस्तकालय भी है, जहाँ वे लोग पुस्तकें और समाचार-पत्र आदि पढ़ सकते और संसार की बातों से भी भली भाँति परिचित हो सकते हैं। उनमें से जो लोग बहुत अधिक योग्य हो जाते हैं, उनकी नौकरी या और किसी दूसरी जीविका की भी व्यवस्था मुक्तिदायिनी सेना की ओर से हो जाती है। इन आश्रमों में जो चीज़ें तैयार होती हैं, वे आसपास के बाज़ारों में बिकने के लिये जाती हैं, और अच्छे दामों पर बिकती हैं। तो भी उन चीज़ों के दाम से आश्रम का ख़र्च नहीं चलता, और उसके लिये लोगों से कुछ चंदा लेना पड़ता है। लेकिन इससे समाज का बहुत अधिक उपकार होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। जो लोग फिर समाज में जाकर लुच्चे, उचक्के उठाईगीरे और बदमाश होते, वे इस आश्रम की कृपा से भले आदमी, परिश्रमी और सच्चरित्र हो जाते हैं। इस प्रकार स्वयं उन लोगों का भी कल्याण होता है, और समाज का भी। और फिर, दूसरी बात यह है कि उनको ख़ैराती ढंग का काम नहीं

सिखलाया जाता, बल्कि ऐसा काम सिखलाया जाता है, जिससे वे समाज और राष्ट्र के लिये बहुत अधिक उपयोगी हो जाते हैं। इस व्यवस्था के संबंध में कुछ लोग यह आपत्ति करते हैं कि ऐसे आश्रमों में काम करनेवालों को जो बहुत थोड़ी मज़दूरी दी जाती है, उसके कारण बाहर कारख़ानों आदि में काम करनेवाले साधारण मज़दूरों की मज़दूरी की दर गिर जाती है। इस प्रकार की आपत्तियाँ प्रायः वही लोग करते हैं, जिनकी दृष्टि सदा आर्थिक और स्वार्थपूर्ण रहती है, जिनमें मनुष्यत्व तथा सहृदयता का बिलकुल अभाव रहता है, और जिनकी समझ में यह बात ही नहीं आती कि संसार में परोपकार भी कोई चीज़ है, और उसके लिये भी मानव-हृदय में कोई स्थान होना चाहिए। पर यदि केवल आर्थिक दृष्टि से ही देखा जाय, तो भी उनकी इस आपत्ति में कोई सार नहीं दिखलाई देता; क्योंकि यदि जेल से निकले हुए लोग कहीं बाहर कारख़ाने में काम करने के लिये जायँ, तो पहले तो कोई उन्हें जल्दी अपने यहाँ रक्खेगा ही नहीं, और यदि दया करके रख भी लेगा, तो भी उन्हें उतनी अधिक मज़दूरी नहीं देगा, जितनी साधारण और अच्छा काम सीखे हुए लोगों को दी जाती है। इसलिये ऐसे लोगों की साधारण मज़दूरों के साथ आर्थिक दृष्टि से भी कोई प्रति-द्वंदिता नहीं हो सकती। और फिर, ऐसे आश्रम किसी आर्थिक लाभ के विचार से तो स्थापित किए ही नहीं जाते; उनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य तो परोपकार ही होता है।

अतः आश्रम जो लोगों को कम मज़दूरी देता है, वह अपने आर्थिक लाभ के विचार से नहीं, बल्कि इस विचार से कि उसे सर्व-साधारण से धन एकत्र करके उसमें लगाना पड़ता है। चाहे आश्रम को ऐसे लोगों की शिक्षा आदि से किसी प्रकार का आर्थिक लाभ न भी हो, फिर भी उससे समाज का जितना अधिक लाभ होता है, उसका हिसाब रुपयों और आनों में नहीं लगाया जा सकता। इस आश्रम से निकले हुए अधिकांश लोग ब्रिटिश-उपनिवेशों में चले जाते हैं, और वहीं खेती-बारी या इसी प्रकार का और कोई काम करके बस जाते हैं। इस प्रकार वे अपने साम्राज्य के विस्तार में भी, प्रकारांतर से, बहुत कुछ सहायक हुआ करते हैं।

जो लोग क़ैद भुगतकर जेलों से बाहर निकलते हैं, उनके उपकार और लाभ के लिये मुक्तिदायिनी सेना और भी कई प्रकार के काम करती है। इस सेना के अधिकारियों को जेलों में जाकर उनका निरीक्षण करने की भी आज्ञा मिलती है। जब वे अधिकारी जेल में जाते हैं, तब जो क़ैदी उनसे मिलना चाहते हैं, वे सब अलग-अलग और एकांत में उनसे मिलकर बातचीत कर सकते हैं। क़ैदी उन लोगों से अपने भविष्य के संबंध में परामर्श करते हैं, और अधिकारी उन्हें, जहाँ तक हो सकता है, बहुत अच्छी सलाह देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ क़ैदियों की सज़ा कुछ कारणों से थोड़ी घटा दी जाती है; और सज़ा के बाकी समय तक के लिये उन्हें सरकार मुक्तिदा-

यिनी सेना के अधिकारियों के हाथ में सौंप देती है, मानों वे एक प्रकार से सेना के पास अमानत में रख दिए जाते हैं। जब तक ऐसे लोगों के लिये काम की कोई व्यवस्था नहीं होती, तब तक सेना उनका सारा व्यय अपने पास से देती और उन्हें अपने यहाँ रखकर कुछ-न-कुछ काम सिखलाती रहती है। सेना के अधिकारियों में बहुतेरी स्त्रियाँ भी होती हैं। वे प्रायः अपना सारा समय स्त्री-क़ैदियों से मिलने-जुलने और उन्हें परामर्श देने में ही बिताती हैं; और जहाँ तक हो सकता है, उनके लिये भी वैसी ही व्यवस्था करती हैं, जैसी पुरुषों के लिये की जाती है। यद्यपि मुक्तिदायिनी सेना को बड़े-बड़े नम्बरी अपराधियों और विकट दुश्चरित्रों से काम पड़ता है, फिर भी उसे अपने प्रयत्न में जो सफलता होती है, वह बहुत अधिक और आशातीत है। उसकी इस सफलता का कारण एक विद्वान् ने यह बतलाया है कि वह जिस क़ैदी से जो वादा कर देती है, उसे बराबर पूरा करती है। किसी क़ैदी को वह कोई झूठी आशा नहीं देती। इसके अतिरिक्त सेना के अधिकारी उन क़ैदियों के साथ बहुत ही प्रेमपूर्ण और सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करते हैं, जिससे उनमें एक नई आशा, नए आत्मसम्मान और नए जीवन का संचार होता है। वे समझने लगते हैं कि इस गई-बीती हालत में भी हमारा कोई आश्रयदाता है, और हमारे लिये अब भी समाज में कहीं स्थान मिल सकता है। ऐसे क़ैदियों में जो लोग बहुत अच्छे निकलते हैं, और जिनके विचार

सेना के अधिकारियों के साथ रहते-रहते बहुत उच्च हो जाते हैं, वे भी आवश्यकता पड़ने पर सेना के अधिकारी बना दिए जाते और इसी काम में लगा दिए जाते हैं। वे पहले के पापी और अपराधी होते हैं, पर पीछे से अपना जीवन सुधार लेते हैं। ऐसे लोगों की अवस्था देखकर और बातें सुनकर क़ैदियों को और भी अधिक आशा होने लगती है, और वे समझने लगते हैं कि चाहे हम कितने ही पतित क्यों न हो गए हों ; पर, फिर भी, यदि हम चाहें, तो अपने-आपको बहुत कुछ सुधार सकते हैं। यही आशा और यही भाव उनके सुधारने में और अधिक सहायक हुआ करता है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि एक भलाई से सौ भलाइयाँ पैदा होती हैं, और एक बुराई से हज़ार बुराइयाँ। इस कथन की सत्यता यहाँ आकर बहुत अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है।

इस मुक्तिदायिनी सेना ने ये सब काम केवल इँगलैंड या योरप में ही नहीं किए हैं, बल्कि इसका कार्य-क्षेत्र प्रायः सारे संसार में विस्तृत है। हमारे भारतवर्ष में भी इस सेना का बहुत बड़ा पड़ाव है, जिसके द्वारा अनेक रूपों में बहुत-से अच्छे काम होते हैं। भारतवर्ष में यहाँ के आदिम निवासियों के प्रायः तीस लाख ऐसे वंशज हैं, जिनके रहने के लिये कोई घर-बार नहीं है, और जो सदा चारों ओर ख़ानाबदोशों की भाँति घूमते-फिरते रहते हैं। ये लोग बहुत दरिद्र होते हैं, और प्रायः चोरी आदि करके अपना निर्वाह करते हैं। ये सदा अनेक प्रकार के

अपराध करते रहते हैं, इसलिये सरकारी परिभाषा में "जरायमपेशा" कहलाते हैं। इन पर पुलीस की बहुत कड़ी नज़र रहती है। जहाँ-जहाँ इनकी कोई टोली जाती है, वहाँ-वहाँ इनके साथ पुलीस के कुछ सिपाही, गोड़ैत या चौकीदार आदि भी रहते हैं। सरकार इन लोगों को सज़ाएँ देते-देते हार गई, इन पर निगाह रखते-रखते थक गई, इनकी व्यवस्था करते-करते निराश हो गई ; पर ये लोग प्रायः जहाँ-के-तहाँ ही रहे। इनका कुछ भी सुधार न हो सका। अभी कुछ ही वर्षों की बात है कि संयुक्तप्रांत की सरकार ने इन्हें अपने प्रांत से बाहर निकाल दिया था। पर ये लोग आख़िर जाते कहाँ ? इसलिये घूम-फिरकर फिर इसी प्रांत में लौट आए। लाचार होकर इस प्रांत के भूतपूर्व छोटे लाट सर जान हिवेट ने मुक्तिदायिनी सेना के अधिकारियों से प्रार्थना की कि आप लोग किसी प्रकार इनका सुधार करें। जब से मुक्ति-सेना के अधिकारियों ने इन लोगों के सुधार का काम अपने हाथ में लिया है, तब से ये लोग कुछ मिहनत-मज़दूरी करके कमाने लगे हैं। कुछ समय के उपरांत इनमें से कुछ लोगों ने स्वयं ही यह इच्छा प्रकट की कि हम लोग क़ालीन बुनने के कारख़ानों में भरती किए जायँ। इसके सिवा कुछ और ऐसे काम थे, जिनमें मुक्ति-सेना के अधिकारी उन लोगों को लगाना चाहते थे। उन कारख़ानों में भरती होकर काम करने की भी इच्छा उन लोगों ने प्रकट की। अब उनमें बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो मामूली कपड़े, दरियाँ और क़ालीन

आदि बुनने अथवा बटुए, संदूक़, रस्से और इसी तरह की और अनेक वस्तुएँ बनाने लग गए हैं। अब इन लोगों में काम करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, और ये लोग बहुत कुछ सुधरते जाते हैं। इसका मुख्य कारण कदाचित् यही है कि मुक्ति-सेना के अधिकारी इन्हें पतित और नीच नहीं समझते, बल्कि इन्हें अपना भाई समझकर सुधारने का उद्योग करते हैं। ये लोग काम करना तो बहुत जल्दी सीख जाते हैं; लेकिन बहुत दिनों, बल्कि पुश्तों से, इनमें आवारा-गरदी चली आई है, इसलिये अभी प्रायः बहुत मन लगाकर या निरंतर नहीं काम करते। जब कभी अवसर पाते हैं, तब फिर अपने पुराने ढंग पर लग जाते हैं, और चोरी करने अथवा डाके डालने लगते हैं। तो भी जिस ढंग से वे काम में लग रहे हैं, उसे देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आज नहीं, तो कुछ दिनों बाद ये लोग बहुत कुछ ठिकाने आ जायँगे, और भले आदमियों की तरह काम करने लगेंगे। मुक्ति-सेना को इन जरायम-पेशा लोगों के सुधार में जो सफलता हुई है, उसे देखते हुए हमें इस संस्था के इस सुधार-संबंधी कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा ही करनी पड़ती है। पुलीस और जेल से जिन लोगों का कुछ भी सुधार नहीं हुआ, उन लोगों में उक्त सेना ने बहुत कुछ सुधार कर दिखलाया। यह कोई साधारण बात नहीं है।

जेल तो सारे संसार में हैं, और उनमें अधिकांश एक ही तरह के हैं। उन जेलों के अनुभव से प्रायः समस्त संसार के

विचारशीलों ने यही स्थिर किया है कि अपराधियों के चरित्र पर जेल के जीवन का कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, उलटे बहुत अंशों में वह और भी बुरा हो जाता है। जो लोग एक बार जेल हो आते हैं, उनमें से अधिकांश जेल की कठिनाइयों को कोई चीज़ ही नहीं समझते; और अनेक तो फिर भी ऐसे ही अपराध करते हैं, जिनके कारण वे पुनः जेल भेज दिए जाते हैं। इसमें कुछ तो समाज का दोष है, और कुछ पुलीस तथा अधिकारियों का। समाज ऐसे लोगों से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखती, और न उनकी जीविका आदि का ही कोई प्रबंध करती है। उधर पुलीस भी ऐसे लोगों के पीछे पड़ी रहती है, और जब अवसर पाती है, तब उन्हें जेल भेजने का प्रबंध करती है। जो व्यक्ति एक बार जेल हो आता है, उसे दुबारा और भी अधिक समय के लिये जेल भेजने में अदालत को भी कोई संकोच नहीं होता; साधारण-से-साधारण अपराध के लिये भी वह उसे बहुत अधिक समय तक के लिये जेल भेज देती है। इस प्रकार जेल मानों लोगों के जीवन सुधारने के बदले उलटे उन्हें और अधिक नष्ट करने का साधन बन जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की दशा तो और भी अधिक ख़राब हो जाती है। इसीलिये संसार के सभी बड़े-बड़े समझदार कोई ऐसा उपाय सोचने में लगे हैं, जिससे इस दुर्दशा से समाज की रक्षा हो। सुनते हैं, अमेरिका के कुछ देशों में ऐसी व्यवस्था है कि अपराधी को पहले अपराध के समय, चाहे उसका अपराध छोटा हो या बड़ा,

बहुत ही थोड़ी—प्रायः तीन या छः मास तक की—सज़ा दी जाती है। और, जब वे पहली सज़ा भोगकर निकलने लगते हैं, तब उन्हें सावधान करके किसी ऐसी संस्था के सिपुर्द कर दिया जाता है, जो ऐसे लोगों के सुधार के लिये ही स्थापित होती है। यदि वे लोग सुधर गए, तब तो ठीक ही है; और यदि न सुधरे और उन्होंने फिर कोई अपराध किया, तो बिना इस बात का विचार किए कि उनका अपराध छोटा है या बड़ा, वे बहुत अधिक दिनों के लिये, प्रायः पाँच-सात वर्षों के लिये, जेल भेज दिए जाते हैं। यदि दूसरी बार जेल से निकलने के उपरांत भी वे कोई अपराध करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर वे जीवन-भर के लिये जेल में बंद कर दिए जाते हैं। भारत में तो ढूँढ़ने पर ऐसे सैकड़ों-हज़ारों आदमी मिलेंगे, जो बीस-बीस और पचीस-पचीस बार जेल हो आए हों; पर उक्त देशों में जो व्यक्ति तीसरी बार जेल जाता है वह फिर जीते-जी जेल से निकल ही नहीं सकता। इस समय भारतवर्ष में और सारे संसार के अधिकांश देशों में जेलों की जो प्रथा प्रचलित है, उसकी अपेक्षा उक्त प्रथा अवश्य ही बहुत कुछ अच्छी है, और उसके कारण बहुत-से लोगों का जीवन सदा के लिये नष्ट होने से बच जाता है। पर, फिर भी, उसमें भी अनेक दोष हैं, और लोग इससे भी अधिक उत्तम उपाय सोचने की चिंता में लगे हुए हैं। अन्य दोषों में एक बड़ा दोष यह है कि कभी-कभी कुछ लोगों के जीवन तो अवश्य ही सदा के लिये नष्ट हो जाते हैं।

ऐसे उपायों से हमारा संबंध इसलिये बहुत ही कम है कि हमें जेलों की व्यवस्था में सुधार करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिये हमें इस विषय को जहाँ-का-तहाँ छोड़कर ऐसे उपायों का अवलंबन करना चाहिए, जिससे जेल से लौटे हुए लोगों के जीवन में सुधार हो सके, और उनके द्वारा जेल जाने की नौबत न आवे। साथ ही हमें कुछ ऐसे उपायों का भी अवलंबन करना चाहिए, जिनके द्वारा जेल के इस सत्यानाशी प्रभाव का आरंभ में ही समूल नाश हो जाय, और वह बढ़कर समाज का नाश न करने पावे। इँगलैंड, अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी आदि अनेक पाश्चात्य देशों में कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ हैं, जिनके द्वारा युवकों और युवतियों के आचरण में बहुत कुछ सुधार किया जाता है, जिससे उनके दुबारा जेल जाने की जल्दी नौबत ही नहीं आती। यहाँ हम संक्षेप में उन्हीं उपायों और व्यवस्थाओं का कुछ वर्णन करना चाहते हैं।

जब इँगलैंड के अधिकारियों ने देखा कि नवयुवकों के चरित्र पर जेल के जीवन का इतना भीषण और घातक प्रभाव पड़ता है कि उनमें से अधिकांश बार-बार लौटकर फिर जेल में ही आते हैं, तब सन् १८५४ में वहाँ रिफ़ारमेटरी स्कूलों के संबंध का ऐक्ट पास हुआ। तब से वहाँ यह व्यवस्था है कि बारह वर्ष से ऊपर और सोलह वर्ष के नीचे के जो बालक कोई ऐसा अपराध करते हैं, जिसके कारण वे जेल भेजे जा सकते हों, तो वे जेल में नहीं भेजे जाते, बल्कि किसी रिफ़ारमेटरी स्कूल

में भेज दिए जाते हैं। भारतवर्ष में भी यही प्रथा प्रचलित है, और यहाँ प्रायः प्रत्येक प्रांत में एक रिफ़ारमेटरी स्कूल स्थापित है। हमारे संयुक्त-प्रांत में ऐसा रिफ़ारमेटरी स्कूल चुनार के क़िले में है। ऐसे स्कूलों में अपराधी बालकों को रखकर उन्हें अनेक प्रकार के काम सिखलाए जाते हैं, और उनके चरित्र में सुधार करने का उद्योग किया जाता है। इसके सिवा इँगलैंड में कुछ ऐसे शिल्प-संबंधी स्कूल भी स्थापित हैं, जिनमें वे बालक भेजे जाते हैं, जो कोई अपराध तो नहीं करते; पर फिर भी जिनका चरित्र अच्छा नहीं होता, और जिनके संबंध में यह आशंका की जाती है कि इनका चरित्र जल्दी नष्ट हो जायगा। जो बालक बड़े होने पर अनेक प्रकार के कुकृत्य करने लग जाते, वे आरंभ में ही दुश्चरित्र लोगों के संसर्ग से अलग कर लिए जाते और इस योग्य बना दिए जाते हैं कि वे भले आदमियों की तरह जीवन व्यतीत कर सकें, और ईमानदारी से जीविका-निर्वाह कर सकें। प्रायः जो बालक गलियों में आवारा घूमते या भीख माँगते हुए पाए जाते हैं, वे पहले किसी मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किए जाते हैं, और तब उसकी आज्ञा से कुछ समय के लिये किसी ऐसे ही स्कूल में भेज दिए जाते हैं। जो बदचलन, शराबी या जुआड़ी आदि अपने लड़कों की ठीक-ठीक देखरेख नहीं कर सकते, उनके बच्चे अथवा बदचलन आदमियों के साथ रहनेवाले लड़के भी ऐसे स्कूलों में भेज दिए जाते हैं। ऐसे स्कूलों से जो लड़कियाँ या

लड़के शिक्षा पाकर निकलते हैं, वे सहज में ही किसी अच्छे काम में लग जाते और कमाने-खाने लगते हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसे कामों के लिये कुछ ग़ैर-सरकारी स्कूल भी स्थापित हैं। जो माता-पिता अपने लड़कों को बदचलन होते या बहुत शरारत करते देखते हैं, वे स्वयं ही उन्हें ऐसे स्कूलों में भरती करा देते हैं, जहाँ उनका चरित्र सुधर जाय; और बहुत-से अंशों में उनका चरित्र सुधर भी जाता है। इसके सिवा कुछ ऐसी संस्थाएँ भी होती हैं, जो सोलह से इक्कीस वर्ष तक के नवयुवकों को, उनका जीवन सुधारने के लिये, अपने यहाँ रखती हैं। ऐसी संस्थाओं में तीन दरजे होते हैं। जो नवयुवक अपने चालचलन में कुछ सुधार करके दिखलाते हैं, वे नीचेवाले दरजे से ऊपरवाले दरजे में चढ़ा दिए जाते हैं। इस प्रकार नवयुवकों को अपना आचरण सुधारने में एक प्रकार का प्रोत्साहन मिलता है। इन दरजों में, बहुत-से अंशों में, प्रायः वैसी ही शिक्षा मिलती है, जैसी किसी स्कूल या कॉलेज के बोर्डिंग हाउस में। जो नवयुवक कोई अपराध करते हुए पाए जाते हैं, वे एक से तीन वर्ष तक के लिये किसी ऐसी संस्था में भेज दिए जाते हैं, जहाँ से वे बहुत कुछ सच्चरित्र होकर निकलते हैं। यदि वहाँ रहने पर भी किसी नवयुवक का आचरण नहीं सुधरता, और वह वहाँ भी कोई अपराध करता है, तो वहाँ से निकालकर जेल भेज दिया जाता है। इन संस्थाओं में स्त्रियाँ बहुत अधिक काम करती हैं। जो निजी या सार्वजनिक

संस्थाएँ होती हैं, उनका तो अधिकांश काम स्त्रियाँ करती ही हैं; पर अनेक सरकारी संस्थाओं में भी स्त्रियों का बहुत कुछ हाथ होता है। प्रायः ऐसी संस्थाओं की व्यवस्था आदि का सारा भार स्त्रियों पर ही होता है; क्योंकि यह बात एक प्रकार से प्रायः निश्चित ही है कि बालकों के जीवन-सुधार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सफलता होती है। जो बालक पुरुषों के संरक्षण में रहकर जल्दी नहीं सुधरते, वे प्रायः स्त्रियों के संरक्षण में बहुत जल्दी सुधर जाते हैं। पर हाँ, सुधारनेवाली स्त्री सच्चरित्र, दयालु और परोपकारिणी हो।

अमेरिका के शेरबोर्न-नामक स्थान में स्त्रियों के लिये एक संस्था है। जो स्त्रियाँ बहुत अधिक मद्यपान करती अथवा इसी प्रकार का और कोई अपराध करती हैं, वे साल-भर अथवा इससे अधिक के लिये यहाँ भेज दी जाती हैं। इसे तो जेल न कहकर एक प्रकार का अस्पताल कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। इसमें भी दरजे होते हैं। सबसे छोटे दरजे की स्त्रियों को सबसे ख़राब और निकम्मा भोजन दिया जाता है, और उनके साथ कुछ कठोर-सा व्यवहार होता है। ऊपर के दरजों में क्रमशः अच्छा भोजन मिलता है, और व्यवहार भी अच्छा होता जाता है। ज्यों-ज्यों आचरण में सुधार होता जाता है, त्यों-त्यों दरजा भी बढ़ता जाता है; और अंतिम या सबसे ऊपर के दरजे में पहुँचने के थोड़े दिनों बाद वे उस संस्था से अलग कर दी जाती हैं। बाहर निकलकर ऐसी स्त्रियाँ बहुत

अच्छी तरह अपना जीवन व्यतीत करती हैं, और जल्दी उनके आचरण के संबंध में कोई शिकायत नहीं सुनने में आती।

फ़्रांस में बहुत-सी ऐसी सभाएँ स्थापित हैं, जिनकी सदस्य केवल स्त्रियाँ ही होती हैं। ये स्त्रियाँ जेलों में जाकर स्त्री-क़ैदियों से मिलती हैं, और जहाँ तक हो सकता है, उन्हें इस योग्य बनाती हैं कि वे जेल से बाहर निकलने पर इधर-उधर मारी-मारी न फिरें, बल्कि किसी अच्छे काम में लग जायँ। कुछ ऐसी संस्थाएँ भी हैं, जिनमें जेल से निकलने पर स्त्रियाँ कुछ समय तक के लिये भरती हो सकती हैं, और वहाँ रहकर वे अनेक प्रकार के काम सीख सकती हैं। ऐसी संस्थाएँ उन्हें कई तरह के काम सिखलाकर उनकी जीविका की भी कुछ व्यवस्था कर देती हैं। यदि सच पूछा जाय, तो क़ैदियों के सुधार का सबसे प्रधान अवसर वही होता है, जब वे जेल से बाहर निकलते हैं; क्योंकि जेल में रहने पर तो वे इतने लाचार होते हैं कि सहसा न तो कोई अपराध ही कर सकते और न किसी कुमार्ग में ही प्रवृत हो सकते हैं। पर जब वे जेल से निकलकर स्वतंत्र हो जाते हैं, तब उनकी पाशविक वृत्तियाँ फिर स्वच्छंद हो जाती हैं, और वे अनेक प्रकार के कुमार्गों में लग जाते हैं। बस, वही एक ऐसा अवसर होता है, जब उन्हें सँभाले रहने और कुमार्ग में न फँसने के देने के लिये सतर्क रहना पड़ता है। इन्हीं सब बातों का विचार करके फ़्रांस में एक ऐसी संस्था खोली गई थी, जिसमें जेल से छूटकर निकलनेवाली तेरह से इक्कीस वर्ष तक

की अवस्था की बालिकाएँ और स्त्रियाँ रक्खी जाती थीं। पहले बहुत ही थोड़ी लड़कियाँ भरती की गई थीं। यद्यपि उन पर काफ़ी कड़ी निगाह रक्खी जाती थी, फिर भी उनके साथ वैसी सख़्ती नहीं की जाती थी, जैसी जेल में की जाती है। उन लड़कियों को खेतीबारी और बाग़बानी के काम में लगाया गया था, जिसका परिणाम बहुत ही शुभ हुआ। इस बात का अनुभव प्रायः सभी देशों में हो चुका है कि जो लोग बग़ीचों या खेतों आदि में, खुली हवा में, काम करते हैं, उनकी शारीरिक और नैतिक, दोनों प्रकार की उन्नति अपेक्षा-कृत शीघ्र और कुछ अधिक होती है। नगरों की घनी बस्तियों में रहने पर न तो वे शारीरिक दृष्टि से उतने अच्छे रहते हैं, और न नैतिक दृष्टि से ही। अतः इस संस्था को और संस्थाओं की अपेक्षा अधिक सफलता हुई थी। जो लोग जेल से छूटकर आए हों, उनके लिये प्रायः ऐसे ही काम अधिक उपयुक्त हुआ करते हैं, जिनमें लगातार बहुत देर तक एक ही स्थान पर न बैठे रहना पड़े, पर साथ ही काम भी कुछ कम न करना पड़े। यदि उस काम के अंतर्गत और भी कई तरह के काम हों, तो परिणाम और भी अच्छा होता है। फ़्रांस की उक्त संस्था में लड़कियों से कुछ सीने-पिरोने का भी काम लिया जाता था, और उस काम से जो कुछ आय होती थी, उससे उस संस्था का कुछ व्यय चलता था। शेष समय में उन्हें बाग़बानी करनी पड़ती थी, मुरग़ियों आदि की देखरेख रखनी पड़ती थी, भोजन बनाना पड़ता था, तथा

इसी प्रकार के और अनेक काम करने पड़ते थे। रविवार के दिन उन्हें कुछ पढ़ाया-लिखाया भी जाता था, और बाहर घूमने के लिये भी निकाला जाता था। प्रत्येक लड़की के परिश्रम से जो कुछ आर्थिक आय होती थी, उसका कुछ अंश स्वयं उस लड़की के लिये भी बचाकर रक्खा जाता था, जो उसे संस्था से निकलने के समय दे दिया जाता था। उसी रक़म से वह आगे चलकर अपनी जीविका-निर्वाह का प्रबंध करती थी; अथवा जब तक उसे कोई काम नहीं मिलता था, तब तक वह उसी से अपना गुज़र करती थी। इस व्यवस्था का एक अच्छा फल यह भी हुआ करता था कि वे अधिक जमा करने के उद्देश्य से अन्य अनेक बातों में भी अपनी कार्य-पटुता दिखाती थीं।

जेलों से प्रायः बहुत-से ऐसे क़ैदी निकला करते हैं, जिनका कोई ठौर-ठिकाना नहीं होता, और जो किसी तरह का काम नहीं कर सकते। ऐसे क़ैदियों के लिये इस प्रकार की संस्थाएँ बहुत उपयोगी हुआ करती हैं। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जिनका कोई परिवार ही नहीं होता; और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनका परिवार होते हुए भी न होने के बराबर होता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें उनके परिवार के लोग या संबंधी और मित्र आदि अपने वर्ग में लेने से लज्जित होते हैं, या जो स्वयं ही अपनी समाज में जाने से लज्जित होते हैं। यदि इस देश में भी इसी प्रकार की कुछ संस्थाएँ खुल जायँ, तो ऐसे क़ैदियों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है, और वे

सहज में फिर से समाज में सम्मिलित हो सकते हैं। ऐसी संस्थाओं के अभाव में प्रायः यही होता है कि जेल से निकलने पर अधिकांश लोग फिर पहले से भी कोई अधिक भीषण अपराध कर बैठते अथवा केवल अपने उदर-पोषण के लिये ही छोटी-मोटी चोरी ही कर बैठते हैं, जिसके कारण उन्हें फिर पहले से भी अधिक समय तक के लिये जेल जाना पड़ता है; और इस प्रकार मानों उनका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है।

फ़्रांस में एक जज थे, जिनकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई थी कि नवयुवकों को जेल भेजने का परिणाम प्रायः बहुत ही बुरा होता है। इसलिये उन्होंने एक ऐसी ही संस्था स्थापित की थी। वह ख़ास-ख़ास नवयुवकों को जेल न भेजकर उसी संस्था में भेज देते थे, जहाँ उन्हें खेती-बारी आदि की शिक्षा दी जाती थी। परिणाम यह होता था कि जो नवयुवक उस संस्था में कुछ दिनों तक रहने के उपरांत निकलते थे, वे बहुत ही सभ्य और सच्चरित्र नागरिक बन जाते थे। उन्हें खेती-बारी और बाग़वानी के सिवा पशु-पालन आदि की भी शिक्षा दी जाती थी, और रेशम के कीड़े पालकर उनसे रेशम तैयार करना भी सिखलाया जाता था। उसमें रहनेवाले नवयुवकों को परिश्रम तो अवश्य अधिक करना पड़ता था; पर उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा रहता था, और चरित्र भी बहुत सुधर जाता था। जब इस संस्था को आशातीत सफलता

हुई, तब उसके ढंग पर वहाँ और भी बहुत-सी संस्थाएँ खुल गईं, जिनसे अब समाज का बहुत अधिक हित होता है।

बहुत-से बालक और बालिकाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें बहुत ही छोटी अवस्था से झूठ बोलने, चोरी करने, घर से भागने या तरह-तरह की शरारतें करने की आदत पड़ जाती है। कुछ बालकों में तो इतनी अधिक दुष्टता देखी जाती है कि उसे प्राकृतिक ही मानना पड़ता है, और प्रायः माता-पिता उनके सुधार से बिलकुल निराश-से हो जाते हैं। ऐसे लड़के जहाँ रहते हैं, वहीं लोगों का नाक में दम किए रहते हैं। इससे जल्दी कोई उन्हें अपने पास फटकने भी नहीं देता। जर्मनी में एक ऐसी संस्था है, जो इसी तरह के बहुत छोटे-छोटे बच्चों का सुधार करती है। जो माता-पिता अपने बच्चों से बिलकुल निराश हो जाते हैं, वे उन्हें उसी संस्था के सिपुर्द कर देते हैं। वह संस्था उन्हें अनेक प्रकार के उपयोगी काम सिखलाती है, और जब वे बड़े होकर वहाँ से निकलते हैं, तब उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें किसी-न-किसी काम में भी लगा देती है। दुष्ट बालकों के सुधार के लिये वहाँ यही संस्था सबसे अधिक उपयुक्त समझी जाती है। इस संस्था के अधिकारी अच्छे शिक्षित और सच्चरित्र हुआ करते हैं, और वे दुष्ट बालकों को बहुत सहज में सीधा और सच्चरित्र बना देते हैं। अब तो इस संबंध का नया शास्त्र ही बन गया है। उसका एक सिद्धांत है कि अनेक प्रकार के कुकर्म करने की प्रवृत्ति भी एक प्रकार का

रोग है; और उस रोग की अनेक प्रकार से केवल चिकित्सा ही की जाती है, दंड नहीं दिया जाता।

इँगलैंड में इसी प्रकार की एक और परोपकारिणी संस्था है, जो जेल जानेवाले लोगों की स्त्रियों और बच्चों का भरण-पोषण करती है। बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जिनके जेल चले जाने पर उनकी स्त्री या बच्चों का भरण-पोषण करनेवाला कोई नहीं रह जाता। ऐसी स्त्रियों को अपना और अपने बाल-बच्चों का निर्वाह करना बहुत ही कठिन हो जाता है। इस देश में ऐसी स्त्रियाँ प्रायः भीख माँगने लग जाती और पाश्चात्य देशों में प्रायः कुमार्ग में लग जाती हैं। दोनों ही अवस्थाओं में उनके बच्चों के सुधरने या लिखने-पढ़ने की कोई आशा नहीं रह जाती, और इस प्रकार एक आदमी के अपराध के कारण समाज के और कई आदमियों को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। छोटे-छोटे बच्चों का जीवन तो प्रायः बुरी तरह से नष्ट हो जाता है। इँगलैंड की उक्त संस्था प्रायः ऐसे ही लोगों के परिवारों का भरण-पोषण और देखरेख करती है। जेल से लौटने पर उस आदमी पर भी इस व्यवस्था का बहुत अच्छा परिणाम होता है; क्योंकि जब वह आकर देखता है कि मेरी स्त्री और बाल-बच्चे अच्छी तरह से हैं, और कोई अच्छा काम सीख चुके हैं, तब उसे फिर से जीवन-यात्रा आरंभ करने में बहुत ही सुगमता होती है। इस संस्था के कर्मचारी इस बात का पता लगाया करते हैं कि कौन आदमी जेल गया, और उसके परि-

वार के लोगों की क्या दशा है । जब उन्हें कोई-कोई ऐसा परिवार मिलता है, जो संस्था की सहायता का उपयुक्त पात्र होता है, तब वे जाकर उस परिवार के आदमियों से मिलते, उन्हें अपनी संस्था का उद्देश्य समझाते और यह बतलाते हैं कि किन-किन शर्तों पर क्या-क्या काम करने पड़ेंगे। यदि परिवार के लोग वे शर्तें मंज़ूर कर लेते हैं, तो उन्हें संस्था में लाकर रक्खा जाता है, उन्हें काम सिखलाए जाते हैं, और हर प्रकार से उनकी सहायता की जाती है। इस संस्था में स्त्रियाँ नित्य अपने छोटे बालकों-सहित प्रातः-काल आठ बजे आती और संध्या को छः बजे तक वहीं रहती हैं। बहुत ही छोटे-छोटे बालकों के लिये एक अलग स्थान रहता है, जिसमें वे रख दिए जाते हैं, और उनकी माताएँ अपने-अपने काम पर चली जाती हैं । माताओं के काम करने और छोटे-छोटे बच्चों के रहने के स्थान पास-ही-पास होते हैं। वहाँ छोटे बालकों को स्नान कराया जाता है, कपड़े पहनाए जाते हैं, और तरह-तरह के खेलों में लगा दिया जाता है, जिससे वे जल्दी माता की याद ही नहीं करते। जो बालक कुछ अधिक बड़े या सयाने होते हैं, उन्हें कुछ पढ़ाया-लिखाया भी जाता है। दिन-भर स्त्रियाँ बैठकर सीने-पिरोने अथवा इसी प्रकार का और कोई काम करती हैं, और उस काम से जो आय होती है, उसी से संस्था का तथा उन लोगों का निर्वाह होता है। संध्या-समय जब वे अपने घर जाने लगती हैं, तब अपने छोटे बच्चों को भी अपने

साथ लेती जाती हैं। प्रत्येक स्त्री को भोजन के अतिरिक्त कुछ नक़द भी दिया जाता है; और यदि वह बहुत दूर से आती है, तो उसे आने-जाने का कुछ किराया भी मिलता है। यह संस्था मार्लबरो की डचेज़ की स्थापित की हुई है। प्रायः स्वयं डचेज़ भी जाकर इसका निरीक्षण किया करती हैं। यदि भारत की धनी स्त्रियाँ चाहें, तो अपने-अपने नगर में इसी तरह की संस्था स्थापित करके परोपकार का एक बहुत अच्छा काम कर सकती हैं।

क़ैदियों और उनके परिवार के लोगों की सहायता करने से भी बढ़कर एक और आवश्यक तथा महत्व का काम है, जिसकी आवश्यकता प्रायः प्रत्येक नगर में होती है, और जिसकी ओर बहुत ही कम लोग ध्यान देते हैं। प्रायः सभी बड़े-बड़े नगरों में अनेक ऐसी स्त्रियाँ होती हैं, जो पाप-पूर्ण आचरण करके अपनी जीविका निर्वाह करती हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसी स्त्रियों के सुधार के लिये अनेक प्रकार के उपाय किए जाते हैं, जिनमें अच्छी सफलता भी होती है। वहाँ प्रायः दो तरह के लोग ऐसा काम करते हैं। एक तो वे लोग, जो पादरी होते अथवा किसी धार्मिक संस्था से संबंध रखते हैं; और दूसरे वे लोग, जिनका किसी धार्मिक संस्था से कोई संबंध नहीं होता, और जो केवल परोपकार की दृष्टि से इस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित कर लेते हैं। ऐसी संस्थाओं में, जिनका संबंध किसी विशेष धर्म से नहीं होता, और जो केवल

परोपकार-दृष्टि से यह कार्य करती हैं, अधिकांश काम करने-वाली स्त्रियाँ ही होती हैं, जो इस सामाजिक रोग के निवारण में बहुत अधिक सहायता देती हैं। लंदन में इस तरह की कई बहुत बड़ी-बड़ी सभाएँ और संस्थाएँ हैं। बहुत-सी शिक्षित और सच्चरित्र स्त्रियाँ प्रायः अपना सारा जीवन ऐसी संस्थाओं को अर्पित कर देती हैं, और सैकड़ों ऐसी स्त्रियों का उद्धार करती हैं, ज़ो केवल दरिद्रता के कारण पाप-पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये विवश होती हैं। लंदन में कुछ ऐसे मुहल्ले हैं, जिनमें रात के समय बहुत अधिक अनाचार हुआ करता है। ऐसी स्त्रियाँ वहाँ रात को ग्यारह-वारह बजे जाती हैं, और इधर-उधर घूमती रहती हैं। जब उन्हें कोई ऐसी युवती मिलती है, जो अपनी जीविका के लिये अनाचार करने पर उद्यत-सी होती है, तो वे उसके पास जाकर उसे हर तरह से समझाती बुझाती और सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करती हैं। यदि वह स्त्री जीविका के विचार से अपनी असमर्थता प्रकट करती है, तो वे उसे अपने आश्रम में ले आती हैं, और वहाँ रखकर उसे कुछ काम सिखलाती हैं। इस प्रकार बहुत-सी स्त्रियाँ पाप-मार्ग से हटकर अपना भावी जीवन सुधार लेती और अच्छे कामों में लग जाती हैं। हिसाब लगाकर देखा गया है कि जितनी स्त्रियाँ ऐसे आश्रमों में आती हैं, उनमें प्रतिसैकड़े ८५ ऐसी होती हैं, जो फिर कभी दुराचार में प्रवृत्त नहीं होतीं, और अपना शेष जीवन शुद्धाचार-पूर्वक व्यतीत करती हैं। अनेक स्त्रियाँ तो

ऐसी होती हैं, जो उसी आश्रम में काम करने लग जाती हैं, और स्वयं दूसरी सैकड़ों स्त्रियों के जीवन सुधारने में सहायक होती हैं।

हम ऊपर मुक्तिदायिनी सेना के कार्यों का कुछ उल्लेख कर चुके हैं। आज से प्रायः ५५ या ६० वर्ष पहले जनरल बूथ ने अपनी स्त्री की सहायता से इस संस्था की स्थापना की थी। इस समय प्रायः समस्त संसार के लगभग साठ देशों में इस संस्था के कार्यालय हैं, और प्रायः पैंतीस भाषाओं में इस संस्था के पुनरुद्धार के काम होते हैं। इस संस्था की बदौलत सदा लाखों आदमियों के जीवन में सुधार हुआ करता है। ग़रीबों, अनाथों, पतितों और रोगियों आदि के उद्धार के लिये जितने अधिक प्रकार के कार्य यह संस्था करती है, उतने शायद सारे संसार की और सब संस्थाएँ मिलकर भी न करती होंगी। इसके द्वारा ग़रीबों को भोजन, वस्त्र और रहने का स्थान मिलता है, लोगों को तरह-तरह के काम सिखलाए जाते हैं, बालकों को शिक्षा दी जाती है, रोगियों की चिकित्सा की जाती है, तथा इसी प्रकार के और अनेक काम किए जाते हैं। जनरल बूथ ने यह इतना बड़ा और संसार-व्यापी कार्य किया है, वह सब अपनी स्त्री की ही सहायता से। इन सब बातों का यहाँ उल्लेख करने का हमारा उद्देश्य यह है कि इस देश की स्त्रियाँ जनरल बूथ की स्त्री के कार्यों से शिक्षा ग्रहण करें, और यह बात अच्छी तरह समझ लें कि यदि वे चाहें, तो अकेली ही

अथवा अपने पति के साथ मिलकर कितने अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े काम कर सकती हैं। इस संबंध में ध्यान देने-योग्य दूसरी बात यह है कि मुक्तिदायिनी सेना में सबसे अधिक काम करनेवाली भी स्त्रियाँ ही हैं; उनमें पुरुषों की संख्या अपेक्षा-कृत कम ही है। इस सेना में स्त्रियों को छोटे-से-बड़े, सभी पद मिल सकते हैं, और जब जो काम उनके सिपुर्द किया जाता है, वह बहुत उत्तमता-पूर्वक संपन्न होता है। दुराचारिणी स्त्रियों को सन्मार्ग पर लाने का जितना अधिक और जितना अच्छा काम इन स्त्रियों ने किया है, उतना कदाचित् पुरुषों से तो हो ही नहीं सकता था।

यहाँ हम संक्षेप में यह भी बतला देना चाहते हैं कि दुराचारिणी स्त्रियों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लाने के लिये सेना की स्त्रियाँ किन उपायों का अवलंबन करती हैं। जब कोई ऐसी स्त्री मिलती है, जो किसी कारण से बहककर कुमार्ग में लग जाती है, तो मुक्ति-सेना में काम करनेवाली स्त्रियाँ उसके साथ बहुत अधिक हिलमिल जाती हैं, और इतनी सहृदयता और प्रेम का व्यवहार करती हैं कि उस स्त्री को स्वप्न में भी इस बात का अनुमान नहीं होता कि ये स्त्रियाँ किसी बात में मुझसे श्रेष्ठ हैं, अथवा मैं इनकी दृष्टि में पतित हूँ। ऐसे व्यवहार का उन बहकी हुई स्त्रियों पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि सेना की अधिकारिणी स्त्रियाँ उन्हीं दुश्चरित्र स्त्रियों के साथ बराबर घूमने-फिरने के लिये जाया

करती हैं, उन्हें अपने साथ मेलों, तमाशों और सभाओं तथा व्याख्यानों आदि में ले जाती और उन्हीं के साथ बैठकर खाती-पीती हैं। बहुत ही मित्रता-पूर्ण व्यवहार करके वे उन्हें केवल अच्छे-अच्छे उपदेश देती हैं, कभी उनके पुराने पाप-पूर्ण जीवन का ज़िक्र तक नहीं करतीं। कभी-कभी ऐसे व्यवहारों और उपदेशों का ऐसा अच्छा परिणाम देखने में आता है कि थोड़े ही समय में उन दुराचारिणी स्त्रियों के जीवन और विचारों में आकाश-पाताल का अंतर हो जाता है। प्रायः स्त्रियों को पर पुरुष के अनुचित संबंध से संतान भी हो जाती है। हमारे देश में तो प्रायः स्त्रियाँ अनुचित संबंध से होनेवाला गर्भ ही गिरा देती हैं; और यदि किसी कारण से उन्हें गर्भ गिराने में सफलता नहीं मिलती, तो वे संतान उत्पन्न होने पर या तो उसे मार ही डालती हैं, या कहीं फेक आती हैं। इसका कारण यह है कि हमारे देश में, और विशेषतः हिंदुओं में, सामाजिक बंधन बहुत कड़ा है, और सबको लोक-लज्जा का बहुत अधिक भय होता है; पर पाश्चात्य देशों में इन सब बातों की बहुत कमी होती है। इसीलिये वहाँ जब किसी स्त्री को अनुचित संबंध के कारण गर्भ रह जाता है, तब वह न तो गर्भ गिराने का ही कोई प्रयत्न करती है, और न बालक के प्राण लेने का ही। जब उसे ऐसी संतान उत्पन्न होती है, तब मुक्तिदायिनी सेना में काम करनेवाली स्त्रियाँ, जिस प्रकार हो सकता है, उससे यह जानने का प्रयत्न करती हैं कि यह बालक किसके संसर्ग से उत्पन्न हुआ

है। प्रायः ऐसा होता है कि वे स्त्रियाँ यह बतला देती हैं कि यह शिशु अमुक व्यक्ति से उत्पन्न है। जब उस आदमी का नाम और पता मालूम हो जाता है, तब सेना की कोई अधिकारिणी स्वयं उस आदमी के पास जाती है। इस संबंध में वह उस पुरुष से कभी पत्र-व्यवहार नहीं करती; चाहे वह कितनी ही दूरी पर क्यों न रहता हो, वह स्वयं ही उसके पास जाती है। वह उससे प्रत्यक्ष मिलकर बातचीत करती है, और जैसे होता है, उसे इस बात पर राज़ी करती है कि वह उस नवजात शिशु के भरण-पोषण के लिये कम-से-कम इतनी रक़म प्रतिसप्ताह या प्रतिमास दिया करे। उसे वह रक़म बराबर उस समय तक देनी पड़ती है, जब तक वह बच्चा सयाना नहीं हो जाता। इस संबंध में वे स्त्रियाँ उससे पक्की लिखा-पढ़ी कर लेती हैं, ताकि वह अपनी बात से टल न जाय। उधर जिन स्त्रियों को गर्भ रहता है, और जिनका प्रसव-काल समीप होता है वे इसी काम के लिये बने हुए सेना के ख़ास अस्पतालों में रक्खी जाती हैं, जहाँ डॉक्टर और दाइयाँ सदा हर तरह से उनकी सेवा-सुश्रूषा और सहायता करने के लिये तैयार रहती हैं। अस्पताल के व्यय के लिये जो स्त्री अपनी सामर्थ्य के अनुसार जितना धन दे सकती है, उतना उससे ले लिया जाता है; अथवा उस व्यक्ति से लिया जाता है, जिसके संसर्ग से उस बालक की उत्पत्ति होती है। और, दोनों में से किसी से भी कुछ न मिल सकने की संभावना हो, तो भी उन स्त्रियों का उतना ही ध्यान रक्खा जाता

है, जितना किसी अधिक-से-अधिक धन देनेवाली स्त्री का। मतलब यह कि अस्पताल में रहने और प्रसव-काल के समय के व्यवहार में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होता। सब स्त्रियाँ समान दृष्टि से देखी जाती हैं। इस समान व्यवहार का भी उन दुश्चरित्र स्त्रियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। अस्पताल में रहने के समय भी उन्हें सदा अच्छी-से-अच्छी नैतिक शिक्षा दी जाती है, जिससे उनके पतन का वहीं अंत हो जाता है। प्रसव-काल के उपरांत जब वे स्वस्थ होकर अस्पताल से निकलती हैं, तब उन्हें किसी गृहस्थ के यहाँ नौकरी दिलवा दी जाती है, अथवा और किसी काम पर लगा दिया जाता है, जिससे फिर उन्हें पेट की ज्वाला के कारण कुमार्ग में प्रवृत्त होने की आवश्यकता नहीं रह जाती, और वे अपना शेष जीवन बहुत ही अच्छी तरह और सच्चरित्रता-पूर्वक व्यतीत करती हैं। उसके बच्चे के लिये एक दाई नियुक्त कर दी जाती है। उस दाई का ख़र्च, जहाँ तक हो सकता है, उसी आदमी से लिया जाता है, जिसकी वह संतान होती है। इस प्रकार प्रतिवर्ष हज़ारों स्त्रियों का उद्धार किया जाता और उनका जीवन नष्ट होने से बचाया जाता है।

किंतु सभी स्त्रियाँ सहज में कुमार्गगामिनी स्त्रियों का उद्धार करने के योग्य नहीं हो जातीं। इसके लिये उन्हें वर्षों तक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। यह शिक्षा कम-से-कम एक वर्ष में समाप्त होती है। उन्हें कुछ तो धार्मिक शिक्षा दी जाती है, और कुछ सीने-

पिरोने, कपड़े धोने, भोजन बनाने तथा इसी प्रकार के और कामों की। इस प्रकार की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वे पतित स्त्रियों को ये सब काम सिखला सकें, और उन्हें जीविका उपार्जित करने के योग्य बना सकें। जो स्त्रियाँ मुक्ति-दायिनी सेना में काम करती हैं, उन्हें वेतन भी इतना कम दिया जाता है कि उनका निर्वाह बहुत ही कठिनता से होता है। इस-लिये ऐसे काम में वही स्त्रियाँ नियुक्त की जाती हैं, जो स्वयं सच्चे उत्साह से इसमें लगना चाहती हैं, और जो केवल परोप-कार के विचार से बहुत अधिक स्वार्थ-त्याग करने के लिये तैयार होती हैं। जिनका हृदय दीनों और दुखियों को देखकर द्रवित होता है, और जो उनका कष्ट दूर करने के लिये बहुत अधिक उत्सुक होती हैं, वही ऐसे कामों में लग सकती हैं। उन स्त्रियों को यह उपदेश दिया जाता है कि तुम अपना आचरण और विचार सदा परम पवित्र रक्खो, स्वयं पवित्रता-पूर्वक रहो, और दूसरों को पवित्रता-पूर्वक रहने का उद्योग करो ; सदा पूरा-पूरा परि-श्रम किया करो, और काम अथवा कठिनाइयों से कभी घबराया न करो ; सदा प्रसन्न रहा करो, और दुःख या चिंता को कभी अपने पास मत फटकने दिया करो। यदि किसी समय किसी कारण-वश तुम्हारा चित्त दुःखी भी हो, तो भी तुम दूसरों पर अपना दुःख मत प्रकट करो, और सदा दूसरों को प्रसन्न-चित्त दिखलाई दो। सदा सब काम दक्षता और प्रवीणता-पूर्वक किया करो। इसके अतिरिक्त उन स्त्रियों को रोगियों की सेवा-सुश्रूषा

करने, प्रसव-काल के समय डॉक्टरों और दाइयों की सहायता करने और बच्चों का लालन-पालन करने की भी शिक्षा दी जाती है। इसी प्रकार की अच्छी-अच्छी शिक्षाओं का यह परिणाम होता है कि वे स्त्रियाँ अवसर पड़ने पर बड़े-से-बड़े काम कर लेती हैं, और विकट-से-विकट दुष्टों का सामना करने में भी आगापीछा नहीं करतीं। यह तो एक मानी हुई बात है कि सैकड़ों उपद्रवों, हज़ारों पापों और लाखों अपराधों का जन्म शराबख़ानों में होता है, और वहाँ बड़े-बड़े पतित, दुराचारी तथा विकट आदमी इकट्ठे होते हैं। और, जब वे शराब पीकर ख़ब मस्त होते हैं, तब बाहर निकलकर अनेक प्रकार के उपद्रव और अनाचार करते हैं। ऐसे शराबख़ानों में मुक्तिदायिनी सेना की अधिकारिणी स्त्रियाँ निर्भीकता-पूर्वक घुस जाती हैं, और वहाँ के शराब पीनेवालों को पहले से ही सचेत कर देती हैं कि देखो, अधिक शराब मत पीना, और न शराब पीकर किसी प्रकार का अनाचार करना। इतना ही नहीं, उन्हें सदा के लिये शराब छोड़ देने का भी वे उपदेश देती हैं। शराबख़ानों के मालिक भी कभी उनके ऐसे कामों में बाधा नहीं देते, बल्कि जहाँ तक हो सकता है, उन्हें सहायता देते हैं। शराबी लोग उन्हें कभी नहीं छेड़ते, बल्कि लज्जित होकर सिर झुका लेते या वहाँ से खिसक जाते हैं। और, यह सब प्रभाव केवल उनके उच्च विचारों, परोपकार-वृत्ति और प्रेमपूर्ण व्यवहार का ही होता है।

पाश्चात्य देशों में पुरुष तो शराब पीते ही हैं, स्त्रियाँ भी

आमतौर पर शराब पीती हैं। वहाँ शराब पीना कोई ऐब नहीं समझा जाता। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत-सी स्त्रियाँ बहुत ज़्यादा शराबी हो जाती हैं, और जो कुछ पाती हैं, वह सब शराब पीने में ही ख़र्च कर डालती हैं। भला जिस समाज में स्त्रियाँ और पुरुष, दोनों ही शराबी हों, उस समाज के परिवारों की दुर्दशा का क्या पूछना? शराब पीने की लत ऐसी बुरी होती है कि वह जल्दी छूटती ही नहीं, और दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है, यहाँ तक कि अंत में सर्वनाश कर देती है, और फिर भी पीछा नहीं छोड़ती। लेकिन मुक्तिदायिनी सेना की अधिकारिणियों को बहुत-सी स्त्रियों की शराब पीने की लत छुड़ाने में भी अधिक सफलता प्राप्त हुई है। सेना की ओर से कुछ ऐसे आश्रम बने हुए होते हैं, जिनमें शराबी स्त्रियाँ शराब की लत छुड़ाने के लिये लाकर रक्खी जाती हैं। ये आश्रम प्रायः खुले स्थानों में बने होते हैं, और इनके आस-पास चारों ओर बाग़-बग़ीचे लगे होते हैं। शराबी स्त्रियाँ यहीं लाकर खुली हवा में रक्खी जाती हैं। वे शाकाहार पर रक्खी जाती हैं, मांस-मछली आदि उत्तेजक पदार्थ उन्हें नहीं दिए जाते। उन्हें व्यायाम कराया जाता है, इच्छा-शक्ति तथा स्मरण-शक्ति को प्रबल बनाने की शिक्षा दी जाती है, और अनेक प्रकार के धार्मिक तथा नैतिक उपदेश दिए जाते हैं। इन सब उपचारों तथा उपदेशों का यह परिणाम होता है कि थोड़े ही समय में उनकी प्रवृत्ति शराब की ओर से

बिलकुल हट जाती है, और वे उससे घृणा करने लगती हैं। बीच-बीच में जब कभी शराब पीने का उनका जी चाहता है, तब उन्हें गर्म दूध और फल दिए जाते हैं, जिससे उनका चित्त तुरंत शराब की ओर से हट जाता है। जब यह निश्चय हो जाता है कि अब इनकी शराब पीने की प्रवृत्ति नहीं रही, तब वे आश्रम से मुक्त कर दी जाती और अपने घर चली जाती हैं। पर आश्रम से निकलने के बाद भी महीनों, बल्कि वर्षों तक उन पर कड़ी निगाह रक्खी जाती है। प्रायः ऐसा होता है कि आश्रम से निकलनेवाली स्त्रियाँ आजीवन कभी शराब पीने का नाम नहीं लेतीं। और, यदि कभी कोई ऐसा अवसर आता है, जिसमें उन्हें शराब पीना ही पड़े, तो तुरंत आश्रम में काम करनेवाली स्त्रियाँ पहुँचकर उन्हें सचेत कर देती और शराब पीने से रोक देती हैं। इस प्रकार बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ, जो पहले बहुत ही दरिद्र रहती थीं और परम पतित तथा दुराचारिणी समझी जाती थीं, मुक्तिदायिनी सेना की कृपा से बहुत ही सुखी, संपन्न और सच्चरित्र हो जाती हैं। इँगलैंड की स्त्रियों के सुधार का यह प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय और स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने-योग्य है।

मुक्तिदायिनी सेना का यह काम किसी एक देश में नहीं, बल्कि संसार के प्रायः सभी देशों में, बड़े उत्साह से, होता रहता है। सन् १८८२ में इस सेना के कुछ कर्मचारी भारतवर्ष में भी आए थे, और तब से यहाँ बराबर अनेक प्रकार के अच्छे-अच्छे

काम कर रहे हैं। उन लोगों ने भारत के सैकड़ों गाँवों में पाठशालाएँ स्थापित की हैं, शिल्प और कला की शिक्षा देने के लिये अनेक भवन स्थापित किए हैं, खेती-बारी, पशु-पालन और बुनाई आदि सिखलाने की व्यवस्था की है, दवाख़ाने, अस्पताल और छोटे-छोटे बंक स्थापित किए हैं, और बंबई, कलकत्ता तथा मदरास में दुश्चरित्र तथा कुमार्गगामिनी स्त्रियों के सुधार एवं उद्धार के लिये आश्रम भी स्थापित किए हैं। जिस ढंग से ये लोग काम करते हैं, उसे भारतीय समाज-सुधारकों को सीखना और अपने देश का बढ़ता हुआ दुराचार तथा अनाचार रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। ये लोग जिन स्त्रियों का सुधार करते हैं, उनको केवल अनेक प्रकार के ऐहिक सुख ही नहीं पहुँचाते, बल्कि दोष की जड़ तक पहुँचकर उसे समूल नष्ट करते और उनका नैतिक बल बढ़ाते हैं। इस संबंध में बुल्वर लिटन का सिद्धांत बहुत ही ठीक और प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान देने-योग्य है। उनका कथन है कि गुण और दोष अथवा भलाई और बुराई सबमें होती है। गुण या भलाई वीर सेना के समान है, और दोष या बुराई बिगड़े हुए कमसरियट के समान। कमसरियट में सुधार करो; सेना आप-से-आप अपने कर्तव्यों का पालन करेगी।

इँगलैंड में इसी प्रकार की एक और संस्था है, जो स्त्रियों और बालिकाओं के सुधार का बहुत ही प्रशंसनीय काम करती है। इस संस्था का नाम है The Ladies Association for

the care of Friendless girls. इस संस्था में काम करने वालों का यह सिद्धांत है कि विष-वृक्ष को अच्छी तरह बढ़ चुकने पर काटने का प्रयत्न करने की अपेक्षा ऐसा प्रयत्न करना बहुत ही अच्छा है, जिससे वह अंकुरित ही न हो सके। इसलिये इस संस्था का काम करने का ढंग भी बिलकुल निराला ही है। यह संस्था उन बालिकाओं की सहायता और रक्षा करती है, जो दरिद्रता या बुरी संगति के कारण कुमार्ग में फस सकती हैं। प्रायः ऐसा होता है कि बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत जब संसार में प्रवेश करने और अपने लिये कोई उपयुक्त काम ढूँढने लगती हैं, तभी कुछ दुष्ट उनके पीछे पड़ जाते हैं, और आरंभ में ही उन्हें तरह-तरह का लोभ दिखाकर कुमार्ग में प्रवृत्त कर देते हैं। पाश्चात्य देशों में मानों यहीं से वेश्या-वृत्ति की जड़ जमती है, और दरिद्रता तथा धनाभाव इसकी वृद्धि में बहुत अधिक सहायक होता है। अतः जिन स्थानों में काम करनेवाली ग़रीब स्त्रियाँ रहती हैं, वहाँ यह संस्था अपनी एक शाखा खोल देती और युवतियों को अनेक प्रकार से सचेत कर देती है। इसके अतिरिक्त वह उनके लिये काम भी तलाश कर देती है। दरिद्र स्त्रियों को पहनने के लिये वस्त्र आदि ख़रीदने में बहुत कठिनाई होती है। इसलिये इस संस्था की ओर से कपड़ों की ऐसी दूकानें भी खोल दी जाती हैं, जहाँ से वे किफ़ायत से कपड़े ख़रीद सकती और दाम कई क़िस्तों में अदा कर सकती हैं। मतलब यह कि संस्था आरंभ से ही अनेक ऐसे उपाय करती

है, जिससे युवतियों के कुमार्ग में पड़ने की संभावना ही न रह जाय। इस संस्था की ओर से ऐसी पुस्तकें आदि भी प्रकाशित की जाती हैं, जिनमें माता-पिता को यह बतलाया जाता है कि नवयुवक पुत्रों और नवयुवती पुत्रियों को किस प्रकार रखना और उन्हें कुमार्ग में पड़ने से किस प्रकार बचाना चाहिए। इस प्रकार यह संस्था युवकों और युवतियों के नैतिक सुधार पर समान रूप से ज़ोर देती है।

एक बार जब युवती स्त्रियाँ सन्मार्ग पर लग जाती हैं, और उन्हें कोई अच्छा काम मिल जाता है, तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन लोगों के रहने के लिये स्थान आदि की क्या व्यवस्था की जाय। अँगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेंसने बहुत ज़ोरों पर कहा है कि सर्व-साधारण के सब प्रकार के सुधारों से पहले उनके रहने के स्थानों का सुधार होना परम आवश्यक है। जब उनके रहने के स्थानों में सुधार हो जायगा, तब बाक़ी सुधार सहज में हो सकेंगे; यदि उनके रहने के स्थानों में सुधार न होगा, तो फिर चाहे और जितने प्रकार के सुधार किए जायँ, वे सब निरर्थक ही प्रमाणित होंगे। जिस वर्ग के लोगों के सुधार की यहाँ मीमांसा हो रही है, उस वर्ग के लोगों के लिये तो इस प्रश्न का सबसे पहले निराकरण होना बहुत ही आवश्यक है। यदि ऐसी स्त्रियाँ केवल किसी अच्छे काम में लगा दी जायँ, और उनके रहने के लिये अच्छे स्थान आदि की व्यवस्था न की जाय, तो उन लोगों के

फिर पतित और दुराचारी हो जाने की बहुत बड़ी संभावना रहती है। इसके लिये पाश्चात्य देशों की संपन्न और उदार स्त्रियाँ ऐसे अच्छे-अच्छे और बढ़िया मकान बनवा देती हैं, जिनमें ग़रीब युवती स्त्रियाँ बहुत ही थोड़े किराए में, बहुत अच्छी तरह और आराम से, रह सकती हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ रहने के स्थानों की ज़्यादा क़द्र करती हैं। साथ ही स्त्रियों पर रहने के स्थान और परिस्थिति आदि का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। विशेषतः जो स्त्रियाँ एक बार पतित होकर सुधरती हैं, उन्हें यदि रहने के लिये अच्छा मकान न मिले, तो उनके फिर से पतित हो जाने की बहुत अधिक संभावना रहती है। इसीलिये जो लोग ऐसी पतित स्त्रियों के सुधार का बीड़ा उठाते हैं, वे उनके रहने के लिये अच्छे मकानों की सबसे पहले व्यवस्था करते हैं।

इँगलैंड में एक और संस्था है, जो एक और प्रकार से युवती स्त्रिया की सहायता करती है। इस संस्था का नाम है National Vigilance Association. यह संस्था युवतियों को आनेवाली आपत्तियों से अपनी रक्षा करने के लिये सदा सचेत करती रहती है। इसकी सूचनाएँ जहाज़ों के कमरों तक में लगी हुई रहती और योरप की दस प्रधान भाषाओं में छपकर बँटा करती हैं। इस संस्था की ओर से एक पुस्तक भी छापकर बाँटी जाती है, जिसमें प्रायः सारे संसार के कुछ ऐसे लोगों के नाम और पते रहते हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर विपत्ति-ग्रस्त

युवतियों का हर तरह से सहायता करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। जब कभी किसी युवती पर कोई विपत्ति आती या कोई दुष्ट व्यक्ति उसका पीछा करता है, तो वह पास के किसी ऐसे ही सज्जन के यहाँ पहुँच जाती अथवा उसे पत्र द्वारा अपनी विपत्ति की सूचना देती है। बस, तुरंत उसे उपयुक्त सहायता प्राप्त हो जाती और उस विपत्ति से उसकी रक्षा भी हो जाती है। इस संस्था की ओर से बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ नियुक्त रहती हैं, जो अक्सर रेलों और जहाज़ों के आने के समय पहले से ही स्टेशन या बंदर आदि पर तैयार रहती हैं। जो नवयुवती स्त्रियाँ रेल या जहाज़ से उतरती हुई दिखलाई पड़ती हैं, उनमें से नए आनेवालियों को ये सचेत करती हैं; और यदि उन्हें किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है, तो उन्हें हर तरह से सहायता भी देती हैं। वे उन्हें यह बतला देती हैं कि कैसे-कैसे स्थानों पर जाने से तुम्हें बचना और कहाँ जाकर ठहरना या काम तलाश करना चाहिए। यदि इस संस्था की ओर से बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ नियुक्त न हों, तो बहुत-सी अजनबी स्त्रियाँ नए शहरों में जाकर दुष्टों के फेर में पड़ जायँ, और अपना चरित्र तथा जीवन नष्ट कर बैठें। यदि कहीं किसी कारण-वश किसी नवागंतुक युवती को इस संस्था की कोई अधिकारिणी न मिले, तो वह रेलवे के कर्मचारियों या कुलियों आदि से ऐसी संस्था का पता पूछ लेती है, और तुरंत उसके कार्यालय में पहुँचकर उपयुक्त परामर्श प्राप्त करती है।

इस प्रकार के उद्धार-कार्य सभी देशों में बहुत आवश्यक होते हैं; क्योंकि इनसे समाज और देश की बहुत बड़ी रक्षा होती है। प्रत्येक सभ्य, शिक्षित और सच्चरित्र स्त्री का यह परम कर्तव्य होना चाहिए कि वह इस प्रकार के कार्यों में से जो कार्य हो सके, और जितना अधिक हो सके, करे। स्त्रियों के सुधार का कार्य जितनी उत्तमता से स्त्रियों से हो सकता है, उतनी उत्तमता से पुरुषों द्वारा वह कभी नहीं हो सकता। इसलिये प्रत्येक स्त्री को उचित है कि वह अपनी बहनों के सुधार और उद्धार का पूर्ण प्रयत्न करे। साथ ही उसे फ्रांस के सुप्रसिद्ध लेखक मौलियर के इस कथन पर भी ध्यान रखना चाहिए कि कठोर व्यवहार, अविश्वास और सख़्ती से स्त्रियाँ अपने कर्तव्य-पालन के लिये विवश नहीं की जा सकतीं। उन्हें ठीक मार्ग पर लाने के लिये सबसे सीधा उपाय यही है कि उनके साथ प्रतिष्ठा और प्रेम-पूर्वक नम्रता का व्यवहार किया जाय। यदि उनमें आत्मसम्मान का भाव जागृत कर दिया जाय, तो फिर सहज में उनसे बड़े-से-बड़े काम लिए जा सकते हैं। सारे संसार का अनुभव यह बतला रहा है कि यदि स्त्रियों के रहने के लिये अच्छे स्थान का और जीविका-निर्वाह के लिये किसी अच्छे काम का प्रबंध कर दिया जाय, तो बहुत कम स्त्रियों के कुमार्ग में पड़ने की संभावना रह जाती है। हमारे देश में भी ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिए।

चौदहवाँ प्रकरण

स्त्रियों के हित

एक कहावत है कि पहले घर में दिया जलाकर तब मसजिद में जलाना चाहिए। ऐसा न हो कि घर में तो अँधेरा बना रहे, और दूसरी जगह चिराग़ जले। मतलब यह कि ख़ैरात या परोपकार जो कुछ हो, वह पहले अपने घर और अपनी समाज से आरंभ होना चाहिए। ऐसा न हो कि हमारे परिवार, समाज और देश के लोग तो भूखों मरें, और हम दूसरी समाज तथा दूसरे देश के लोगों का उपकार या सहायता करते फिरें। जो मनुष्य परोपकार आदि का काम अपने वर्ग और अपनी समाज से आरंभ करता है, उसी का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होते-होते संसार-व्यापी हो सकता है। यदि वह अपने वर्ग या समाज के लोगों के हित की ओर ध्यान न देगा, तो बहुत शीघ्र एक ऐसा समय आ जायगा, जब स्वयं वह और उसका वर्ग या समाज किसी प्रकार का परोपकार करने के योग्य ही न रह जायगा।

इस प्रकरण में हम यह बतलाना चाहते हैं कि हमारे देश की संपन्न स्त्रियों को किस प्रकार मिलकर अपने तथा अपने देश

की स्त्रियों के, विशेषतः अपने से ग़रीब स्त्रियों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। यदि इस देश की संपन्न और सुशिक्षित स्त्रियाँ ही अपनी ग़रीब बहनों और बेटियों के हितों की रक्षा के लिये प्रयत्न न करेंगी, तो जिन्हें अपना पेट पालने के लिये दिन-रात परिश्रम करने से ही अवकाश नहीं मिलता, और जिनमें अपनी हीन अवस्था को समझने तक की योग्यता नहीं होती, वे बेचारी भला अपने हितों की क्या रक्षा कर सकेंगी! यह तो एक साधारण अवस्था की बात है। पर हमारे देश में इस प्रश्न का रूप इसलिये और भी विकट हो जाता है कि हमारे यहाँ की स्त्रिया में परदे की प्रथा है। अतः उनमें दरिद्रता और अयोग्यता, इन दो त्रुटियों के अतिरिक्त एक तीसरी त्रुटि यह आ जाती है कि वे परदे में रहने के कारण जल्दी कोई सार्वजनिक काम ही नहीं कर सकतीं। हमारे देश में प्रायः ऐसे क़ानून पास हुआ करते हैं, जिनमें स्त्रियों के हितों का कोई ध्यान ही नहीं रक्खा जाता। ध्यान रक्खा कैसे जाय? शिक्षा के अभाव और परदे की प्रथा के कारण वे एक प्रकार से कुछ समझी ही नहीं जाती हैं। अतः हमारे यहाँ की शिक्षित और समर्थ स्त्रियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि जहाँ तक हो सके, वे इस बात का उद्योग करें कि स्त्रियों के हितों का भी ऐसे अवसरों पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय। पिछले प्रकरणों में हम यह बतला चुके हैं कि पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ समाज-सुधार के बड़े-बड़े कामों में कितना परिश्रम करती और कितना अग्र-

सर रहती हैं। हमारे पाठक-पाठिकाओं को कदाचित् यह ज्ञात होगा कि कुछ ही समय पूर्व अमेरिका में ग़ुलामी की कैसी विकट प्रथा प्रचलित थी, और वहाँ ग़रीब हबशी आदि किस प्रकार भेड़-बकरियों की तरह बेचे और रक्खे जाते थे। ग़ुलामी की उस निंद्य प्रथा को दूर करनेवाली एक स्त्री ही थी, जिसका नाम श्रीमती एच्० बीचर स्टो था। कुछ दिन पहले इँगलैंड के जेलख़ानों की बहुत अधिक दुर्दशा थी। क़ैदी लोग बहुत ही गंदे स्थानों में रक्खे जाते थे, और उनके साथ बिलकुल पशु-जैसा व्यवहार किया जाता था। कुछ और पहले तो यहाँ तक प्रथा थी कि जो लोग किसी कारण अपना ऋण न चुका सकते और दीवानी मामलों में जेल जाते थे, अथवा जो लोग किसी और अपराध में जेल भेजे जाते थे, वे अपना ऋण चुका देने पर भी, अपनी सज़ा की मियाद ख़त्म कर लेने पर भी, जब तक जेल में रहने का कुल ख़र्च चुकाकर जेलर को संतुष्ट नहीं कर लेते थे, तब तक वहाँ से निकल नहीं सकते थे। इँगलैंड के जेलों का सुधार करनेवाली भी कुछ स्त्रियाँ ही थीं, जिनमें दो मुख्य थीं। उनके नाम मिस एलिज़बेथ फ्राइ और श्रीमती मेरिडेथ थे। मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल का नाम सारे संसार में विदित है। उन्होंने अथक परिश्रम करके और एक बहुत ही उच्च आदर्श उपस्थित करके, अस्पताल की दाइयों की शिक्षा की व्यवस्था में आश्चर्य-जनक परिवर्तन और उन्नति कर दिखलाई थी। मिस मेरी कारपेंटर ने दुष्ट बालकों के सुधार, लोगों की शिल्प कला की शिक्षा

और ग़रीबों के बालकों को पढ़ाने-लिखाने के लिये बहुत-से शिक्षालय खोले और खुलवाए थे। मिस टॉड, लेडी हेनरी सोमर-सेट तथा मिस फ़्रांसिस विलर्ड ने लोगों में मद्य-पान का प्रचार रोकने के लिये बहुत अधिक परिश्रम किया, और अच्छी सफलता प्राप्त की। श्रीमती ई० बी० ब्राउनिंग ने कारख़ानों में काम करनेवाले छोटे-छोटे बालकों की दुर्दशा देखकर "बालकों की पुकार" नाम का एक ऐसा रोमांचकारी काव्य लिखा था, जिसे पढ़कर लोगों का हृदय विदीर्ण होता था। उसी काव्य के कारण लोगों का ध्यान उन बालकों की दुर्दशा की ओर गया, और तब उनकी अवस्था में सुधार हुआ। तात्पर्य यह कि यदि स्त्रियाँ चाहें और कटिबद्ध हो जायँ, तो वे बहुत बड़े-बड़े काम बहुत सहज में कर सकती हैं। हमारे देश की स्त्रियों को यह तत्व अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, और अपनी परिस्थिति, योग्यता तथा सामर्थ्य आदि का विचार रखते हुए कुछ-न-कुछ ऐसा काम अवश्य करना चाहिए, जिससे वे अपनी दीन-हीन बहनों और बेटियों की अवस्था में कुछ सुधार कर सकें। उन्हें आँखें खोलकर यह देखना चाहिए कि संसार के अन्यान्य देशों में स्त्रियों ने कैसी-कैसी अच्छी सभाएँ और संस्थाएँ आदि स्थापित कर रक्खी हैं, और वे कैसे बड़े-बड़े और उपयोगी काम कर रही हैं। हम यह नहीं कहते कि पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ जितने और जिस तरह के काम कर रही हैं, उतने और उस तरह के सभी काम हमारे देश की स्त्रियाँ भी करने लग जायँ।

यह बात तो कई कारणों से असंभव ही है। पर, फिर भी, बहुत-से ऐसे काम हैं, जिनमें हमारे देश की स्त्रियाँ उनका बहुत अच्छी तरह अनुकरण कर सकती हैं, और इस प्रकार अपनी समाज तथा देश का बहुत बड़ा हित कर सकती हैं।

सामाजिक सुधार और उन्नति के लिये स्त्रियों की एक बहुत बड़ी अंतर-राष्ट्रीय कौंसिल या सभा है, जिसका नाम International Council of Women है। इस कौंसिल का मुख्य उद्देश्य यह है कि संसार-भर की स्त्रियों में मानव-समाज के हित के भावों का प्रचार किया जाय। सबसे पहले सन् १८८८ में, अमेरिका के संयुक्त-राज्यों की स्त्रियाँ वाशिंगटन-नामक नगर में इस प्रकार की बातों पर विचार करने के लिये एकत्र हुई थीं। उसके उपरांत इस कौंसिल ने धीरे-धीरे अंतर-राष्ट्रीय रूप धारण किया, और अब इसकी शाखाएँ इँगलैंड, आयलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, स्वीडन, डेनमार्क, स्विज़रलैंड, इटली, फ्रांस, आस्ट्रिया, नार्वे, हंगरी, बेलजियम, बल्गेरिया और यूनान आदि सभी छोटे-बड़े देशों में स्थापित हो चुकी हैं। इस विशाल संस्था में प्रायः १० लाख से अधिक स्त्रियाँ सम्मिलित हैं। यह संस्था न तो राजनीति से किसी प्रकार का संबंध रखती है, और न धर्म से। इसका उद्देश्य शुद्ध सामाजिक है, और यह भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियों को एक सूत्र में संबद्ध करके, उनमें परस्पर सहानुभूति उत्पन्न करती, उन्हें समाज-सुधार के कामों का ढंग बतलाती तथा हर प्रकार से सहायता देती है। इस प्रधान

संस्था से संबद्ध जो स्थानीय शाखाएँ आदि होती हैं, वे अपने कामों के लिये सब प्रकार से बिलकुल स्वतंत्र होती हैं। संस्था के उद्देश्यों की सिद्धि के लिये वे जो उपाय उचित समझती हैं, उन्हीं का अवलंबन करती हैं। कोई ऐसा नियम नहीं है, जिसका पालन सभी शाखाओं के लिये आवश्यक हो, और न कोई ऐसा सिद्धांत है, जिसका मानना ही अनिवार्य हो। प्रधान संस्था की ओर से प्रायः बड़ी-बड़ी महासभाएँ होती हैं, जिनमें सारे संसार की स्त्रियाँ एकत्र होती हैं। उन महासभाओं में ऐसे ही विषयों पर विचार होते हैं, जिनका संबंध स्त्री-मात्र से होता है। सन् १९०० में इस संस्था का महाधिवेशन पेरिस में हुआ था। उस अवसर पर श्रीमती मे राइट सेवेल ने कहा था—"सभी देशों और सभी स्थानों में ऐसी स्त्रियाँ होती हैं, जो अनेक दृष्टियों से अभागी होती हैं, जिनकी दुर्दशा पर कभी कोई ध्यान नहीं दिया जाता; और ऐसे बच्चे होते हैं, जो बहुत ही दरिद्र, रोगी और दुःखी होते हैं। सभी जगह इन अभागी स्त्रियों और अभागे बच्चों की रक्षा और उन्नति के लिये सभाएँ तथा संस्थाएँ आदि भी होती हैं।..............यदि मुझसे प्रश्न किया जाय कि क्या यह बात संभव है कि संसार-भर के सभी भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियाँ एक सार्वदेशीय और सार्वजनिक कार्य के लिये मिलकर एक हो जायँ? तो मैं इसका उत्तर यही दूँगी कि यह बात केवल संभव ही नहीं, बल्कि यह एक ऐसी बात है, जिसके लिये ही स्त्रियों का अस्तित्व है; इसी

काम के लिये स्त्रियाँ बनाई गई हैं । पुरुषों के लिये बहुत-से सार्वजनिक और निज के कार्य हुआ करते हैं, और वे उन कार्यों में इतने लीन रहते हैं कि वे अकेले रोगियों, दीन-दुखियों और अभागों का सारा बोझ नहीं सँभाल सकते । स्त्रियों को अभी तक राजनीतिक क्षेत्र में काम करने का अवसर नहीं दिया गया है; कुछ स्त्रियाँ ही बहुत सहज में सारे संसार में भ्रातृ-भाव की स्थापना कर सकती हैं ।"

स्त्रियों की अंतर-राष्ट्रीय कौंसिल के मुख्य उद्देश्यों में एक उद्देश्य यह भी है कि सारे संसार में शांति की रक्षा की जाय; जहाँ तक हो सके, कहीं युद्ध न होने दिया जाय । इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसकी एक कमेटी बनी है, जिसमें सभी राष्ट्रीय कौंसिलों की ओर से चुनी हुई एक-एक स्त्री-सदस्य रहती है । प्रत्येक राष्ट्रीय कौंसिल में स्त्रियाँ ही सदस्य होती हैं, और वही उसकी पदाधिकारिणी भी । मंत्री, उपमंत्री, सभापति, उपसभापति आदि वे सब आपस में ही चुनती हैं । ये कौंसिलें भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार करने और उनका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये छोटी-छोटी कमेटियाँ नियुक्त कर देती हैं, और इन कमेटियों की सूचनाओं और रिपोर्टों पर कौंसिल में विचार होता है । इँगलैंड तथा अमेरिका की कौंसिलें इस बात का भी प्रयत्न करती हैं कि जिन शाही कमीशनों आदि के विचारणीय विषयों का संबंध स्त्रियों के हितों से हो, उन कमीशनों में कुछ स्त्रियाँ भी सदस्य-रूप से नियुक्त की जाया

करें। इस संस्था के उद्देश्यों में एक उद्देश्य यह भी है कि स्त्रियों को भी सब प्रकार की शिक्षा पुरुषों के समान ही दी जाया करे; नैतिक आचार के बंधन भी दोनों के लिये समान ही हों। दुःख है, अभी तक भारतवर्ष की स्त्रियों ने अपनी कौंसिल स्थापित करके इससे कोई संबंध नहीं स्थापित किया है। यदि यहाँ की शिक्षित स्त्रियाँ भी अपनी एक कौंसिल स्थापित करके इस संस्था के साथ उसे संबद्ध कर लें, तो यहाँ की स्त्रियों का भी बहुत कुछ कल्याण हो सकता है, और पूर्व तथा पश्चिम के संबंध में भी और अधिक घनिष्ठता स्थापित हो सकती है।

योरप, अमेरिका आदि में इसी प्रकार की और भी अनेक संस्थाएँ हैं, जो अनेक प्रकार से मानव-जाति का कल्याण करने में सहायक हुआ करती हैं। इनमें से बहुतेरी संस्थाओं का उल्लेख पिछले प्रकरणों में हो चुका है। इँगलैंड में एक संस्था है, जो सदा इस बात का उद्योग करती रहती है कि स्त्रियों और बच्चों के हितों की रक्षा के लिये क़ानून बनाए जायँ। भिन्न-भिन्न पेशों और कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों और बच्चों की अवस्था का निरीक्षण करके यह संस्था अपनी रिपोर्ट होम-सेक्रेटरी के पास भेजती है, जिस पर सहानुभूति-पूर्वक विचार किया जाता है, और आवश्यकतानुसार कमेटी की सूचनाओं के अनुसार क़ानून भी बनाए जाते हैं। एक और कमेटी है, जो इस बात का ध्यान रखती है कि स्त्रियों और बच्चों के लिये बने

हुए क़ानूनों का कल-कारख़ानों आदि में ठीक-ठीक पालन होता है, या नहीं। एक और संस्था है, जिसमें योरप के प्रायः सभी देशों के लोग मिलकर इस बात का उद्योग करते हैं कि कार-ख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों और बच्चों की रक्षा के लिये अच्छे-अच्छे क़ानून बनाए जायँ। इस संस्था की ओर से योरप की कई भाषाओं में ऐसे सामयिक पत्र भी निकलते हैं, जिनमें यह बतलाया जाता है कि किस देश के किस क़ानून में क्या दोष है, और किस देश में कौन-सा नया और अच्छा क़ानून पास हुआ है। श्रमजीवियों की जो महासभाएँ होती हैं, उनकी रिपोर्ट और प्रस्ताव आदि भी यह संस्था प्रकाशित करके लोगों में बाँटा करती है। मतलब यह कि इस संस्था का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि समस्त संसार में समान-रूप से अच्छे-अच्छे क़ानून बनाए जायँ, और उनका पूरा-पूरा पालन हो। एक और संस्था है, जो इस बात का प्रयत्न करती है कि स्त्रियों को भी सब बातों और सब कामों में पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हों। ये सब संस्थाएँ ऐसी ही हैं, जिनके सब काम केवल स्त्रियाँ ही करती हैं। पर एक और संस्था है, जिसमें स्त्रियाँ और पुरुष मिलकर काम करते हैं। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य यह है कि बच्चों के साथ किसी प्रकार का कठोरता का व्यवहार अथवा अत्याचार न किया जाय। यदि सच पूछा जाय, तो स्त्रियों के लिये सबसे अच्छा काम यही है कि वे बच्चों का पालन-पोषण और रक्षण करें, और सदा इस बात का ध्यान रक्खें कि

उनके साथ किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार तो नहीं किया जाता है। यही कारण है कि इँगलैंड में इस संस्था का काम और सब संस्थाओं से बहुत अच्छा और उपयोगी समझा जाता है। प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति का भविष्य उसके बच्चों के स्वास्थ्य और सुख पर निर्भर है। जिस देश के बच्चे दीन-दुःखी और रोगी होंगे, उसका भविष्य सदा अंधकार-मय रहेगा। इस संस्था में काम करनेवाली स्त्रियाँ घर-घर जाकर माता-पिता को यह बतलाती हैं कि बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार किया जाना चाहिए, उन्हें किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए, उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए, उन्हें किस प्रकार के कपड़े पहनाने चाहिए, किस प्रकार उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना और किस प्रकार उन्हें सुखी तथा निश्चिंत रखना चाहिए। यह संस्था इस बात का भी उद्योग करती है कि पालियामेंट द्वारा ऐसे क़ानून बनाए जायँ, जिनके कारण लोग बच्चों के साथ कठोरता का व्यवहार या अन्याय न कर सकें। तात्पर्य यह कि इस संस्था का उद्देश्य यह है कि लोग बच्चों के साथ कठोरता-पूर्ण व्यवहार ही न करने पावें। इस संस्था की ओर से बहुत-से निरीक्षक सदा चारों ओर घूमा करते और इस बात का पता लगाया करते हैं कि कहीं बच्चों के साथ कोई अन्याय या अत्याचार तो नहीं हो रहा है। यदि किसीके सामने कोई आदमी अपने बच्चे को बेतरह मारे-पीटे, या उससे ऐसा काम ले, जो उसकी सामर्थ्य से बाहर

है, तो वह देखनेवाला उसकी सूचना तुरंत उस संस्था के किसी अधिकारी को दे सकता है। अधिकारी भी तुरंत उसके प्रतिकार का उपाय करता है, और यदि आवश्यकता होती है, तो उस अत्याचार करनेवाले पर मुक़द्दमा भी चलाता है। जो व्यक्ति बालकों पर होनेवाले अत्याचार की सूचना देता है, उसका नाम सदा गुप्त रक्खा जाता है। यदि कोई माता या पिता अपनी संतान का भरण-पोषण करने से इनकार करता है, तो यह संस्था हर तरह से उसे उसका भरण-पोषण करने के लिये विवश करती है। और, यदि वह किसी तरह नहीं मानता, तो उसके खिलाफ़ क़ानूनी चाराजोई भी करती है। इस संस्था का आधा काम स्त्रियाँ करती हैं, और आधा पुरुष।

पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के ऐसे अच्छे-अच्छे और ऊँचे दरजे के कामों का वर्णन पढ़कर हमारे देश की शिक्षित स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और जहाँ तक हो सके, अपने देश में भी उनके ढंग पर परोपकार तथा स्त्री-हितों से संबंध रखनेवाले अच्छे-अच्छे काम करना चाहिए। उनके ऐसे कार्यों का परिणाम यह होगा कि उनका देश बहुत अधिक सुखी और संपन्न हो जायगा, और बहुत शीघ्र यथेष्ट उन्नति कर सकेगा।

पंद्रहवाँ प्रकरण

जापान की स्त्रियाँ

एक विचारशील का मत है कि जापान की स्त्रियों में बहुत जल्दी-जल्दी और बहुत अधिक परिवर्तन हो रहा है। उनका सुधार इतना पूर्ण और इतनी शीघ्रता से हो रहा है कि कुछ ही समय में वे पाश्चात्य देशों की स्त्रियों से भी कहीं आगे बढ़ जायँगी।

वास्तव में आजकल जापान की स्त्रियाँ दिन-पर-दिन अधिक स्वतंत्र होती जा रही हैं, और वे हर तरह से अपने-आपको समाज के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध कर रही हैं। जो लोग जापान में जाकर वहाँ की स्त्रियों की उन्नति का भली भाँति निरीक्षण करते हैं, वे चकित रह जाते हैं। एशिया में एक जापान ही ऐसा देश है, जिसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, सबसे अधिक बातों में, पाश्चात्य देशों का अनुकरण किया है। पर यह अनुकरण ऐसा नहीं, जो बिलकुल आँख बंद करके और विना अच्छे-बुरे का विचार किए ही किया गया हो। यह अनुकरण बहुत सोच-समझकर किया जाता है, और अनुकरण करते समय अपनी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों आदि का भी पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता

है। जहाँ पाश्चात्य बातों में किसी प्रकार का दोष देख पड़ता है, वहाँ या तो वे बातें छोड़ दी जाती हैं, अथवा उनमें उपयुक्त सुधार तथा परिवर्तन करके, वे दोष दूर कर दिए जाते हैं। ऐसी दशा में यही मानना पड़ता है कि जापान में जो परिवर्तन हो रहे हैं, वे बहुत ही शुभ और बहुत-से अंशों में भारतवासियों के लिये भी अनुकरणीय हैं। अतः हम आवश्यक समझते हैं कि इस प्रकरण में यह बात बतला दें कि जापान की स्त्रियों की इस समय क्या अवस्था है, और वे किस प्रकार उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं।

जापानियों और भारतवासियों की संस्कृति तथा सभ्यता में बहु अंतर है; दोनों में समानता की बातें बहुत कम हैं। पर, फिर भी, हम आशा करते हैं कि हमारे देश की स्त्रियाँ यह जान-कर कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य उठावेंगी कि एशिया के परम उन्नतिशील देश जापान की स्त्रियाँ कैसी और कहाँ तक उन्नति कर रही हैं—पाश्चात्य विचारों को वे किस ढंग से ग्रहण कर रही हैं। इस संबंध में हम अपने देश की स्त्रियों का ध्यान एक बहुत ही आवश्यक बात की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि जापानवालों ने एशिया, योरप और अमे-रिका के अनेक देशों से ही बहुत-से विचारों तथा रीति-नीति को ग्रहण किया है; पर इन सब बातों के ग्रहण करने में उन्होंने अपनी जातीय स्वतंत्रता का बलिदान किया है, और नई-नई बातों को ग्रहण करते समय उन्होंने अपने प्राचीन धर्म या वंश-

परम्परा से चली आई हुई और-और बातों का परित्याग किया है। शिक्षा संबंधी सिद्धांत, इंजीनियरी, जहाज़ बनाने, युद्ध का ढंग सीखने, खेती-बारी, चिकित्सा, कला, क़ानून और शासन आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने यहाँ चीनियों, अँगरेज़ों, अमेरिकनों, फ्रांसीसियों, जर्मनों और इटालियनों आदि को नियुक्त किया है। अर्थात् जहाँ तक हो सका है, उन्होंने सभी लोगों से उनकी अच्छी-अच्छी बातें सीखी हैं, पर ढंग अपना निज का ही रक्खा है। जब पहलेपहल उन्होंने फ़ारमोसा में अपना उपनिवेश स्थापित किया, तब उन्होंने उसी प्रणाली का अनुसरण किया, जिसे इँगलैंड ने समस्त ब्रिटिश-भारत में प्रचलित की थी। यहाँ पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या वे इतनी विदेशी जातियों की रीति-भाँति सीखकर और इतने देशों से शिक्षा प्राप्त करके भी अपने व्यक्तित्व और राष्ट्रीयता की रक्षा कर सकते हैं? बहुतेरे विचारशीलों का तो यही मत है कि इस कठिन काम में भी उन्हें पूरी-पूरी सफलता ही हो रही है। वे सब जातियों और सब देशों से सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते हुए भी अपनेपन की बराबर रक्षा करते रहे हैं। इन्हीं कारणों से हम भी आधुनिक जापान की स्त्रियों का इतिहास और परिचय देने के लिये विवश हुए हैं। यद्यपि जापान की स्त्रियों ने बहुत हाल में नई-नई बातें सीखना आरंभ किया है, तथापि यदि हम यहाँ उन संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण दे दें, जिन्हें जापान की स्त्रियों ने अपने यहाँ स्थापित किया है, तो कुछ अनुचित न होगा।

सबसे पहले तो यह बात बतला देना आवश्यक है कि भारतीय स्त्रियों की भाँति जापान की स्त्रियाँ भी बहुत ही प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखी जाती रही हैं, और उनके उत्तम कार्यों के कारण उन्हें बराबर उच्च स्थान मिलता रहा है। प्राचीन काल में जापान की स्त्रियाँ बराबर साम्राज्ञी के पद पर अभिषिक्त होकर सब प्रकार का शासन-कार्य करती रही हैं, और राजकीय कार्यों में बराबर बहुत कुछ सहायता देती हैं। जापान के प्राचीन साहित्य के निर्माण में भी वहाँ की स्त्रियों ने बहुत सहायता दी है। इस समय जापान में जो सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है, उसका नाम 'कोजीकी' है। जापानी-भाषा में 'कोजीकी'-शब्द का अर्थ होता है प्राचीन विषयों का संग्रह। जापान में ऐसा प्रवाद है कि सम्राट् तेम्नू ने, जिसका शासन-काल सन् ६७३ से ६८६ ई० तक था, अपने देश के अच्छे-अच्छे और उच्च वंशों का इतिहास तैयार कराया था। ऐसा इतिहास तैयार कराने का उद्देश्य यह था कि जापानी राष्ट्र या जाति का एक पूरा लेखा एक ही जगह मिल सके। इस काम के लिये उसने अपने दरबार की एक स्त्री को नियुक्त किया था, जिसका नाम हियेडा नो एरे था। यह विदुषी अपनी उत्तम स्मरण-शक्ति के लिये बहुत प्रसिद्ध थी। इसे सब पुरानी बातें, सारी पुरानी घटनाएँ और समस्त पुराना इतिहास ज़बानी बतला दिया गया था। परंतु अभाग्य-वश यह लेखा या इतिहास तैयार होने से पहले ही सम्राट् तेम्नू का देहांत हो गया।

उसके उपरांत पचीस वर्षों तक इस विदुषी ने जापान के समस्त प्राचीन वंशों का सारा इतिहास ज़बानी याद रक्खा। तब सन् ७१२ ई० में साम्राज्ञी गेम्यो की आज्ञा से इस विदुषी ने वह सारा इतिहास यसुमरो-नामक एक लेखक को लिखा दिया, और तब यह प्राचीन इतिहास प्रस्तुत हुआ। इस प्रकार जापान का सबसे पुराना ग्रंथ और सबसे पुराना इतिहास एक स्त्री की बदौलत और उसी के संरक्षण में तैयार हुआ था।

जापानी साहित्य के निर्माण में वहाँ की स्त्रियों के काम की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती। जापान का 'निहोंगी' नाम का एक और इतिहास सन् ७२० ई० में वहाँ की साम्राज्ञी की आज्ञा से और उन्हीं के संरक्षण में तैयार किया गया था। जापान का 'गेंगी मोनोगतरी' नाम का पहला उपन्यास भी 'मुरसकी नो शिकिबू' नाम की एक स्त्री ने ही, ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में, लिखा था। उसी समय का लिखा हुआ 'मकुरा नो जोशी' नाम का एक और ग्रंथ मिलता है, जिसमें कियोटो के तत्कालीन सामाजिक जीवन का वर्णन किया गया है। यह वर्णन भी एक स्त्री ने ही लिखा था, जिसका नाम शेई सोनगोन था। जापानी तथा विदेशी समालोचकों ने इन दोनों ही ग्रंथों की बहुत अधिक प्रशंसा की है, जिससे सिद्ध होता है कि जापान की स्त्रियों में जो बुद्धिमत्ता है, वह आज की अर्जित की हुई नहीं, बल्कि उनमें बहुत प्राचीन काल से चली आई है। इसके अतिरिक्त साहित्य-क्षेत्र में काम करनेवाली जापानी स्त्रियों की सबसे बड़ी विशेषता

यह रही है कि वे अपनी भाषा की शुद्धता पर बहुत अधिक ध्यान रखती आई हैं, और उन्होंने उसमें उन चीनी-शब्दों, वाक्यों तथा शैलियों आदि को नहीं आने दिया है, जिनका वहाँ के पुरुष बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं ग्यारहवीं शताब्दी में सम्राट् इचोओ के दरबार में बहुत-से ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ थीं, जो अनेक प्रकार से साहित्य-सेवा करती थीं; पर उस समय के जो ग्रंथ आज तक प्रचलित हैं, और आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं, उनमें अधिकांश स्त्रियों के ही दिमाग़ से निकले हुए हैं। प्राचीन जापान की स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध थीं, उसी प्रकार अपने ज्ञान और बुद्धि-बल के लिये भी विख्यात थीं। जान पड़ता है, इन जापानी स्त्रियों ने भी उसी प्रकार अपना एक दरबारी साहित्य-क्षेत्र बना लिया था, जिस प्रकार फ़्रांस के राजा लुई १४वें क्वाटोर्ज के दरबार में था। हम इस पुस्तक के आरंभ में ही यह बतला चुके हैं कि प्रायः सभी देशों में पहले स्त्रियों का बहुत अधिक आदर होता था; पर बीच में उनकी मान-मर्यादा आदि का ह्रास होने लगा, और धीरे-धीरे वे दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गई। ठीक यही बात जापान में भी हुई। प्राचीन काल में तो वहाँ की स्त्रियाँ बहुत अधिक उन्नत थीं, पर मध्य-युग में आकर वे भी नगण्य होने लगीं, और उनकी मान-मर्यादा बिलकुल जाती रही। परवर्ती काल में जब जापानी जाति योद्धा-जाति बन गई, तब माता-पिता अपने पुत्रों का ही विशेष आदर-सम्मान और लाड़-प्यार करने लगे,

और स्त्रियों के हित की बातों की ओर उन योद्धाओं का कुछ ध्यान ही न रह गया। ऐसी अवस्था में यदि जापान की स्त्रियाँ धीरे-धीरे दीन-हीन हो गई, और समाज में उनका स्थान गौण हो गया, तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। आगे चलकर, सत्रहवीं शताब्दी में, वे बहुत ही तुच्छ दृष्टि से देखी जाने और सब प्रकार से मूर्ख, असंतोषी और ईर्ष्यालु गिनी जाने लगीं। उस समय के लोग अपने यहाँ की स्त्रियों के साथ-साथ स्त्री-मात्र को ही बहुत हीन दृष्टि से देखने लगे थे, और उनकी यह धारणा हो गई थी कि स्त्रियाँ केवल पुरुषों का आज्ञा-पालन करने के लिये ही बनी हैं, संसार में उनका और कोई काम ही नहीं है। पर साथ ही स्त्रियों को अपने पति की आज्ञा पालन करने, घर गृहस्थी का सब प्रबंध करने, आवश्यकता पड़ने पर सब प्रकार का स्वार्थ-त्याग करने, पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करने और शांति-पूर्वक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जाती थी, और वे इन्हीं शिक्षाओं के अनुसार अपना जीवन बिताने लग गई थीं। उन्हें खाने-पहनने में फ़िजूलख़र्ची न करने और ऐशो-आराम या अभिमान से दूर रहने की भी शिक्षा दी जाती थी, और इन शिक्षाओं का उनपर बहुत अच्छा प्रभाव देखने में आता था।

यद्यपि जापानी स्त्रियों में अब तक ये सब बातें पाई जाती हैं, तथापि साथ ही आजकल उनमें कुछ और भी नए गुण देखने में आते हैं। आजकल सारे संसार में स्त्रियों को पहले

की अपेक्षा बहुत अधिक उच्च तथा महत्व-पूर्ण स्थान मिलने लगा है, और इसके लिये स्त्रियों की ओर से आंदोलन तथा प्रयत्न भी होने लगा है। जापान की स्त्रियाँ भी इस आंदोलन तथा प्रयत्न से नहीं बची हैं, और वे यथासाध्य उच्च तथा महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त करती जा रही हैं। सन् १८९९ में, जापान में, श्रीयुत फुकुजवा युकीची-नामक एक विद्वान् की—जिन्होंने जापान में शिक्षाप्रचार करने और जापानियों को पाश्चात्य विचारों से परिचित कराने में बहुत अधिक काम किया था—लिखी हुई एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उस पुस्तक के द्वारा उन्होंने जापानियों को यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि यद्यपि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र पुरुषों के कार्य-क्षेत्र से भिन्न है, तथापि वह उनसे किसी प्रकार हीन या तुच्छ नहीं है, और स्त्रियों को भी उतने ही अधिकार मिलने चाहिए, जितने पुरुषों को प्राप्त हैं। इस प्रकार उन्होंने मानो अपने देशवासियों को यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि स्त्रियों के संबंध में लोगों के जो मध्यकालीन विचार थे, वे सर्वथा त्याज्य हैं, और अब हम लोगो को अपने यहाँ की स्त्रियों का विशेष आदर करना और उन्हें पूरी-पूरी उन्नति करने का अवसर देना चाहिए।

यद्यपि जापान में स्त्रियाँ अपने लिये नए-नए और विशेष अधिकार प्राप्त करने के लिये किसी प्रकार का बड़ा आंदोलन नहीं करतीं, तथापि सामाजिक उन्नति की लहर में वे भी बराबर आगे बढ़ती जाती हैं। वहाँ का राजवंश और सरकार, दोनों

ही स्त्री-शिक्षा के बड़े पक्षपाती हैं, और वहाँ के राज्य तथा शिक्षा-प्रचारकों के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ है कि बालिकाओं और स्त्रियों की शिक्षा के लिये वहाँ अब बहुत अच्छी व्यवस्था हो गई है। सन् १८७४ में, टोकियो में, स्त्रियों के लिये एक नार्मल स्कूल खोला गया था, जिसमें उन्हें अध्यापन-कार्य सिखलाया जाता था। इस स्कूल के व्यय के लिये वहाँ की तत्कालीन साम्राज्ञी प्रतिवर्ष ५,००० येन की सहायता दिया करती थीं, जो लगभग ५०० पौंड या ७,५०० रुपए के बराबर होती है। इसी दृष्टि से वहाँ उच्च वंश की बालिकाओं की शिक्षा के लिये भी एक विद्यालय खोला गया था। उस विद्यालय को भी साम्राज्ञी यथेष्ट सहायता करती थीं, और उसकी उन्नति के लिये प्रयत्न-शील रहती थीं। ये दोनों विद्यालय अभी तक और अच्छी तरह चल रहे हैं। इनके अतिरिक्त टोकियो तथा नारा में स्त्रियों के लिये ऊँचे दरजे के दो और नार्मल स्कूल हैं, जिनमें चार वर्ष तक ऊँचे दरजे की पढ़ाई होती है, और स्त्रियों को साहित्य, विज्ञान तथा कला की शिक्षा दी जाती है। भारतवर्ष की तरह जापान में भी अभी अच्छे शिक्षकों की कमी ही बनी हुई है; पर जापान में इसका कारण यह बतलाया जाता है कि वहाँ शिक्षकों को वेतन बहुत कम मिलता है। इस समय वहाँ की शिक्षा का अधिकांश कार्य पुरुषों के ही हाथ में है। सन् १८८४ में वहाँ की सरकार ने स्त्रियों को भी चिकित्सा-शास्त्र में डॉक्टरी का डिप्लोमा प्राप्त करने की आज्ञा दे दी थी, और तब से अब तक

जापानी स्त्रियों ने चिकित्सा-शास्त्र में बहुत अच्छी उन्नति की है। स्त्रियों को चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा देने के लिये टोकियो में एक विद्यालय है, और उसमें सैकड़ों स्त्रियों को बराबर यही शिक्षा दी जाती है। इस समय जापान में बहुत-सी स्त्रियाँ बहुत अच्छी तरह चिकित्सा का व्यवसाय भी करती हैं। शिक्षा के इस बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग का स्त्रियों में यथेष्ट प्रचार करने के लिये बहुतेरी अच्छी-अच्छी जापानी स्त्रियाँ आजकल बहुत अधिक प्रयत्न कर रही हैं, और उनके इस प्रयत्न का बहुत ही शुभ परिणाम भी वहाँ देखने में आता है।

जापान की शिक्षा संबंधी संस्थाओं में सबसे अधिक महत्त्व की संस्था वहाँ की स्त्रियों का विश्वविद्यालय है। यह विश्व-विद्यालय टोकियो में, सन् १९०१ में, वहाँ के मि० नरूसे-नामक एक ईसाई ने स्थापित किया था। वह विश्वविद्यालय-संबंधी आवश्यक बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक बार अमेरिका गए थे, और वहीं से सब बातों की जानकारी प्राप्त कर आए थे। जब वह जापान लौटकर स्त्रियों के लिये यह विश्वविद्यालय स्थापित करने की आयोजना करने लगे, तब बहुत-से जापा-नियों ने उनका बहुत विरोध किया था। पर उन्होंने किसी के विरोध का कुछ भी ख़याल न किया, और अपने विश्वविद्यालय की योजना तैयार की। ज्यों-ज्यों काम आगे बढ़ने लगा, त्यों-त्यों विरोध भी कम होने लगा, और लोग विश्वविद्यालय के साथ सहानुभूति प्रकट करने लगे। अब तो वहाँ के शिक्षा-विभाग में

काम करनेवाले बड़े-बड़े अधिकारी उस विश्वविद्यालय की बहुत अधिक प्रशंसा करते और अनेक प्रकार से उसे सहायता देते हैं। काउंट ओक्यूमा ने अपनी पुस्तक 'नवीन जापान के पचास वर्ष (Fifty years of new Japan)' में विश्वविद्यालय का उल्लेख करते हुए लिखा है—"कहा जा सकता है कि यह विश्वविद्यालय स्त्रियों और पुरुषों की समानता और दोनों को समान रूप से शिक्षा देने के सिद्धांत पर स्थापित है ....
इसका पाठ्य-क्रम .... ऐसे ढंग से रक्खा गया है कि वह देश की राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं के बिलकुल अनुकूल है, और हमारे देश की स्त्रियों में जो विशेषताएँ अथवा विशिष्ट गुण हैं, उन्हें देखते हुए यह पाठ्य-क्रम बिलकुल ही ठीक और उपयुक्त है।" इस विश्वविद्यालय में जो स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे अपनी शिक्षा समाप्त हो जाने पर विवाह कर लेती हैं। अतः इस संबंध में ध्यान रखने की मार्के की बात यह है कि देश की जो स्त्रियाँ आगे चलकर माताएँ होती हैं, वे अपने ऊपर गृहस्थी का भार लेने के पहले विश्वविद्यालय की बहुत अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं। जो स्त्रियाँ इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करती हैं, उनका उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करके वकालत, डॉक्टरी या और किसी प्रकार का पेशा करना नहीं होता, बल्कि वे केवल श्रेष्ठ पत्नी और माता होने के विचार से, साम्राज्य तथा समाज का उत्तम अंग बनने के उद्देश्य से, शिक्षा प्राप्त करती हैं। और, शिक्षा का यही मुख्य उद्देश्य है।

हम पिछले किसी प्रकरण में यह बात बतला चुके हैं कि भारतवर्ष की अधिकांश स्त्रियाँ अपने अधिकारों से संबंध रखनेवाली बातों से नितांत अनभिज्ञ होती हैं। पर जापान की शिक्षित स्त्रियों ने अनेक अवसरों पर इस बात का अनुभव किया कि क़ानून की दृष्टि में हमारे अधिकार कुछ कम हैं, और काम पड़ने पर हम लाचार हो जाती हैं। अतः उन्होंने गार्हस्थ्य-शिक्षा के क्रम में क़ानून की कुछ बातों का अध्ययन भी आवश्यक रक्खा। इस विश्वविद्यालय से संबद्ध छोटे-छोटे बालकों के भी कई स्कूल हैं, जिनमें साधारण और किंडरगार्टन-प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती है। बालकों के लिये ये स्कूल विश्व-विद्यालय के साथ रखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि स्त्रियों को और प्रकार की शिक्षा के साथ-ही-साथ छोटे बालकों की शिक्षा और देखरेख का काम भी सिखलाया जा सके। जापान में जिस प्रकार अन्य विद्यालयों में विद्यार्थियों के शारीरिक बल-विकास का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता है, उसी प्रकार बालिकाओं और स्त्रियों के विद्यालयों में भी इस बात का पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि उनकी नैतिक और मानसिक उन्नति के साथ-ही-साथ शारीरिक उन्नति भी होती रहे। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी शिक्षा देने की भी इस विद्यालय में बहुत अच्छी व्यवस्था है।

श्रीयुत कोटरी मोचीज़ुकी ने, जो कुछ दिनों तक वहाँ की पार्लियामेंट के सदस्य भी रह चुके हैं, 'आज का जापान' (Japan Today)-नामक एक पुस्तक लिखी है। उस

पुस्तक में उन्होंने स्त्रियों के इस विश्वविद्यालय का यह उद्देश्य बतलाया है कि स्त्रियों को राष्ट्र तथा समाज का अंग होने की और साथ ही स्त्री-जनोचित शिक्षा दी जाय। यह विश्वविद्यालय इसलिये स्थापित किया गया है कि वहाँ स्त्रियों में आत्म-सम्मान और आत्मनिर्भरता का भाव उत्पन्न हो, और उनमें आवश्यक और उपयुक्त भिन्न-भिन्न गुणों का विकास हो। .... इन स्वाभाविक गुणों और विशेषताओं के साथ दूसरे देशों से ग्रहण किए हुए ऐसे विचार भी सम्मिलित किए जायँगे, जिनके द्वारा वे घर की स्वामिनी होने के साथ-ही-साथ समाज का उपयोगी अंग भी बन सकें। इसके द्वारा जापान की स्त्रियाँ इस योग्य बनाई जायँगी, जिससे वे भी समाज में एक मुख्य स्थान प्राप्त कर सकें, और उस पर अपना प्रभाव डाल सकें।

अतः हम कह सकते कि स्त्री-शिक्षा के संबंध में जापान का आदर्श भीठीक वही है, जो इँगलैंड के शिक्षा-विज्ञान के आचार्यों का है। अर्थात् जापानवालों का भी यही विश्वास है कि पुरुषों के गुणों के विकास के साथ-ही स्त्रियों के गुणों का भी विकास किया जाना चाहिए। पर दोनों के गुणों का विकास करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनमें अपने-अपने निजी गुणों का ही विकास हो। ऐसा न हो कि स्त्रियों में पुरुषों के गुणों का विकास होने लगे, अथवा पुरुषों में स्त्रियों के उपयुक्त गुण आने लग जायँ।

यद्यपि यह विश्वविद्यालय किसी स्त्री का स्थापित किया हुआ नहीं है, तथापि अब जापान की स्त्रियाँ शिक्षा-प्रचार के कामों में बहुत अधिक अग्रसर होने लग गई हैं। उन्हीं में से एक ने एक ऐसा विद्यालय स्थापित किया है, जिसमें बालिकाओं को तीन वर्ष तक शिक्षा देकर सरकारी स्कूलों में अँगरेज़ी पढ़ाने के योग्य बनाया जाता है। अब तक स्त्रियों की इस प्रकार की शिक्षा के लिये जापान में कोई सुबीता नहीं था; पर इस विद्यालय के स्थापित हो जाने से उस अभाव की बहुत कुछ पूर्ति हो गई है, और ऐसी अनेक बालिकाएँ तैयार होकर निकलने लगी हैं, जो सरकारी विद्यालयों में अँगरेज़ी के अध्यापन का कार्य कर सकती हैं। ऐसी स्त्रियों से स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बहुत अधिक सहायता मिलती है। इस दृष्टि से यह संस्था बड़े काम की है, और आदि से अंत तक इसकी सारी व्यवस्था एक स्त्री ने की है। इस संस्था से यह बात भी भली भाँति सिद्ध होती है कि जापान की स्त्रियों में संगठन की भी बहुत अच्छी शक्ति है, जिसका कई कारणों से अभी तक विकास नहीं हो सका था; पर उपयुक्त शिक्षा पाकर जिसका बहुत अच्छी तरह विकास हो सकता है।

इधर कुछ दिनों से संसार के अन्य देशों के साथ जापान का संबंध बहुत अधिक बढ़ गया है, और बराबर दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है। इसलिये अब वहाँ की स्त्रियों को भी कई ऐसे नए पेशे करने की आवश्यकता पड़ गई है, जिनमें वे पहले बिलकुल

दख़ल नहीं रखती थीं। इसके अतिरिक्त चीन और रूस के साथ जापान के जो भीषण युद्ध कुछ ही दिनों पूर्व हुए थे, उनके कारण जापान का बहुत कुछ जन-क्षय हुआ था। इस जन-क्षय के कारण भी जापान की स्त्रियों को पहले की अपेक्षा कई नए-नए सार्वजनिक कार्यों में प्रवेश करने की आवश्यकता पड़ी है। जब किसी घर का मालिक और कमानेवाला मर गया, तब उसकी विधवा स्त्री को अपने छोटे-छोटे बच्चों के पालन-पोषण के लिये कोई-न-कोई ऐसा काम करने की आवश्यकता पड़ी, जिससे उसका और उसकी संतान का निर्वाह हो सके। ऐसी बातों का परिणाम यह हुआ कि अब वहाँ की स्त्रियाँ धीरे-धीरे कई ऐसे नए पेशों में लगने लगी हैं, जिनमें वे अब तक नहीं लगती थीं, मानो एक प्रकार से आवश्यकता ने ही उनको कई नए कामों में लगने के लिये विवश किया। इसीलिये अब वहाँ अनेक ऐसे विद्यालय स्थापित हो गए हैं, जिनमें केवल स्त्रियों को व्यवसाय-वाणिज्य करने, बहीखाता आदि रखने, सोने-पिरोने, चित्र तथा खिलौने आदि बनाने, फ़ोटो उतारने तथा इसी प्रकार की और अनेक शिल्प-कलाओं की अच्छी शिक्षा दी जाती है। जापान का सबसे बड़ा व्यवसाय रेशम तैयार करना है, और इस व्यवसाय में स्त्रियाँ बहुत अधिक और महत्व के काम करती हैं। रेशम के कीड़े पालने और रेशम तैयार करने में जितना काम वहाँ के पुरुष करते हैं, उसकी अपेक्षा वहाँ की स्त्रियाँ कहीं अधिक यह काम करती हैं। इस संबंध में जापान

की स्त्रियों की दिन-पर-दिन बढ़नेवाली योग्यता एक इसी बात से प्रमाणित है कि इस व्यवसाय में उनका सम्मान बराबर बढ़ता जाता है। साथ ही इससे यह भी प्रमाणित होता है कि यदि स्त्रियाँ ऐसे व्यवसायों में लग जायँ, जो स्वभावतः उनके लिये उपयुक्त हैं, तो वे उनमें बहुत अच्छी तरह अपनी योग्यता दिखला सकती हैं, और आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों को भी बहुत अधिक सहायता दे सकती हैं। इसे तो केवल जापानी स्त्रियों ही की योग्यता का नहीं, बल्कि स्त्री-मात्र की योग्यता का प्रमाण मानना चाहिए।

भोजनालयों आदि में भी जापान की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ मिलकर बहुत अच्छा काम करती हैं। बहुत-से भोजनालय तो वहाँ ऐसे मिलेंगे, जिनकी स्वामिनी स्त्रियाँ ही होंगी; और कितने से ऐसे अच्छे-अच्छे भोजनालय हैं, जिनमें स्त्री अपने पति के साथ मिलकर काम करती है। ऐसे भोजनालयों का सब काम बहुत अच्छी तरह चलता है, और उनसे बहुत अच्छा आर्थिक लाभ भी होता है। बहुत-सी ऐसी सराय भी हैं, जिनमें पत्नी तो मुसाफ़िरों की ख़ातिरदारी करती और उनसे चीज़ों का दाम वसूल करती है, और पति भोजन आदि की तथा और तरह की व्यवस्था करता है। साधारणतः स्त्रियाँ ही वहाँ हिसाब-किताब रखती और प्रबंध करती हैं। चाख़ानों आदि में भी बहुत-सी स्त्रियाँ प्रबंध करती हुई देखी जाती हैं। भोजनालयों आदि में जैसी सफ़ाई और सुव्यवस्था देखने में आती है, उससे सिद्ध

होता है कि जापानी स्त्रियाँ पुरुषों के साथ मिलकर व्यवस्था और प्रबंध आदि का काम बहुत ही दक्षता-पूर्वक कर सकती हैं।

जापान की स्त्रियाँ एक और विलक्षण काम करती हैं कि वे लोगों के यहाँ से रुपए वसूल कर लाया करती हैं। कहा जाता है कि वे लोग यह काम बहुत अच्छी तरह और होशियारी के साथ करती हैं। जापान में बहुत-से ऐसे पुस्तकालय हैं, जो लोगों को घर-बैठे पुस्तकें पहुँचाया करते हैं। ऐसे पुस्तकालयों के सदस्यों के घर पुस्तकें पहुँचाने का काम भी स्त्रियाँ बहुत योग्यता-पूर्वक करती हैं। ग़रीब और देहाती स्त्रियाँ अपने-अपने घर में ही बैठकर तरह-तरह के शिल्प-कला के काम करती हैं। वे प्रायः ब्रश, चटाइयाँ, पंखे, छाते आदि बनाया करती और इस प्रकार परिवार के पालन में पति को अच्छी सहायता दिया करती हैं।

जापान के छापेख़ानों में भी बहुत-सी स्त्रियाँ काम करती हुई दिखाई देती हैं। वहाँ वे कंपोज़िटरी या सीसे के अक्षर बैठाने का काम तो नहीं करतीं; पर हाँ, कंपोज़िटरों के सहायक-रूप में बहुत-सा काम करती हैं। दफ़्तरों में वे क्लर्की करती हुई पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-सी स्त्रियाँ साहित्य-सेवा करती हैं, बहुतेरी चित्र आदि बनाती और बहुतेरी रेलवे में टिकट बेचने का काम करती हैं। अपने घर के आस-पास के छोटे-छोटे स्थानों में जापानी स्त्रियाँ जैसा अच्छा बग़ीचा या फुलवारी आदि लगाती हैं, उसे देखकर लोगों को चकित होना

पड़ता है। लेडी लासन ने सन् १९१० में, जापान के घरों के संबंध में, एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में श्रीमती ने अपने देश के लोगों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया था कि जब से अँगरेज़ लोग अपने घर की स्त्रियों और बालिकाओं को फल-फूल आदि लगाने की शिक्षा देने के लिये बड़े-बड़े कॉलेजों आदि में भेजने लगे हैं, उसके बहुत पहले से जापान की स्त्रियाँ इस काम में लगी हुई हैं। जापान की स्त्रियाँ ललित-कलाओं का अध्ययन बहुत ही अच्छे ढंग से और पूरा-पूरा करती हैं। उनके बनाए हुए चित्रों आदि की दूर-दूर के देशों में भी बहुत क़दर होती है। कुछ दिन हुए, जापान की एक स्त्री ने अपने बनाए हुए चित्रों की एक प्रदर्शिनी लंदन में की थी। जो लोग वह प्रदर्शिनी देखने गए थे, वे उन चित्रों की बहुत प्रशंसा करते थे, यहाँ तक कि अच्छे-अच्छे समाचार-पत्रों में भी उसकी प्रशंसा छपी थी। लंदन में अनेक प्रकार के विलक्षण पदार्थों की एक दूकान है, जिसकी स्वामिनी दो जापानी स्त्रियाँ हैं। लंदन में ही एक ऐसी जापानी स्त्री-डॉक्टर है, जो दाँतों की सब प्रकार की चिकित्सा करती है। जापान में भी इस प्रकार के काम करनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ हैं, पर इँगलैंड की स्त्रियों की तरह उनकी ऐसी बड़ी-बड़ी संस्थाएँ नहीं हैं, जो उन्हें मितव्यय आदि की शिक्षा दे सकें, अथवा श्रम-जीवी-वर्ग के हितों की रक्षा कर सकें।

हाँ, जापान में एक संस्था अवश्य ऐसी है, जिसमें वहाँ की

स्त्रियाँ बहुत अधिक काम करती हैं। वह संस्था सुप्रसिद्ध रेड क्रॉस सोसाइटी (Red Cross Society) है। इस संस्था की ओर से स्त्रियों और पुरुषों को, युद्धकाल में घायल होनेवाले लोगों के आघातों की चिकित्सा करने की शिक्षा दी जाती है। इस संस्था की स्थापना तो जापान में, सन् १८७७ में, ही हो गई थी, पर उस समय उसका रूप कुछ और ही था। उसे वर्तमान रूप सन् १८८६ में प्राप्त हुआ और उसी समय से यह संस्था वहाँ के सरकारी नियंत्रण में आई। जापान के राजवंश की तथा अन्याम्य उच्च कुलों की महिलाओं ने इस संस्था की इतनी अधिक सहायता की, और इसे इतना अधिक प्रोत्साहन दिया कि अब जापान में सब लोग दाईगोरी के काम को बहुत अधिक आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। राजवंश तथा दूसरे उच्च कुलों की स्त्रियाँ इस संस्था को केवल आर्थिक सहायता देकर ही निश्चिंत नहीं हो जातीं, बल्कि वे उसकी कमेटियों के सदस्य होकर भी काम करती हैं, तथा और भी अनेक प्रकार से इस काम में सहायता देती हैं। उनकी इस सहायता का परिणाम यह होता है कि लोग दिन-पर-दिन इस संस्था में अधिक उत्साह के साथ योग देते हैं। इसी रेड क्रास सोसाइटी से संबद्ध एक और संस्था है, जिस का नाम वालंटियर लेडी नरसेस एसोसिएशन (Volunteer Lady Nurses' Association) है, और जिसकी स्थापना सन् १८८७ में हुई थी। इस संस्था में अच्छे-अच्छे घरानों की

स्त्रियाँ सम्मिलित हैं, और वे दाई का काम बहुत उत्साह से और अच्छी तरह सीखती हैं, तथा युद्ध-काल में अपने देश-वासियों की सेवा और सहायता करने के लिये हर तरह से तैयार रहती हैं। राजकुल की अनेक राजकुमारियाँ भी इस संस्था में सम्मिलित हैं, जिससे दाईगीरी के पेशे को अच्छा प्रोत्साहन मिलता है।

रेड क्रास सोसाइटी का प्रधान अस्पताल टोकियो में है। शांति-काल में इस अस्पताल में दाइयों और डॉक्टरों को तीन वर्ष तक शिक्षा दी जाती है, और जब उनकी शिक्षा समाप्त हो जाती है, तब वे निजी रूप से चिकित्सा का काम करने लगते हैं। पर जिस समय वे शिक्षा समाप्त करके अस्पताल से निकलने लगते हैं, तब उन्हें इस आशय का एक इक़रारनामा लिख देना पड़ता है कि यदि आगामी पंद्रह वर्षों के अंदर कोई युद्ध छिड़े, राजनीतिक उपद्रव या सैन्य-संचालन हो, तो आवश्यकता पड़ने पर वे सोसाइटी के आज्ञानुसार हर समय काम करने के लिये तैयार रहेंगे। जब कभी वहाँ सेना एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जाती है, तब उसके साथ दाईगीरी करनेवाला स्टाफ़ भी भेजा जाता है। इस प्रकार उस स्टाफ़ को शांति-काल में ही काम करने का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो जाता है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में जिन लोगों का स्वास्थ्य किसी प्रकार नष्ट हो जाता है, उन लोगों को राज्य की ओर से पेंशन भी दी जाती है; और यदि उनकी मृत्यु हो जाती है, तो उनके

संबंधियों के भरण-पोषण के लिये उपयुक्त द्रव्य दिया जाता है। यद्यपि रेड क्रास-अस्पताल का प्रधान अधिकारी पुरुष ही होता है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसके काम में सबसे अधिक सफलता इसीलिये हुई है कि उसमें स्त्रियों ने भी पूरी तरह से योग दिया है। जापान के सरजन जेनरल बेरन टेडेनोरी इशिगुरो ने जापान के रेड क्रास के कामों का उल्लेख करते हुए एक लेख लिखा था। उस लेख में रेड क्रास के उस समय के कामों का ज़िक्र था, जिस समय सन् १८९४ में चीन-जापान-युद्ध के समय रेड क्रास की दाइयों आदि से पहलेपहल काम लिया गया था। बेरन इशिगरो ने लिखा था—"जब पहलेपहल दाइयों से काम लिया जाने लगा, तब सब लोगों ने इसका घोर विरोध किया था।………… और, उनके इस विरोध का कारण पुराने ज़माने से चला आया हुआ वह भाव था, जो स्त्रियों और पुरुषों के संबंध में, जापान में, प्रचलित है। पर मैं अपने विचारों पर दृढ़ता-पूर्वक अड़ा रहा, और मैंने हिरोशिमा तथा अन्यान्य स्थानों के अस्पतालों में रेड क्रास-अस्पताल की दाइयों को नियुक्त कर ही दिया। इसका जो कुछ परिणाम देखने में आया, उससे यह बात भली भाँति सिद्ध हो गई कि मैंने जो कुछ किया था, वह बिलकुल ठीक था; क्योंकि इन सब दाइयों को पूरी-पूरी सफलता प्राप्त हुई थी।"

जब युद्ध समाप्त हो गया ………… तब कई प्रधान दाइयों को आर्डर आफ़ दी क्राउन (Order of the Crown) की

उपाधि से विभूषित किया गया। कुछ वर्ष पहले यह उपाधि विशेषतः उन्हीं स्त्रियों को दी जाती थी, जो कोई बहुत अच्छी और प्रशंसनीय सेवा करती थीं।

इस बार तो मानों जापानी दाइयाँ पहलेपहल केवल परीक्षा-रूप में काम करने के लिये भेजी गई थीं। पर जब इस परीक्षा में वे पूर्ण रूप से उत्तीर्ण हो गईं, और उन्हें यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई, तब मानों उनका मार्ग बिलकुल परिष्कृत हो गया, और जब जहाँ आवश्यकता पड़ने लगी, वे भेजी जाने लगीं। जब रूस और जापान में युद्ध हुआ, तब इस रेड क्रास की दाइयों ने जो अच्छा काम किया था, उसकी प्रशंसा सारे संसार में हुई थी। अपने देशवासियों के लाभ के विचार से हम यहाँ यह भी बतला देना चाहते हैं कि जापान ने अपने यहाँ इस संस्था के संबंध में वही प्रणाली प्रचलित की थी, जो जर्मनी में प्रचलित है। इसका विचार स्वयं जापानियों के मन में नहीं आया था, बल्कि उन्होंने यह विचार जर्मनीवालों से ग्रहण किया था। इस संस्था की सफलता से यह बात भी भली भाँति प्रमाणित होती है कि एशियावाले बहुत-सी बातों में पाश्चात्य देशों का भली भाँति अनुकरण कर, सफलता प्राप्त करते हुए उससे बहुत कुछ लाभ भी उठा सकते हैं।

जापान में स्त्रियों की ऐसी संस्थाएँ बहुत ही कम हैं, जो केवल स्त्रियों के हितों की रक्षा करने के विचार से स्थापित की गई हों। इससे यही सिद्ध होता है कि अभी तक जापान की

स्त्रियाँ इस प्रकार के सामाजिक कामों में विशेष अग्रसर नहीं हुई हैं। वहाँ स्त्रियों की जो मुख्य संस्थाएँ हैं, वे प्रायः देश-हित की ही प्रेरणा से स्थापित हुई हैं। इसी प्रकार के देशहित के विचारों से प्रेरित होकर जापानी स्त्रियों ने एक और संस्था स्थापित की थी, जिसका नाम लेडीज़ पेट्रिआटिक एसोसिएशन है। यह संस्था इस उद्देश्य से बनाई गई है कि धन एकत्र करके सैनिकों के आराम के लिये तरह-तरह की चीज़ें ख़रीदी जायँ, या वह धन उनकी विधवाओं और अनाथ बच्चों को, उनके भरण-पोषण के लिये, दिया जाय। इसके ऑनरेरी सदस्यों में राजकुल की कई राजकुमारियाँ भी हैं। इसका प्रधान कार्यालय टोकियो में है, और शाखाएँ प्रायः सारे देश में विस्तृत हैं। इसके सदस्यों की संख्या आठ-दस लाख के ऊपर है, और इसकी ओर से एक सामयिक पत्र भी प्रकाशित होता है। इसका मुख्य कार्य उसी समय होता है, जब जापान किसी युद्ध में लिप्त होता है। और, उसी समय इसका कार्य हो भी सकता है। कोटरो मोचिज़ुकी ने अपनी एक पुस्तक में इस संस्था के कार्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि इस संस्था में केवल जापानी ही आर्थिक सहायता नहीं देते, और न केवल जापानी ही इसका आदर करते हैं।..............
रूस-जापान-युद्ध के समय योरप और अमेरिका तक के बड़े-बड़े लोगों और बड़ी-बड़ी संस्थाओं ने इसकी सहायता के लिये चंदे में अच्छी-अच्छी रक़में भेजी थीं। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि जापानी स्त्रियों की इस संस्था ने इतना अच्छा और

उपयोगी काम किया था कि उसकी क़दर दूर-दूर के देशों में हुई।

इसके अतिरिक्त परोपकार-संबंधी और भी अनेक संस्थाएँ हैं, जिनमें वहाँ की साम्राज्ञी तक सम्मिलित हैं, और समय-समय पर अच्छी सहायता करती हैं। इस प्रकार साम्राज्ञी अपने देश की स्त्रियों के समक्ष एक बहुत अच्छा एवं अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती और उन्हें अच्छे-अच्छे कामों में सम्मिलित होने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। इनमें सबसे अधिक महत्व का टोकियो का ख़ैराती अस्पताल है, जिसमें ग़रीबों की चिकित्सा बिलकुल मुफ़्त में की जाती है। इस अस्पताल के साथ, दाइयों की शिक्षा के लिये एक स्कूल भी है। अस्पताल और स्कूल, दोनों का सारा ख़र्च, सिर्फ़ लोगों के चंदे से चलता है। इसका और इसकी तरह की और अनेक संस्थाओं का प्रायः सारा काम स्त्रियाँ ही करती हैं। शिक्षा-संबंधी कामों के लिये भी जापान में स्त्रियों की अनेक सभाएँ और संस्थाएँ स्थापित हैं। ऐसी सभाओं और संस्थाओं के समय-समय पर अधिवेशन हुआ करते हैं, जिनमें व्याख्यान तथा वाद-विवाद होते हैं, और जिन्हें सुनने के लिये उनकी सभी सदस्याएँ तथा अन्यान्य स्त्रियाँ उपस्थित हुआ करती हैं।

जहाँ तक स्त्रियों के कार्यों का संबंध है, भारत और जापान, दोनों के सामने प्रायः एक ही प्रकार की समस्याएँ उपस्थित हैं। दोनों ही देश यह बात अच्छी तरह समझने लग गए हैं

कि स्त्रियों को ठीक ढंग से शिक्षा दी जाय, तो देश दुगना शक्तिशाली हो सकता है। दोनों ही देशों का उद्देश्य यह है कि वे नई और पुरानी, दोनों ही तरह की बातों को मिलाकर काम करें, अपने यहाँ की पुरानी बातों में आजकल की नई बातों का सम्मिश्रण करें। एशिया के बहुत-से निवासी यह समझते होंगे कि जापान पाश्चात्य प्रणालियों को ग्रहण करने में बहुत जल्दबाज़ी कर रहा है। उधर जापानवाले यह समझते होंगे कि भारतवर्ष तथा एशिया के दूसरे पूर्वी देश इन कामों में बहुत संकीर्ण-हृदय और ढीले हैं। यह ठीक है कि भारतवर्ष और जापान में किसी प्रकार की समता नहीं हो सकती। भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों से बहुत उच्च कोटि की सभ्यता और अच्छे-अच्छे दार्शनिक विचारों का प्रचार रहा है। अतः भारतवासी उस दृष्टि से नहीं देखे जा सकते, जिस दृष्टि से जापानी देखे जा सकते हैं। जापानियों की प्रवृत्ति दार्शनिक नहीं है ; वह शिल्प और ऐहिक बातों की ओर है। इसलिये भारतवासियों और जापानियों में भी प्रायः उतना ही अंतर है, जितना योरप और एशियावालों में। हम भारतवासियों को सदा मध्यम-मार्ग का अवलंबन करना चाहिए; क्योंकि वही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। हमें नए विचारों के ग्रहण करने में न तो बहुत जल्दबाज़ी करनी चाहिए, और न बहुत सुस्ती ही। यदि भारतवर्ष की स्त्रियाँ अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की कुछ अच्छी बातें ग्रहण करके अपनी योग्यता दिखला सकें, तो

वे बाधाएँ और रुकावटें बहुत कुछ दूर हो सकती हैं, जिनके कारण हम पाश्चात्य देशों की बराबरी नहीं कर सकते। पर यदि हम कुछ उपयोगी पाश्चात्य विचारों को बिलकुल अपने ढंग पर अपना लें, तो हम स्वयं सब प्रकार से अपनी बहुत अधिक उन्नति कर सकते हैं; साथ-ही-साथ दूसरे देशों के लोगों को भी बहुत अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं। जब पश्चिम और पूर्व का यह भेद-भाव दूर हो जायगा, तब सभी देशों की बहुत अधिक उन्नति हो सकेगी, और सभी जातियाँ तथा सभी राष्ट्र एक सार्वराष्ट्रीय भ्रातृत्व की रस्सी में बँध जायँगे।

मानव-जाति के कल्याण के लिये जिन संस्थाओं और संगठनों का इस ग्रंथ में उल्लेख किया गया है, उनके स्थापन और संचालन के लिये बहुत ही उच्च विचार की, पवित्रात्मा और ऐसी महिलाओं की आवश्यकता है, जो अपनी बहनों और अपने देश के बच्चों के हित के लिये अपने व्यक्तिगत सुख का सर्वथा त्याग कर सकें। मातृत्व के कर्तव्य बहुत ही पवित्र और उच्च हैं, और अब दिन-पर-दिन यह बात अधिक स्पष्ट होती जा रही है कि सबसे अधिक श्रेष्ठ माताएँ वही होती हैं, जो केवल अपने ही बच्चों की नहीं, केवल अपने परिवार के बच्चों की ही नहीं, बल्कि अधिक विस्तृत परिवार 'राष्ट्र' के बच्चों के हित के लिये भी सदा कुछ-न-कुछ करती रहती हैं, और जो अपने देश के बच्चों के साथ होनेवाले अन्याय अथवा उन्हें पहुँचानेवाले दुःख के प्रतिकार के लिये, सच्ची माताओं के समान, उद्योग

करना अपना परम कर्तव्य समझती हैं। जिस प्रकार कोई सच्ची माता अपने घर या परिवार में रहकर अपने बच्चों के साथ होनेवाले अन्यायों को, जिनका वह प्रतिकार कर सकती हो, कभी सहन नहीं करती, उसी प्रकार वह अधिक विस्तृत परिवार—राष्ट्र—के बच्चों के साथ होनेवाले अन्यायों को भी कदापि सहन नहीं कर सकती, और जहाँ तक हो सकता है, उसके प्रतिकार के लिये यथासाध्य निरंतर उद्योग करती रहती है। ज्यों-ज्यों देश में इस प्रकार की स्त्रियों की संख्या बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों स्वस्थ, कर्तव्य-परायण, प्रसन्न-चित्त और होनहार व्यक्तियों की भी संख्या बढ़ती जाती है। और, जिस देश में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती है, वहाँ स्वाभवतः सुख और वैभव आदि की भी वृद्धि होती रहती है। सामाजिक कल्याण और विशेषतः अपनी बहनों तथा माताओं के कल्याण के इस निःस्वार्थ-क्षेत्र में स्त्रियों के उच्च कोटि के नैतिक विचारों और सहानुभूति के भावों का उत्तरोत्तर विकास होने लगता है, उसमें कर्मण्यता आने लगती है, वे अपने कार्यों में दृढ़ होने लगती और मानव-जाति की सब बातों को बहुत अच्छी तरह समझने लगती हैं। इससे स्त्रियों और पुरुषों के पारस्परिक संबंध भी दृढ़ और पवित्र होने लगते हैं, और फलतः उस उद्देश्य की सिद्धि होती है, जिसके लिये इस संसार की रचना हुई है।

आशा है, यह पुस्तक पढ़कर और संसार के अन्यान्य देशों की स्त्रियों के कार्य-क्षेत्रों का ज्ञान प्राप्त करके, हमारे देश की

स्त्रियाँ भी अपने देश की परिस्थितियों और अपनी प्राचीन संस्कृति तथा गौरव का पूरा-पूरा ध्यान रखती हुई अपने कर्तव्यों का निर्णय करेंगी, और तदनुसार कार्य-क्षेत्र में उतरकर अपने देश की वर्तमान दीन-हीन दशा के सुधार में सब प्रकार से सहायक होंगी। तथास्तु।

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः
